नमो नमो निम्मलदंसणस्स

आगमसूत्र १

हिन्दीअनुवाद

अनुवादकर्ता

मुनि दीपरत्नसागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम :

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

श्री आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागरगुरूभ्यो नम :

आगमसूत्र

[हिन्दी अनुवाद]

भाग : १० संस्तारक, गच्छाचार, चन्द्रवेध्यक, गणिविद्या, देवेन्द्रस्तव, वीरस्तव, निशीथ, वृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कन्ध, जीतकल्प, महानिशीथ-१

: अनुवादकर्ता :

-: मुनि दीपरत्नसागर :-

आगमसूत्र-हिन्दी अनुवाद (संपूर्ण)

मूल्य - ३१. २७००/-

ता. २१/११/२००१ बुधवार २०५८ - कारतक-सुद-६

卐 श्री श्रुतप्रकाशन निधि 卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथाय नमः

: मुद्रक :
श्री नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस
घीकांटा रोड, अहमदाबाद

: कम्पोझ :
श्री ग्राफिक्स, २१ सुभाषनगर,
गिरधरनगर, शाहीबाग, अहमदाबाद

संपर्क स्थल

"आगम आराधना केन्द्र" शीतलनाथ सोसायटी विभाग-१,
फ्लेट नं-१३, ४-थी मंझिल, ब्हाई सेन्टर, खानपुर,
अहमदाबाद (गुजरात)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुदान-दाता

● प. पू. गच्छाधिपति आचार्यदेवश्री जयघोषसूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणा से- "श्री सीमंधर स्वामीजी जैन देरासरजी-अंधेरी पूर्व, मुंबई" –ज्ञानरासी में से

● प.पू. संयममूर्ति गच्छाधिपति आ.देवश्री देवेन्द्रसागर सूरीश्वरजी म.सा. के पट्ट प्रभावक व्याकरण विशारद पू.आ.श्री नरदेवसागर सूरीजी म.सा. तथा उनके शिष्य पू. तपस्वी गणीवर्य श्री चंद्रीकीर्तिसागरजी म.सा. के प्रेरणा से-"श्री वेपरी श्वे० मूर्ति० संघ–चैन्नाई" की तरफ से ।

● प.पू. क्रियारुचिवंत आचार्यदेव श्रीमद् विजय ऋचक-चन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. की ज्ञानभक्तिरुप प्रेरणासे श्री तालध्वज जैन श्वे. तीर्थ कमिटी - तलाजा, (सौराष्ट्र) की तरफ से ।

● प.पू. आदेयनामकर्मधर पंन्यासप्रवर श्री अभयसागरजी म.सा. के पट्टप्रभावक अवसरज्ञ पूज्य आचार्यदेवश्री अशोक-सागरसूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणा से श्री साबरमती, रामनगर जैन श्वे. मूर्ति. संघ, अमदावाद की तरफसे ।

● प.पू. श्रुतानुरागी आचार्यदेवश्री विजय मुनिचन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणासे - वांकडीया वडगाम जैन संघ की तरफ से ।

● पूज्य श्रमणीवर्या श्री भव्यानंदश्रीजी म.सा. के पट्टधरा शिष्या मृदुभाषी साध्वीश्री पूर्णप्रज्ञाश्रीजी म.सा. की शुभप्रेरणासे - श्री सुमेरटावर जैन संघ, मुंबाई की तरफ से ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुदान-दाता

● प.पू. आगमोध्धारक आचार्य देव श्रीमद् आनन्दसागर-सूरीश्वरजी म.सा. के समुदायवर्तिनी तपस्वीरत्ना श्रमणीवर्या श्री कल्पप्रज्ञाश्रीजी म.सा. की शुभ प्रेरणा से कार्टर रोड जैन श्वे. मू.पू. संघ, बोरीवली ईष्ट, मुंबाई की तरफ से ।

● पंडितवर्य श्री वीरविजयजी जैन उपाश्रय, भट्ठी की बारी, अमदावाद ।

● श्री खानपुर जैन संघ, खानपुर, अमदावाद ।

आगमसूत्र हिन्दीअनुवाद - हेतु
शेष सर्वद्रव्यराशी

(१) श्री आगमश्रुतप्रकाशन

एवं

(२) श्री श्रुतप्रकाशन निधि

की तरफ से प्राप्त हुई है ।
जो हमारे पूर्व प्रकाशीत आगम साहित्य के
बदले में उपलब्ध हुई थी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

: અમારા પ્રકાશનો :

[१] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - १ - सप्ताङ्ग विवरणम्
[२] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - २ - सप्ताङ्ग विवरणम्
[३] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - ३ - सप्ताङ्ग विवरणम्
[४] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - ४ - सप्ताङ्ग विवरणम्
[५] कृदन्तमाला
[६] चैत्यवन्दन पर्वमाला
[७] चैत्यवन्दन सङ्ग्रह - तीर्थजिनविशेष
[८] चैत्यवन्दन चोविशी
[९] शत्रुञ्जयभक्ति [आवृत्ति-दो]
[१०] अभिनव जैन पञ्चाङ्ग - २०४६
[११] અભિનવ ઉપદેશ પ્રાસાદ - ૧ - શ્રાવક કર્તવ્ય - ૧ થી ૧૧
[१२] અભિનવ ઉપદેશ પ્રાસાદ - ૨ - શ્રાવક કર્તવ્ય - ૧૨ થી ૧૫
[१३] અભિનવ ઉપદેશ પ્રાસાદ - ૩ - શ્રાવક કર્તવ્ય - ૧૬ થી ૩૬
[१४] નવપદ - શ્રીપાલ (શાશ્વતી ઓળીના વ્યાખ્યાન રૂપે)
[१५] સમાધિ મરણ [વિધિ - સૂત્ર - પદ્ય - આરાધના - મરણભેદ - સંગ્રહ]
[१६] ચૈત્યવંદન માળા [૭૭૯ ચૈત્યવંદનોનો સંગ્રહ]
[१७] तत्वार्थ सूत्र प्रबोधटीका [अध्याय-१]
[१८] તત્વાર્થ સૂત્રના આગમ આધાર સ્થાનો
[१९] સિદ્ધાચલનો સાથી [આવૃત્તિ - બે]
[२०] ચૈત્ય પરિપાટી
[२१] અમદાવાદ જિનમંદિર ઉપાશ્રય આદિ ડિરેક્ટરી
[२२] શત્રુંજય ભક્તિ [આવૃત્તિ - બે]
[२३] શ્રી નવકારમંત્ર નવલાખ જાપ નોંધપોથી
[२४] શ્રી ચારિત્ર પદ એક કરોડ જાપ નોંધપોથી
[२५] શ્રી બારવ્રત પુસ્તિકા તથા અન્ય નિયમો - [આવૃત્તિ - ચાર]
[२६] અભિનવ જૈન પંચાંગ - ૨૦૪૨ [સર્વપ્રથમ ૧૩ વિભાગોમાં]
[२७] શ્રી જ્ઞાનપદ પૂજા
[२८] અંતિમ આરાધના તથા સાધુ સાધ્વી કાળધર્મ વિધિ
[२९] શ્રાવક અંતિમ આરાધના [આવૃત્તિ ત્રણ]
[३०] વીતરાગ સ્તુતિ સંચય [૧૧૫૧ ભાવવાહી સ્તુતિઓ]
[३१] (પૂજ્ય આગમોદ્ધારક શ્રી ના સમુદાયના) કાયમી સંપર્ક સ્થળો

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[૩૨] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-१
[૩૩] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-२
[૩૪] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-૩
[૩૫] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-४
[૩૬] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-५
[૩૭] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-६
[૩૮] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-७
[૩૯] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-८
[૪૦] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-९
[૪૧] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-१०

प्रकाशन १ थी ४१ अभिनवश्रुत प्रकाशने प्रगट करेल छे.

[૪૨]	आयारो	[आगमसुत्ताणि-१]	पढमं अंगसुत्तं
[૪૩]	सूयगडो	[आगमसुत्ताणि-२]	बीअं अंगसुत्तं
[૪૪]	ठाणं	[आगमसुत्ताणि-३]	तइयं अंगसुत्तं
[૪૫]	समवाओ	[आगमसुत्ताणि-४]	चउत्थं अंगसुत्तं
[૪૬]	विवाहपन्नति	[आगमसुत्ताणि-५]	पंचमं अंगसुत्तं
[૪૭]	नायाधम्मकहाओ	[आगमसुत्ताणि-६]	छट्ठं अंगसुत्तं
[૪૮]	उवासगदसाओ	[आगमसुत्ताणि-७]	सत्तमं अंगसुत्तं
[૪૯]	अंतगडदसाओ	[आगमसुत्ताणि-८]	अट्ठमंअंगसुत्तं
[૫૦]	अनुत्तरोववाइयदसाओ	[आगमसुत्ताणि-९]	नवमं अंगसुत्तं
[૫૧]	पण्हावागरणं	[आगमसुत्ताणि-१०]	दसमं अंगसुत्तं
[૫૨]	विवागसूयं	[आगमसुत्ताणि-११]	एक्कारसमं अंगसुत्तं
[૫૩]	उववाइयं	[आगमसुत्ताणि-१२]	पढमं उवंगसुत्तं
[૫૪]	रायप्पसेणियं	[आगमसुत्ताणि-१३]	बीअं उवंगसुत्तं
[૫૫]	जीवाजीवाभिगमं	[आगमसुत्ताणि-१४]	तइयं उवंगसुत्तं
[૫૬]	पन्नवणासुत्तं	[आगमसुत्ताणि-१५]	चउत्थं उवंगसुत्तं
[૫૭]	सूरपन्नति	[आगमसुत्ताणि-१६]	पंचमं उवंगसुत्तं
[૫૮]	चंदपन्नति	[आगमसुत्ताणि-१७]	छट्ठं उवंगसुत्तं
[૫૯]	जंबूद्दीवपन्नति	[आगमसुत्ताणि-१८]	सत्तमं उवंगसुत्तं
[૬૦]	निरयावलियाणं	[आगमसुत्ताणि-१९]	अट्ठमं उवंगसुत्तं
[૬૧]	कप्पवडिंसियाणं	[आगमसुत्ताणि-२०]	नवमं उवंगसुत्तं
[૬૨]	पुप्फियाणं	[आगमसुत्ताणि-२१]	दसमं उवंगसुत्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६३]	पुप्फचूलियाणं	[आगमसुत्ताणि-२२]	एक्कारसमं उवंगसुत्तं
[६४]	वण्हिदसाणं	[आगमसुत्ताणि-२३]	बारसमं उवंगसुत्तं
[६५]	चउसरणं	[आगमसुत्ताणि-२४]	पढमं पईण्णगं
[६६]	आउरपच्चक्खाणं	[आगमसुत्ताणि-२५]	बीअं पईण्णगं
[६७]	महापच्चक्खाणं	[आगमसुत्ताणि-२६]	तीइयं पईण्णगं
[६८]	भत्तपरिण्णा	[आगमसुत्ताणि-२७]	चउत्थं पईण्णगं
[६९]	तंदुलवेयालियं	[आगमसुत्ताणि-२८]	पंचमं पईण्णगं
[७०]	संथारगं	[आगमसुत्ताणि-२९]	छट्ठं पईण्णगं
[७१]	गच्छायार	[आगमसुत्ताणि-३०/१]	सत्तमं पईण्णगं-१
[७२]	चंदावेज्झयं	[आगमसुत्ताणि-३०/२]	सत्तमं पईण्णगं-२
[७३]	गणिविज्जा	[आगमसुत्ताणि-३१]	अट्ठमं पईण्णगं
[७४]	देविंदत्थओ	[आगमसुत्ताणि-३२]	नवमं पईण्णगं
[७५]	मरणसमाहि	[आगमसुत्ताणि-३३/१]	दसमं पईण्णगं-१
[७६]	वीरत्थव	[आगमसुत्ताणि-३३/२]	दसमं पईण्णगं-२
[७७]	निसीहं	[आगमसुत्ताणि-३४]	पढमं छेयसुत्तं
[७८]	बुहत्कप्पो	[आगमसुत्ताणि-३५]	बीअं छेयसुत्तं
[७९]	ववहार	[आगमसुत्ताणि-३६]	तइयं छेयसुत्तं
[८०]	दसासुयक्खंधं	[आगमसुत्ताणि-३७]	चउत्थं छेयसुत्तं
[८१]	जीयकप्पो	[आगमसुत्ताणि-३८/१]	पंचमं छेयसुत्तं-१
[८२]	पंचकप्पभास	[आगमसुत्ताणि-३८/२]	पंचमं छेयसुत्तं-२
[८३]	महानिसीहं	[आगमसुत्ताणि-३९]	छट्ठं छेयसुत्तं
[८४]	आवस्सयं	[आगमसुत्ताणि-४०]	पढमं मूलसुत्तं
[८५]	ओहनिज्जुत्ति	[आगमसुत्ताणि-४१/१]	बीअं मूलसुत्तं-१
[८६]	पिंडनिज्जुत्ति	[आगमसुत्ताणि-४१/२]	बीअं मूलसुत्तं-२
[८७]	दसवेयालियं	[आगमसुत्ताणि-४२]	तइयं मूलसुत्तं
[८८]	उत्तरज्झयणं	[आगमसुत्ताणि-४३]	चउत्थं मूलसुत्तं
[८९]	नंदीसूयं	[आगमसुत्ताणि-४४]	पढमा चूलिया
[९०]	अनुओगदारं	[आगमसुत्ताणि-४५]	बितिया चूलिया

પ્રકાશન ૪૨ થી ૯૦ અભિનવશ્રુત પ્રકાશને પ્રગટ કરેલ છે.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[૯૧]	આયાર-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૧]	પહેલુ અંગસૂત્ર
[૯૨]	સૂયગડ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૧]	બીજું અંગસૂત્ર
[૯૩]	ઠાણ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૧]	ત્રીજું અંગસૂત્ર
[૯૪]	સમવાય-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૧]	ચોથું અંગસૂત્ર
[૯૫]	વિવાહપન્નતિ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૨]	પાંચમું અંગસૂત્ર
[૯૬]	નાયાધમ્મકહા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	છઠ્ઠું અંગસૂત્ર
[૯૭]	ઉવાસગદસા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	સાતમું અંગસૂત્ર
[૯૮]	અંતગડદસા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	આઠમું અંગસૂત્ર
[૯૯]	અનુત્તરોપપાતિકદસા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	નવમું અંગસૂત્ર
[૧૦૦]	પણ્હાવાગરણ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	દસમું અંગસૂત્ર
[૧૦૧]	વિવાગસૂય-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	અગિયારમું અંગસૂત્ર
[૧૦૨]	ઉવવાઈય	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૪]	પહેલું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૩]	રાયપ્પસેણિય-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૪]	બીજું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૪]	જીવાજીવાભિગમ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૪]	ત્રીજું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૫]	પન્નવણાસુત્ત-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૪]	ચોથું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૬]	સૂરપન્નત્તિ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	પાંચમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૭]	ચંદપન્નત્તિ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	છઠ્ઠું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૮]	જંબુદ્દીવપન્નત્તિ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	સાતમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૯]	નિરયાવલિયા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	આઠમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૧૦]	કપ્પવડિંસિયા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	નવમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૧૧]	પુપ્ફિયા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	દશમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૧૨]	પુપ્ફચૂલિયા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	અગિયારમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૧૩]	વણ્હિદસા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	બારમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૧૪]	ચઉસરણ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	પહેલો પયન્નો
[૧૧૫]	આઉરપચ્ચકખાણ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	બીજો પયન્નો
[૧૧૬]	મહાપચ્ચકખાણ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	ત્રીજો પયન્નો
[૧૧૭]	ભત્તપરિણ્ણા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	ચોથો પયન્નો
[૧૧૮]	તંદુલવેયાલિય-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	પાંચમો પયન્નો
[૧૧૯]	સંથારગ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	છઠ્ઠો પયન્નો
[૧૨૦]	ગચ્છાયાર-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	સાતમો પયન્નો-૧
[૧૨૧]	ચંદાવેજ્ઝય-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	સાતમો પયન્નો-૨
[૧૨૨]	ગણિવિજ્જા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	આઠમો પયન્નો
[૧૨૩]	દેવિંદત્થઓ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	નવમો પયન્નો
[૧૨૪]	વીરત્થવ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	દશમો પયન્નો

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१२५]	निसीह-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-६]	छेदसूत्र पहेलुं
[१२६]	बुहत्कप्प-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-६]	छेदसूत्र बीजुं
[१२७]	ववहार-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-६]	छेदसूत्र त्रीजुं
[१२८]	दसासुयक्खंध-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-६]	छेदसूत्र चोथुं
[१२९]	जीयकप्पो-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-६]	छेदसूत्र पांचमुं
[१३०]	महानिसीह-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-६]	छेदसूत्र छठ्ठुं
[१३१]	आवस्सय-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-७]	पहेलुं मूलसुत्र
[१३२]	ओहनिज्जुत्ति-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-७]	बीजुं मूलसुत्र-१
[१३३]	पिंडनिज्जुत्ति-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-७]	बीजुं मूलसुत्र-२
[१३४]	दसवेयालिय-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-७]	त्रीजुं मूलसुत्र
[१३५]	उत्तरज्झयण-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-७]	चोथुं मूलसुत्र
[१३६]	नंदीसुत्तं-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-७]	पहेली चूलिका
[१३७]	अनुओगदार-	गुजराती अनुवाद	[आगमदीप-७]	बीजी चूलिका

प्रकाशन ९१ थी १३७ आगमदीप प्रकाशने प्रगट करेल छे.

[१३८] दीक्षा योगादि विधि

[१३९] ४५ आगम महापूजन विधि

[१४०]	आचाराङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१
[१४१]	सूत्रकृताङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२
[१४२]	स्थानाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-३
[१४३]	समवायाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-४
[१४४]	भगवतीअङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-५/६
[१४५]	ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-७
[१४६]	उपासकदशाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-७
[१४७]	अन्तकृद्दशाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-७
[१४८]	अनुत्तरोपपातिकदशाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-७
[१४९]	प्रश्नव्याकरणाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-७
[१५०]	विपाकश्रुताङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-८
[१५१]	औपपातिकउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-८
[१५२]	राजप्रश्नियउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-८
[१५३]	जीवाजीवाभिगमउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-९
[१५४]	प्रज्ञापनाउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१०/११
[१५५]	सूर्यप्रज्ञप्तिउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१२
[१५६]	चन्द्रप्रज्ञप्तिउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१५७]	जम्बूद्वीवप्रज्ञप्तिउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१३
[१५८]	निरयावलिकाउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१५९]	कल्पवतंसिकाउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६०]	पुष्पिताउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६१]	पुष्पचूलिकाउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६२]	वण्हिदसाउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६३]	चतुःशरणप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६४]	आतुरप्रत्याख्यानप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६५]	महाप्रत्याख्यानप्रकीर्णसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६६]	भक्तपरिज्ञाप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६७]	तंदुलवैचारिकप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६८]	संस्तारकप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६९]	गच्छाचारप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१७०]	गणिविद्याप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१७१]	देवेन्द्रस्तवप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१७२]	मरणसमाधिप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१७३]	निशीथछेदसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१५-१६-१७
[१७४]	बृहत्कल्पछेदसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१८-१९-२०
[१७५]	व्यवहारछेदसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२१-२२
[१७६]	दशाश्रुतस्कन्धछेदसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२३
[१७७]	जीतकल्पछेदसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२३
[१७८]	महानिशीथसूत्रं [मूलं]	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२३
[१७९]	आवश्यकमूलसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२४-२५
[१८०]	ओघनिर्युक्तिमूलसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२६
[१८१]	पिण्डनिर्युक्तिमूलसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२६
[१८२]	दशवैकालिकमूलसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२७
[१८३]	उत्तराध्ययनमूलसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२८-२९
[१८४]	नन्दी-चूलिकासूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-३०
[१८५]	अनुयोगद्वारचूलिकासूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-३०
[१८६]	આગમ-વિષય-દર્શન (આગમ બૃહદ્ વિષયાનુક્રમ)		

પ્રકાશન ૧૩૯ થી ૧૮૬ આગમશ્રુત પ્રકાશને પ્રગટ કરેલ છે.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१८७]	आगमसद्दकोसो - १	अ....औ	पज्जंता
[१८८]	आगमसद्दकोसो - २	क....ध	पज्जंता
[१८९]	आगमसद्दकोसो - ३	न....य	पज्जंता
[१९०]	आगमसद्दकोसो - ४	र....ह	पज्जंता

પ્રકાશન ૧૮૭ થી ૧૯૦ આગમસુત પગાસણે પ્રગટ કરેલ છે.

[१९१]	आचारसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१
[१९२]	सूत्रकृतसूत्र-हिन्दीअनुवाद-	आगमसूत्र-१
[१९३]	स्थानसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-२
[१९४]	समवायसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-२
[१९५]	भगवतीसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-३,४,५
[१९६]	ज्ञाताधर्मकथासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-५
[१९७]	उपासकदशासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-५
[१९८]	अन्तकृद्दशासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-६
[१९९]	अनुत्तरोपपातिकदशासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-६
[२००]	प्रश्नव्याकरणसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र- ६
[२०१]	विपाकश्रुतसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-६
[२०२]	औपपातिकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-६
[२०३]	राजप्रश्नियसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-६
[२०४]	जीवाजीवाभिगमसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-७
[२०५]	प्रज्ञापनासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-७,८
[२०६]	सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-८
[२०७]	चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-८
[२०८]	जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२०९]	निरयावलिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१०]	कल्पवतंसिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२११]	पुष्पितासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१२]	पुष्पिचूलिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१३]	वण्हिदशासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१४]	चतुःशरणसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१५]	आतुरप्रत्याख्यानसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१६]	महाप्रत्याख्यानसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१७]	भक्तपरिज्ञासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२१८]	तंदुलवैचारिकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१९]	संस्तारकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२०]	गच्छाचारसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२१]	चन्द्रवेध्यकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२२]	गणिविद्यासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२३]	देवेन्द्रस्तवसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२४]	वीरस्तवसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२५]	निशीथसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२६]	बृहत्कल्पसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२७]	व्यवहारसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२८]	दशाश्रुतस्कन्धसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२९]	जीतकल्पसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२३०]	महानिशीथसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०,११
[२३१]	आवश्यकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-११
[२३२]	ओघनिर्युक्ति हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-११
[२३३]	पिण्डनिर्युक्ति हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-११
[२३४]	दशवैकालिकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१२
[२३५]	उत्तराध्ययनसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१२
[२३६]	नन्दीसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१२
[२३७]	अनुयोगद्वारसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१२

પ્રકાશન-૧૯૧ થી ૨૩૭ - શ્રી શ્રુત પ્રકાશન નિધિએ પ્રગટ કરેલ છે.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमसूत्र-हिन्दी अनुवाद-भाग-१०-अनुक्रम

२९ संस्तारकसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	मंगल तथा संस्तारक के गुण	१-३०	१७-१९
२	संस्तारक का स्वरूप एवं लाभ	३१-५५	१९-२१
३	संस्तारक के दृष्टान्त	५६-८८	२१-२३
४	भावना	८९-१२१	२३-२६

३०/१ गच्छाचारसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	मंगल-आदि	१-२	२७- —
२	गच्छ में बसनेवाले के गुण	३-६-	२७- —
३	आचार्य का स्वरूप	७-४०	२७-२९
४	गुरू का स्वरूप	४१-१०६	२९-३४
५	साध्वी का स्वरूप	१०७-१३३	३४-३६
६	उपसंहार	१३४-१३७	३६- —

३०/२ चन्द्रवेध्यकसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	मंगल तथा द्वार निरूपण	१-३	३७-
२	विनयगुण-द्वार	४-२१	३७-३८
३	आचार्य-द्वार	२२-३६	३८-३९
४	शील्प-द्वार	३७-५३	३९-४०
५	विनयनिग्रह-द्वार	५४-७१	४०-४१
६	ज्ञानगुण-द्वार	७२-९९	४१-४३
७	चारित्रगुण-द्वार	१००-११६	४३-४४
८	मरणगुण-द्वार	११७-१७२	४४-४७
९	उपसंहार	१७३-१७५	४७-४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१ गणिविद्यासूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	दिवस द्वार	१-३	४९- —
२	तिथि द्वार	४-१०	४९- —
३	नक्षत्र द्वार	११-४०	४९-५०
४	करण द्वार	४१-४५	५०- —
५	ग्रह दिवस द्वार	४६-४७	५०- —
६	मुहूर्त्त द्वार	४८-५५	५०-५१
७	शकुन द्वार	५६-६०	५१- —
८	लग्न द्वार	६१-६८	५१- —
९	निमित्त द्वार	६९-८२	५१-५२

३२ देवेन्द्रस्तवसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	मंगल - देवेन्द्र विषयक पृच्छा	१-१०	५३- —
२	भवनपति	११-६६	५३-५५
३	वाणव्यंतर	६७-८०	५५-५६
४	ज्योतिष्क	८१-१६१	५६-५९
५	वैमानिक	१६२-२७३	६१-६४
६	इसत् प्राग्भार पृथ्वी एवं सिद्ध	२७४-३०२	६४-६६
७	जिनऋद्धि और उपसंहार	३०३-३०७	६६- —

३३ वीरस्तवसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	श्रमण भगवान महावीर-विशेषणआदि	१-४	६७- —
२	विशेषण आश्रित स्तवना	५-४३	६७-६९

३४ निशीथसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	गुरुमासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष	१-५८	७०-७३
२	लघुमासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष	५९-११७	७३-७७
३	लघुमासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष	११८-१९६	७७-७९
४	लघुमासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष	१९७-३१३	७९-८१
५	लघुमासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष	३१४-३९२	८१-८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निशीथसूत्र हिन्दी अनुवाद-अनुक्रम (पीछे से चालु)

उद्देशक	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
६	गुरुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	३९३-४६९	८३-८४
७	गुरुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	४७०-५६०	८४-८६
८	गुरुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	५६१-५७९	८६-८७
९	गुरुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	५८०-६०७	८९-९०
१०	गुरुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	६०८-६५४	९०-९२
११	गुरुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	६५५-७४६	९२-९४
१२	लघुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	७४७-७८८	९४-९६
१३	लघुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	७८९-८६२	९६-९७
१४	लघुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	८६३-९०४	९७-९८
१५	लघुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	९०५-१०५८	९८-१००
१६	लघुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	१०५९-११०८	१००-१०२
१७	लघुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	११०९-१२५९	१०२-१०३
१८	लघुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	१२६०-१३३२	१०३-१०५
१९	लघुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोष	१३३३-१३६९	१०५-१०८
२०	प्रायश्चित्त देने की और वहन करने की विधि	१३७०-१४२०	१०८-११०

३५ बृहत्कल्पसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

उद्देशक	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	साधु-साध्वी आचार विधि-निषेध	१-५०	१०९-१११
२	,, ,, ,, ,, ,,	५१-८०	११२-११३
३	,, ,, ,, ,, ,,	८१-११०	११३-११५
४	,, ,, ,, ,, ,,	१११-१४२	११५-११८
५	,, ,, ,, ,, ,,	१४३-१९५	११८-१२०
६	,, ,, ,, ,, ,,	१९६-२१५	१२०-१२१

३६ व्यवहारसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

उद्देशक	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	परिहार स्थान, प्रायश्चित्त विधि-आदि	१-३५	१२२-१२४
२	दो या अधिक साधर्मिक-सहविचरण विधि	३६-६५	१२४-१२६
३	दीक्षापर्याय तथा शास्त्र अनुज्ञा...आदि	६६-९४	१२६-१२८
४	ऋतुकाल सम्बन्धी विधि-निषेध	९५-१२६	१२८-१३१
५	ऋतुकाल सम्बन्धी विधि-निषेध	१२७-१४७	१३१-१३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहारसूत्र-हिन्दी अनुवाद-अनुक्रम (पीछे से चालु)

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
६	भिक्षा-अतिशय-साधु साध्वी स्थान आदि	१४८-१५९	१३२-१३३
७	साधु-साध्वी को कल्प्य-अकल्प्य विधि	१६०-१८६	१३४-१३५
८	शय्या संस्तारक पात्रविधि...आदि	१८७-२०२	१३५-१३६
९	गौचरी-बैठना-प्रवेशना इत्यादि विधि	२०३-२४८	१३६-१३८
१०	प्रतिमा वर्णन	२४९-२८५	१३८-१४१

३७ दशाश्रुतस्कन्धसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	असमाधि स्थान	१-२	१४२-१४३
२	शबलदोष	३- —	१४३-१४४
३	आशातना	४- —	१४४-१४५
४	गणिसंपदा	५-१५	१४५-१४८
५	चित्तसमाधि स्थान	१६-३४	१४८-१५०
६	उपासक प्रतिमा	३५-४७	१५०-१५५
७	भिक्षुप्रतिमा	४८-५२	१५५-१५८
८	पर्युषणा	५३- —	१५८- —
९	मोहनीय स्थान	५४-९३	१५९-१६०
१०	निदान इत्यादि	९४-११४	१६०-१६७

३८ जीतकल्पसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	प्रस्तावना	१-३	१६८- —
२	दशविध आलोचना-और-विधि	४-१०१	१६८-१७६
३	उपसंहार	१०२-१०३	१७६- —

३९/१ महानिशीथसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	शल्यउद्धरण	१-२२५	१७७-१८९
२	कर्मविपाक विवरण	२२६-४६६	१८९-२११
३	कुशीललक्षण	४६७-६५३	२११-२३९

—: ३९/२-अध्ययन-४-से-८- के लिए भाग-११-देखना :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

२१ संस्तारक

प्रकिर्णक-६- हिन्दी अनुवाद

[१] श्री जिनेश्वरदेव-सामान्य केवलज्ञानीओ के बारे में वृषभ समान, देवाधिदेव श्रमण भगवान् श्री महावीर परमात्मा को नमस्कार करके; अन्तिम काल की आराधना रूप संथारा के स्वीकार से प्राप्त होनेवाली परम्परा को मैं कहता हूँ ।

[२] श्री जिनकथित यह आराधना, चारित्र धर्म की आराधना रूप है । सुविहित पुरुष इस तरह की अन्तिम आराधना की इच्छा करते है, क्योंकी उनके जीवन पर्यन्त की सर्व आराधनाओ की पताका के स्वीकार रूप यह आराधना है ।

[३] दरिद्र पुरुष धन, धान्य आदि में जैसे आनन्द मानते है, और फिर मल्ल पुरुष जय पताका पाने में जैसे गौरव लेते है और इसकी कमी से वो अपमान और दुर्ध्यान को पाते है, वैसे सुविहित पुरुष इस आराधना में आनन्द और गौरव को प्राप्त करते है ।

[४] मणिकी सर्व जाति के लिए जैसे वैडूर्य, सर्व तरह के खुश्बुदार द्रव्य के लिए जैसे चन्दन और रत्न में जैसे वज्र होता है तथा–

[५] सर्व उत्तम पुरुषो में जैसे अरिहंत परमात्मा और जगत के सर्व स्त्री समुदाय में जैसे तीर्थंकरो की माता होती है वैसे आराधना के लिए इस संथारा की आराधना, सुविहित आत्मा के लिए श्रेष्ठतर है ।

[६] और वंश में जैसे श्री जिनेश्वर देव का वंश, सर्व कुल में जैसे श्रावककुल, गति के लिए जैसे सिद्धिगति, सर्व तरह के सुख में जैसे मुक्ति का सुख, तथा–

[७] सर्व धर्म में जैसे श्री जिनकथित अहिंसाधर्म, लोकवचन में जैसे साधु पुरुष के वचन, इत्तर सर्व तरह की शुद्धि के लिए जैसे सम्यक्त्वरूप आत्मगुण की शुद्धि, वैसे श्री जिनकथित अन्तिमकाल की आराधना में यह आराधना जरूरी है ।

[८] समाधिमरण रूप यह आराधना सच ही में कल्याणकर है । अभ्युदय उन्नति का परमहेतु है । इसलिए ऐसी आराधना तीन भुवन में देवताओं को भी दुर्लभ है । देवलोक के इन्द्र भी समाधिपूर्वक के पंडित मरण की एक मन से अभिलाषा रखते है ।

[९] विनेय ! श्री जिनकथित पंड़ित मरण तुने पाया । इसलिए निःशंक कर्म मल्ल को हणकर उस सिद्धि की प्राप्ति रूप जय पताका पाई ।

[१०] सर्व तरह के ध्यान में जैसे परमशुक्लध्यान, मत्यादि ज्ञान में केवलज्ञान और सर्व तरह के चारित्र में जैसे कषाय आदि के उपशम से प्राप्त यथाख्यात चारित्र क्रमशः मोक्ष का कारण बनता है ।

[११] श्री जिनकथित श्रमणत्व, सर्व तरह के श्रेष्ठ लाभ में सर्वश्रेष्ठ लाभ गिना जाता है; कि जिसके योग से श्री तीर्थंकरत्व, केवलज्ञान और मोक्ष, सुख प्राप्त होता है ।

[१२] और फिर परलोक के हित में रक्त और क्लिष्ट मिथ्यात्वी आत्मा को भी मोक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्ति की जड जो सम्यक्त्व गिना जाता है, वो सम्यक्त्व, देशविरति का और सम्यग्ज्ञान का महत्त्व विशेष माना जाता है । इससे तो श्री जिनकथित श्रमणत्व की प्राप्ती रूप लाभ की महत्ता विशेषतर है । क्योंकि ज्ञान दर्शन समान मुक्ति की कारण के सफलता का आधार श्रमणत्व पर रहा है ।

[१३] तथा सर्व तरह के लेश्या में जैसे शुकललेश्या सर्व व्रत, यम आदि मे जैसे ब्रह्मचर्य का व्रत और सर्व तरह के नियम के लिए जैसे श्री जिन कथित पाँच समिति और तीन गुप्ति समान गुण विशेष गिने जाते है, वैसे श्रामण्य सभी गुण मे प्रधान है । जब कि संथारा की आराधना इससे भी अधिक मानी जाती है ।

[१४] सर्व उत्तम तीर्थ में जैसे श्री तीर्थंकर देव का तीर्थ, सर्व जाति के अभिषेक के लिए सुमेरु के शिखर समान देवदेवेन्द्र से किए गए अभिषेक की तरह सुविहित पुरुष की संथारा की आराधना श्रेष्ठतर मानी जाती है ।

[१५] श्वेतकमल, पूर्णकलश, स्वस्तिक नन्दावर्त और सुन्दर फूलमाला यह सब मंगल चीज से भी अन्तिम काल की आराधना रूप संथारा अधिक मंगल है ।

[१६] जीनकथित तप रूप अग्नि से कर्मकाष्ठ का नाश करनेवाले, विरति नियमपालन में शूरा और सम्यग्ज्ञान से विशुद्ध आत्म परिणतिवाले और उत्तम धर्म रूप पाथेय जिसने पाया है ऐसी महानुभाव आत्माएँ संथारा रूप गजेन्द्र पर आरूढ होकर सुख से पार को पाते है ।

[१७] यह संथारा सुविहित आत्मा के लिए अनुपम आलम्बन है । गुण का निवासस्थान है, कल्प-आचार रूप है । और सर्वोत्तम श्री तीर्थंकर पद, मोक्षगति और सिद्धदशा का मूल कारण है ।

[१८] तुमने श्री जिनवचन समान अमृत से विभूषित शरीर पाया है । तेरे भवन में धर्मरूप रत्न को आश्रय करके रहनेवाली वसुधारा पडी है ।

[१९] क्योंकि जगत में पाने लायक सबकुछ तुने पाया है । और संथारा की आराधना को अपनाने के योग से, तुने जिनप्रवचन के लिए अच्छी धीरता रखी है । इसलिए उत्तम पुरुष से सेव्य और परमदिव्य ऐसे कल्याणलाभ की परम्परा प्राप्त की है ।

[२०] तथा सम्यग्ज्ञान और दर्शन रूप सुन्दर रत्न से मनोहर, विशिष्ट तरह के ज्ञानरूप प्रकाश से शोभा को धारण करनेवाले और चारित्र, शील आदि गुण से शुद्ध त्रिरत्नमाला को तुने पाया है ।

[२१] सुविहित पुरुष, जिसके योग से गुण की परम्परा को प्राप्त कर शकते है, उस श्री जिनकथित संथारा को जो पुण्यवान आत्माएँ पाती है, उन आत्माओं ने जगत में सारभूत ज्ञान आदि रत्न के आभूषण से अपनी शोभा बढ़ाई है ।

[२२] समस्त लोक में उत्तम और संसारसागर के पार को पानार ऐसा श्री जिनप्रणीत तीर्थ, तुने पाया है क्योंकि श्री जिनप्रणीत तीर्थ के साफ और शीतल गुण रूप जलप्रवाह में स्नान करके, अनन्ता मुनिवर ने निर्वाण सुख प्राप्त किया है ।

[२३] आश्रव, संवर और निर्जरा आदि तत्त्व, जो तीर्थ में सुव्यवस्थित रक्षित है; और शील, व्रत आदि चारित्र धर्मरूप सुन्दर पगथी से जिसका मार्ग अच्छी तरह से व्यवस्थित है वो श्री जिनप्रणीत तीर्थ कहलाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२४] जो परिषह की सेना को जीतकर, उत्तम तरह के संयमबल से युक्त बनता है, वो पुण्यवान आत्माएँ कर्म से मुक्त होकर अनुत्तर, अनन्त अव्याबाध और अखंड निर्वाण सुख भुगतता है ।

[२५] श्री जिनकथित संथारा की आराधना प्राप्त करने से तुने तीन भुवन के राज्य में मूलकारण समाधि सुख पाया है । सर्व सिद्धान्त में असामान्य और विशाल फल का कारण ऐसे संथारा रूप राज्याभिषेक, उसे भी लोक में तुने पाया है ।

[२६] इसलिए मेरा मन आज अवर्ण्य आनन्द महसूस करता है, क्योंकि मोक्ष के साधनरूप उपाय और परमार्थ से निस्तार के मार्ग रूप संथारा को तुने प्राप्त किया है ।

[२७] देवलोक के लिए कई तरह के देवताई सुख को भुगतनेवाले देव भी, श्री जिनकथित संथारा कि आराधना का पूर्ण आदरभाव से ध्यान करके आसन, शयन आदि अन्य सर्व व्यापार का त्याग करते है । तथा–

[२८] चन्द्र की तरह प्रेक्षणीय और सूरज की तरह तेज से देदीप्यमान होते है । और फिर वो सुविहित साधु, ज्ञानरूप धनवाले, गुणवान और स्थिरता गुण से महाहिमवान पर्वत की तरह प्रसिद्धि पाते है । जो–

[२९] गुप्ति समिति से सहित; और फिर संयम, तप, नियम और योग में उपयोगशील; और ज्ञान, दर्शन की आराधना में अनन्य मनवाले, और समाधि से युक्त ऐसे साधु होते है।

[३०] पर्वत में जैसे मेरू पर्वत, सर्व समुद्रो में जैसे स्वयंभूरमणसमुद्र, तारों के समूह के लिए जैसे चन्द्र, वैसे सर्व तरह के शुभ अनुष्ठान की मध्य में संथारा रूप अनुष्ठान प्रधान माना जाता है ।

[३१] हे भगवन् ! किस तरह के साधुपुरुष के लिए इस संथारा की आराधना विहित है ? और फिर किस आलम्बन को पाकर इस अन्तिम काल की आराधना हो शकती है ? और अनशन को कब धारण कर शके ? इस चीज को मैं जानना चाहता हूँ ।

[३२] जिसके मन, वचन और काया के शुभयोग सीदाते हो, और फिर जिस साधु को कई तरह की बिमारी शरीर में पेदा हुई हो, इस कारण से अपने मरण काल को नजदीक समझकर, जो संथारा को अपनाते है, वो संथारा सुविशुद्ध है ।

[३३] लेकिन जो तीन तरह के गारव से उन्मत्त होकर गुरु के पास से सरलता से पाप की आलोचना लेने के लिए तैयार नहीं है; यह साधु संथारा को अपनाए तो वो संथारा अविशुद्ध है ।

[३४] जो आलोचना के योग्य है और गुरु के पास से निर्मलभाव से आलोचना लेकर संथारा अपनाते है, वो संथारा सुविशुद्ध माना जाता है ।

[३५] शंका आदि दूषण से जिसका समग्दर्शनरूप रत्न मलिन है, और जो शिथिलता से चारित्र का पालन करके श्रमणत्व का निर्वाह करते है, उस साधु के संथारा की आराधना शुद्ध नहीं-अविशुद्ध है ।

[३६] जो महानुभाव साधु का सम्यग् दर्शनगुण अति निर्मल है, और जो निरतिचाररूप से संयमधर्म का पालन करके अपने साधुपन का निर्वाह करते है । तथा–

[३७] राग और द्वेष रहित और फिर मन वचन और काया के अशुभ योग से आत्मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का जतन करनेवाले और तीन तरह के शल्य और आँठ जाति के मद से मुक्त ऐसा पुण्यवान साधु संथारा पर आरूढ़ होता है ।

[३८] तीन गारव से रहित, तीन तरह के पाप दंड का त्याग करनेवाले, इस कारण से जगत में जिसकी कीर्ति फैली है, ऐसे श्रमण महात्मा संथारा पर आरूढ़ होता है ।

[३९] क्रोध, मान आदि चारों तरह के कषाय का नाश करनेवाला, चारों विकथा के पाप से सदा मुक्त रहनेवाले ऐसे साधु महात्मा संथारा को अपनाते है, उन सर्व का संथारा सुविशुद्ध है ।

[४०] पाँच प्रकार के महाव्रत का पालन करने में तत्पर, पाँच समिति के निर्वाह में अच्छी तरह से उपयोगशील ऐसे पुण्यवान साधुपुरुष संथारा को अपनाते है ।

[४१] छ जीवनिकाय की हिंसा के पाप से विरत, सात भयस्थान रहित बुद्धिवाला, जिस तरह से संथारा पर आरूढ़ होता है–

[४२] जिसने आँठ मदस्थान का त्याग किया है ऐसा साधु पुरुष आठ तरह के कर्म को नष्ट करने के लिए जिस तरह से संथारा पर आरूढ़ होता है–

[४३] नौ तरह के ब्रह्मचर्य की गुप्ति का विधिवत् पालन करनेवाला और दशविध यतिधर्म का निर्वाह करने में कुशल ऐसा संथारे पर आरूढ़ होता है उन सर्व का संथारा सुविशुद्ध माना जाता है ।

[४४] कषाय को जीतनेवाले और सर्व तरह के कषाय के विकार से रहित और फिर अन्तिमकालीन आराधना में उद्यत होने के कारण से संथारा पर आरूढ़ साधु को क्या लाभ मिलता है ?

[४५] और फिर कषाय को जीतनेवाला एवं सर्व तरह के विषयविकार से रहित और अन्तिमकालीन आराधना में उद्यत होने से संथारा पर विधि के अनुसार आरूढ़ होनेवाले साधु को कैसा सुख प्राप्त होता है ?

[४६] विधि के अनुसार संथारा पर आरूढ़ हुए महानुभाव क्षपक को, पहले दिन ही जो अनमोल लाभ की प्राप्ति होती है, उसका मूल्य अंकन करने के लिए कौन समर्थ है ?

[४७] क्योंकि उस अवसर पर, वो महामुनि विशिष्ट तरह के शुभ अध्यवसाय के योग से संख्येय भव की स्थितिवाले सर्वकर्म प्रति समय क्षय करते है । इस कारण से वो क्षपक साधु उस समय विशिष्ट तरह के श्रमणगुण प्राप्त करते है ।

[४८] और फिर उस अवसर पर तृण-सूखे घास के संथारा पर आरूढ़ होने के बाद भी राग, मद और मोह से मुक्त होने की कारण से वो क्षपक महर्षि, जो अनुपम मुक्ति-निःसंगदशा के सुख को पाता हैं, वो सुख हंमेशा रागदशा में पडा हुआ चक्रवर्ती भी कहाँ से प्राप्त कर शके ?

[४९] वैक्रियलब्धि के योग से अपने पुरुषरूप को विकुर्वके, देवताएँ जो बत्तीस प्रकार के हजार प्रकार से, संगीत की लयपूर्वक नाटक करते है, उसमें वो लोग वो आनन्द नहीं पा शकते कि जो आनन्द अपने हस्तप्रमाण संथारा पर आरूढ़ हुए क्षपक महर्षि पाते है ।

[५०] राग, द्वेषमय और परिणाम में कटु ऐसे विषपूर्ण जो वैषयिक सुख को छ खंड का नाथ महसूस करता है उसे संगदशा से मुक्त, वीतराग साधुपुरुष अनुभूत नहीं करते, वो

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

केवल अखंड आत्मरमणता के सुख को महसूस करते है ।

[५१] मोक्ष के सुख की प्राप्ति के लिए, श्री जैनशासन में एकान्ते वर्षकाल की गिनती नहीं है । केवल आराधक आत्मा की अप्रमत्तदशा पर सारा आधार है । क्योंकि काफी साल तक गच्छ में रहनेवाले भी प्रमत आत्मा जन्म-मरण समान संसार सागर में डूब गए है ।

[५२] जो आत्माएँ अन्तिम काल में समाधि से संथारा रूप आराधना को अपनाकर मरण पाते है, वो महानुभाव आत्माएँ जीवन की पीछली अवस्था में भी अपना हित शीघ्र साध शकते है ।

[५३] सूखे घास का संथारा या जीवरहित प्रासुक भूमि ही केवल अन्तिमकाल की आराधना का आलम्बन नहीं है । लेकिन विशुद्ध निरतिचार चारित्र के पालन में उपयोगशील आत्मा संथारा रूप है । इस कारण से ऐसी आत्मा आराधना में आलम्बन है ।

[५४] द्रव्य से संलेखना को अपनाने को तत्पर, भाव से कषाय के त्याग द्वारा रूक्ष-लुखा ऐसा आत्मा हंमेशा जैन शासन में अप्रमत्त होने के कारण से किसी भी क्षेत्र में किसी भी वक्त श्री जिनकथित आराधना में परिणत बनते है ।

[५५] वर्षाकाल में कई तरह के तप अच्छी तरह से करके, आराधक आत्मा हेमन्त ऋतु में सर्व अवस्था के लिए संथारा पर आरूढ़ होते है ।

[५६] पोतनपुर में पुष्पचूला आर्या के धर्मगुरु श्री अर्णिकापुत्र प्रख्यात थे, वो एक अवसर पर नाव के द्वारा गंगा नदी में ऊतरते थे–

[५७] नाव में बैठे लोगों ने उस वक्त उन्हें गंगा में धकेल दिया । उसके बाद श्री अर्णिकापुत्र आचार्य ने उस वक्त संथारा को अपनाकर समाधिपूर्वक मरण पाया ।

[५८] कुम्भकर नगर में दंडकराजा के पापबुद्धि पालक नाम के मंत्री ने, स्कंदककुमार द्वारा वाद में पराजित होने की कारण से–

[५९] क्रोधवश बनकर माया से, पंच महाव्रतयुक्त ऐसे श्रीस्कन्दसूरि आदि पाँच सौ निर्दोष साधुओ ने यंत्र में पीस दिए–

[६०] ममता रहित, अहंकार से पर और अपने शरीर के लिए भी अप्रतिबद्ध ऐसे वो चार सौ निन्नानवे महर्षिपुरुषने उस तरह से पीसने के बावजूद भी संथारा को अपनाकर आराधकभाव में रहकर मोक्ष पाया ।

[६१] दंड नाम के जानेमाने राजर्षि जो प्रतिमा को धारण करनेवालों में थे । एक अवसर पर यमुनावक्र नगर के उद्यान में वो प्रतिमा को धारण करके कार्योत्सर्गध्यान में खडे थे, वहाँ यवन राजा ने उस महर्षि को बाणों से वींध दिया, वो उस वक्त संथारा को अपनाकर आराधक भाव में रहे–

[६२] उसके बाद यवन राजा ने संवेग पाकर श्रमणत्व को अपनाया । शरीर के लिए स्पृहारहित बनकर कायोत्सर्गध्यान में खड़े रहे । उस अवसर पर किसी ने उन्हें बाण से वींध लिया । फिर भी संथारा को अपनाकर उस महर्षि ने समाधिकरण पाया ।

[६३] साकेतपुर के श्री कीर्तिधर राजा के पुत्र श्री सुकोशल ऋषि, चातुर्मास में मासक्षमण के पारणे के दिन, पिता मुनि के साथ पर्वत पर से उत्तर रहे थे । उस वक्त पूर्वजन्म की वाघण माँ ने उन्हें फाड़ डाला–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६४] फिर भी उस वक्त गाढ़ तरह से धीरता से अपने प्रत्याख्यान में अच्छी तरह उपयोगशील रहे । वाघण से खा जाने से उन्होंने अन्त में समाधिपूर्वक मरण पाया ।

[६५] उज्जयिनी नगरी में श्री अवन्तिसुकुमाल ने संवेग भाव को पाकर दीक्षा ली । सही अवसर पर पादपोगम अनशन अपनाकर वो श्मशान की मध्य में एकान्त ध्यान में रहे थे।

[६६] रोषायमान ऐसी शियालण ने उन्हें त्रास पूर्वक फाड़कर खा लिया । इस तरह तीन प्रहर तक खाने से उन्होंने समाधिपूर्वक मरण पाया ।

[६७] शरीर का मल, रास्ते की धूल और पसीना आदि से कादवमय शरीरवाले, लेकिन शरीर के सहज अशुचि स्वभाव के ज्ञाता, सुरवणग्राम के श्री कार्तिकार्यऋषि शील और संयमगुण के आधार समान थे । गीतार्थ ऐसे वो महर्षि का देह अजीर्ण बिमारी से पीड़ित होने के बावजूद भी वो सदाकाल समाधि भाव में रमण करते थे ।

[६८] एक वक्त रोहिड़कनगर में प्रासुक आहार की गवेषणा करते हुए उस ऋषि को पूर्ववैरी किसी क्षत्रिय ने शक्ति के प्रहार से बींध लिया–

[६९] देह भेदन के बावजूद भी वो महर्पि एकान्त-विरान और तापरहित विशाल भूमि पर अपने देह का त्याग करके समाधि मरण पाया ।

[७०] पाटलीपुत्र नगर में श्री चन्द्रगुप्त राजा का श्री धर्मसिंह नाम का मित्र था । संवेगभाव पाकर उसने चन्द्रगुप्त की लक्ष्मी का त्याग करके प्रवज्या अपनाई–

[७१]श्री जिनकथित धर्म में स्थित ऐसे उसने फोल्लपुर नगर में अनशन को अपनाया और गृद्धपृष्ठ पद्यक्खाण को शोकरहितरूप से किया । उस वक्त जंगल में हजार जानवरों ने उनके शरीर को चूंथ डाला ।

[७२] इस तरह जिसका शरीर खाया जा रहा है, ऐसे वो महर्षि, ने शरीर को वोसिराके-त्याग करके पंड़ित मरण पाया ।

[७३] पाटलीपुत्र-पटणा नगर में चाणक्य नाम का मंत्री प्रसिद्ध था । किसी अवसर पर सर्व तरह के पाप आरम्भ से निवृत्त होकर उन्होंने इंगिनी मरण अपनाया ।

[७४] उसके बाद गाय के वाड़े में पादपोगम अनशन को अपनाकर वो कायोत्सर्गध्यान में खड़े रहे ।

[७५] इस अवसर पर पूर्वबैरी सुबन्धु मंत्री ने अनुकूल पूजा के बहाने से वहां छाणे जलाए, ऐसे शरीर जलने के बावजूद भी, श्री चाणक्य ऋषि ने समाधिपूर्वक मरण को प्राप्त किया ।

[७६] काकन्दी नगरी में श्री अमृतघोष नाम का राजा था । उचित अवसर पर उसने पुत्र को राज सोंपकर प्रवज्या ग्रहण की ।

[७७] सूत्र और अर्थ में कुशल और श्रुत के रहस्य को पानेवाले ऐसे वो राजर्षि शोकरहितरूप से पृथ्वी पर विहार करते क्रमशः काकन्दी नगर में पधारे ।

[७८] वहाँ चंड़वेग नाम के वैरी ने उनके शरीर को शस्त्र के प्रहार से छेद दिया । शरीर छेदा जा रहा है उस वक्त भी वो महर्षि समाधिभाव में स्थिर रहे और पंड़ित मरण प्राप्त किया।

[७९-८०] कौसाम्बी नगरी में ललीतघटा बत्तीस पुरुष विख्यात थे । उन्होने संसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की असारता को जानकर श्रमणत्व अंगीकार किया । श्रुतसागर के रहस्यो को प्राप्त किये हुए ऐसे उन्होने पादपोपगम अनशन स्वीकार किया । अकस्मात् नदी की बाढ़ से खींचते हुए बड़े द्रह मध्य में वो चले गए । ऐसे अवसर में भी उन्होंने समाधिपूर्वक पंड़ित मरण प्राप्त किया।

[८१-८३] कृणाल नगर में वैश्रमणदास नाम का राजा था । इस राजा का रिष्ठ नाम का मंत्री कि जो मिथ्या दृष्टि और दुराग्रह वृत्तिवाला था । उस नगर में एक अवसर पर मुनिवर के लिए वृषभ समान, गणिपिटकरूप श्री द्वादशांगी के धारक और समस्त श्रुतसागर के पार को पानेवाले और धीर ऐसे श्री ऋषभसेन आचार्य,अपने परिवार सहित पधारे थे । उस सूरि के शिष्य श्री सिंहसेन उपाध्याय कि जो कई तरह के शास्त्रार्थ के रहस्य के ज्ञाता और गण की तृप्ति को करनेवाले थे । राजमंत्री रिष्ठ के साथ उनका वाद हुआ । वाद में रिष्ठ पराजित हुआ । इससे रोष से धमधमते, निर्दय ऐसे उसने प्रशान्त और सुविहित श्री सिंहसेन ऋषि को अग्नि से जला दिया । शरीर अग्नि से जल रहा है । इस अवस्था में उस ऋषिवर ने समाधिपूर्वक मरण को प्राप्त किया ।

[८४] हस्तिनागपुर के कुरुदत श्रेष्ठीपुत्र ने स्थविरो के पास दीक्षा को अपनाया था। एक अवसर पर नगर के उद्यान में वो कायोत्सर्गध्यान में खड़े थे । वहाँ गोपाल ने निर्दोष ऐसे उनको शाल्मली पेड के लकड़े की तरह जला दिया । फिर भी इस अवस्था में उन्होंने समाधिपूर्वक पंड़ित मरण प्राप्त किया ।

[८५] चिलातीपुत्र नाम के चोर ने, उपशम, विवेक और संवररूप त्रिपदी को सुनकर दीक्षा ग्रहण की । उस अवसर पर वो वहाँ ही कायोत्सर्गध्यान में रहें । चींटीओं ने उनके शरीर को छल्ली कर दिया । इस तरह शरीर खाए जाने के बाद भी उन्होंने समाधि से मरण पाया।

[८६] श्री गजसुकुमाल ऋषि नगर के उद्यान में कायोत्सर्गध्यान में रहें थे । निर्दोष और शान्त ऐसे उनको, किसी पापी आत्माने हजारो खीले से जैसे कि मढ़ा दिया हो उस तरह से हरे चमड़े से बाँधकर, पृथ्वी पर पटका । इसके बावजूद भी उन्होंने समाधिपूर्वक मरण पाया। **(इस कथानक में कुछ गरबडी होने का संभव है ।)**

[८७] मंखली गोशालक ने निर्दोष ऐसे श्री सुनक्षत्र और श्री सर्वानुभूति नाम के श्री महावीर परमात्मा के शिष्य को तेजोलेश्या से जला दिया था । उस तरह जलते हुए वो दोनों मुनिवर ने समाधिभाव को अपनाकर पंड़ित मरण पाया ।

[८८] संथारा को अपनाने की विधि उचित अवसर पर, तीन गुप्ति से गुप्त ऐसा क्षपकसाधु ज्ञपरिज्ञा से जानता है । फिर यावज्जीव के लिए संघ समुदाय के बीच में गुरु के आदेश के अनुसार आगार सहित चारों आहार का पच्चक्खाण करता है ।

[८९] या फिर समाधि टीकाने के लिए, कोइ अवसर में क्षपक साधु तीन आहार का पच्चक्खाण करता है और केवल प्रासुक जल का आहार करता है । फिर उचित काल में जल का भी त्याग करता है ।

[९०] शेषलोगों को संवेग प्रकट हो उस तरह से वह क्षपक क्षमापना करे और सर्व संघ समुदाय के बीच में कहना चाहिए कि पूर्वे मन, वचन और काया के योग से करने, करवाने और अनुमोदने द्वारा मैंने जो कुछ भी, अपराध किए हो उन्हें मैं खमाता हूँ ।''

[९१] दो हाथ को मस्तक से जुड़कर उसे फिर से कहना चाहिए कि शल्य से रहित

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

यह मैं आज सर्व तरह के अपराध को खमाता हूँ । माता-पिता समान सर्व जीव मुझे क्षमा करना ।''

[९२] धीर पुरुषने प्ररूपे हुए और फिर सत्पुरुष से सदा सेवन किए जानेवाले, और कायर आत्माएँ के लिए अति दुष्कर ऐसे पंड़ित मरण-संथारा को, शिलातल पर आरूढ़ हुए निःसंग और धन्य आत्माएँ साधना करती है ।

[९३] सावध होकर तूं सोच । तुने नरक और तिर्यंच गति में और देवगति एवं मानवगति में कैसे कैसे सुख दुःख भुगते है ?

[९४] हे मुमुक्षु ! नरक के लिए तुने असाता बहुल दुःखपूर्ण, असामान्य और तीव्र दर्द को शरीर की खातिर प्रायः अनन्तीबार भुगता है ।

[९५] और फिर देवपन में और मानवपन में पराये दासभाव को पाकर तुने दुःख, संताप और त्रास को उपजानेवाले दर्द को प्रायःअनन्तीबार महसूस किया है और हे पुण्यवान्।

[९६] तिर्यञ्चगति को पाकर पार न पा शके ऐसी महावेदनाओ को तुने कईं बार भुगता है । इस तरह जन्म और मरण समान रेंट के आर्वत जहाँ हंमेशा चलते है, वैसे संसार में तू अनन्तकाल भटका है ।

[९७] संसार के लिए तुने अनन्तकाल तक अनन्तीबार अनन्ता जन्म मरण को महसूस किया है । यह सब दुःख संसारवर्ती सर्व जीव के लिए सहज है । इसलिए वर्तमानकाल के दुःख से मत घबराना और आराधना को मत भूलना ।

[९८] मरण जैसा महाभय नहीं है और जन्म समान अन्य कोई दुःख नहीं है । इसलिए जन्म-मरण समान महाभय की कारण समान शरीर के ममत्वभाव को तूं शीघ्र छेद डाल।

[९९] यह शरीर जीव से अन्य है । और जीव शरीर से भिन्न है यह निश्चयपूर्वक दुःख और कलेश की जड़ समान उपादान रूप शरीर के ममत्व को तुजे छेदना चाहिए । क्योंकि भीम और अपार इस संसार में, आत्मा ने शरीर सम्बन्धी और मन सम्बन्धी दुःख को अनन्तीबार भुगते है ।

[१००] इसलिए यदि समाधि मरण को पाना हो तो उस उत्तम अर्थ की प्राप्ति के लिए तुझे शरीर आदि अभ्यन्तर और अन्य बाह्य परिग्रह के लिए ममत्त्वभाव को सर्वथा वोसिरा देना-त्याग करना चाहिए ।

[१०१] जगत के शरण समान, हितवत्सल समस्त संघ, मेरे सारे अपराधों को खमो और शल्य से रहित बनकर मैं भी गुण के आधार समान श्री संघ को खमाता हूँ ।

[१०२] और 'श्री आचार्यदेव, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल और गण आदि जो किसी को मैंने कषाय उत्पन्न करवाया हो, कषाय की मैं कारण वना होता उन सबको मैं त्रिविध योग से खमाता हूँ ।'

[१०३] सर्व श्रमण संघ के सभी अपराध को मैं मस्तक पर दो हाथ जुड़ने समान अंजलि करके खमाता हूँ । और मैं भी सबको क्षमा करता हूँ ।

[१०४] और फिर मैं जिनकथित धर्म में अर्पित चित्तवाला होकर सर्व जगत के जीव समूह के साथ बंधुभाव से निःशल्य तरह से खमता हूँ । और मैं भी सबको खमाता हूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१०५] ऐसे अतिचारों को खमानेवाला और अनुत्तर तप एवं अपूर्व समाधि को प्राप्त करनेवाली क्षपक आत्मा; बहुविध बाधा संताप आदि के मूल कारण कर्मसमूह को खपाते हुए समभाव में विहरता है ।

[१०६] अनगिनत लाख कोटि अशुभ भव की परम्परा द्वारा जो गाढ़ कर्म बाँधा हो; उन सर्व कर्मसमूह को संथारा पर आरूढ़ होनेवाली क्षपक आत्मा, शुभ अध्यवसाय के योग से एक समय में क्षय करते है ।

[१०७] इस अवसर पर, संथारा पर आरूढ़ हुए महानुभाव क्षपक को शायद पूर्वकालीन अशुभ योग से, समाधिभाव में विघ्न करनेवाला दर्द उदय में आए, तो उसे शमा देने के लिए गीतार्थ ऐसे निर्यामक साधु बावना चन्दन जैसी शीतल धर्मशिक्षा दे ।

[१०८] हे पुण्य पुरुष ! आराधना में ही जिन्होंने अपना सबकुछ अर्पण किया है, ऐसे पूर्वकालीन मुनिवर; जब वैसी तरह के अभ्यास बिना भी कई जंगली जानवर से चारो ओर घेरे हुए भयंकर पर्वत की चोटी पर कायोत्सर्गध्यान में रहते थे ।

[१०९] और फिर अति धीरवृत्ति को धरनेवाले इस कारण से श्री जिनकथित आराधना की राह में अनुत्तर रूप से विहरनेवाले वो महर्षि पुरुप, जंगली जानवर की दाढ़ में आने के बावजूद भी समाधिभाव को अखंड रखते है और उत्तम अर्थ की साधना करते है ।

[११०] 'हे सुविहित ! धीर और स्वस्थ मानसवृत्तिवाले निर्यामक साधु, जब हंमेशा सहाय करनेवाले होते है ऐसे हालात में समाधिभाव पाकर क्या इस संथारे की आराधना का पार नही पा शकते क्या ? मतलब तुझे आसानी से इस संथारा के पार को पाना चाहिए ।

[१११] क्योंकि जीव शरीर से अन्य है, वैसे शरीर भी जीव से भिन्न है । इसलिए शरीर के ममत्व को छोड देनेवाले सुविहित पुरुप श्री जिनकथित धर्म की आराधना की खातिर अवसर पर शरीर का भी त्याग कर देते है ।

[११२] 'संथारा पर आरूढ़ हुए क्षपक, पूर्वकालीन अशुभ कर्म के उदय से पेदा हुई वेदनाओं को समभाव से सहकर, कर्म स्थान कलंक की परम्परा को वेलड़ी की तरह जड़ से हिला देते है । इसलिए तुम्हें भी इस वेदना को समभाव से सहन करके कर्म का क्षय कर देना चाहिए ।'

[११३] बहुत क्रोड साल तक तप, क्रिया आदि के द्वारा आत्मा जो कर्मसमूह को खपाते है । मन, वचन, काया के योग से आत्मा की रक्षा करनेवाले ज्ञानी आत्मा, उस कर्मसमूह को केवल साँस में खपाते हैं । क्योंकि सम्यग्ज्ञान पूर्वक के अनुष्ठान का प्रभाव अचिन्त्य है ।

[११४] मन, वचन और काया से आत्मा का जतन करनेवाले ज्ञानी आत्मा, बहुत भव से संचित किए आँठ प्रकार के कर्मसमूह समान पाप को केवल साँस में खपाते है । इस कारण से हे सुविहित ! सम्यग्ज्ञान के आलम्बन पूर्वक तुम्हें भी इस आराधना में उद्यमी रहना चाहिए ।

[११५] इस प्रकार के हितोपदेशरूप आलम्बन को पानेवाले सुविहित आत्माएँ, गुरु आदि वडीलो से प्रशंसा पानेवाले संथारा पर धीरजपूर्वक आरूढ़ होकर, सर्व तरह के कर्म मल को खपानेपूर्वक उस भव में या तीसरे भव में अवश्य सिद्ध होता है और महानन्द पद को प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते है ।

[११६] गुप्ति समिति आदि गुण से मनोहर; सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप रत्नत्रयी से महामूल्यवान और संयम, तप, नियम आदि गुण रूप;

[११७] सुवर्णजड़ित श्री संघरूप महामुकुट, देव, देवेन्द्र, असुर और मानव सहित तीन लोक में विशुद्ध होने की कारण से पूजनीय है, अति दुर्लभ है । और फिर निर्मल गुण का आधार है, इसीलिए परमशुद्ध है, और सबको शिरोधार्य है ।

[११८] ग्रीष्म ऋतु में अग्नि से लाल तपे लोहे के तावड़े के जैसी काली शिला में आरूढ़ होकर हजार किरणो से प्रचंड और उग्र ऐसे सूरज के ताप से जलने के बावजूद भी;

[११९] कषाय आदि लोग का विजय करनेवाले और ध्यान में सदाकाल उपयोगशील और फिर अति सुविशुद्ध ज्ञानदर्शन रूप विभूति से युक्त और आराधना में अर्पित चित्तवाले सुविहित पुरुष ने;

[१२०] उत्तम लेश्या के परीणाम समान, राधावेध समान दुर्लभ, केवलज्ञान सदृश, समताभाव से पूर्ण ऐसे उत्तम अर्थ समान समाधिमरण को पाया है ।

[१२१] इस तरह से मैंने जिनकी स्तुति की है, ऐसे श्री जिनकथित अन्तिम कालीन संथारा रूप हाथी के स्कन्ध पर सुखपूर्वक आरूढ़ हुए, नरेन्द्र के लिए चन्द्र समान श्रमण पुरुष, सदाकाल शाश्वत, स्वाधीन और अखंड सुख को परम्परा दो ।

२९	संस्तारक-प्रकिर्णक-६-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३०/१ गच्छाचार

प्रकिर्णक-७/१- हिन्दी अनुवाद

[१] देवेन्द्र से नमित महा ऐश्वर्यवाली, श्री महावीर देव को नमस्कार करके, श्रुतरूप समुद्र में से सुविहित मुनि समुदाय ने आचरण किए हुए गच्छाचार संक्षेप से उद्धरकर मैं कहूँगा।

[२] गौतम ! इस जगत में कुछ ऐसे भी जीव है कि जो, उस उन्मार्गगामी गच्छ में रहकर या उसका सहवास करके भव परम्परा में भ्रमण करते है । क्योंकि असत्पुरुष का संग शीलवंत-सज्जन को भी अधःपात का हेतु होता है ।

[३] गौतम ! अर्ध प्रहर-एक प्रहर दिन, पक्ष, एक मास या एक साल पर्यन्त भी सन्मार्गगामी गच्छ में रहनेवाले–

[४] आलसी-निरुत्साही और विमनस्क मुनि भी, दुसरे महाप्रभाववाले साधुओं को सर्व क्रिया में अल्प सत्त्ववाले–

[५] जीव से न हो शके ऐसे तप आदि रूप उद्यम करते देखकर, लज्जा और शंका का त्याग करके धर्मानुष्ठान करने में उत्साह धरते है । और फिर गौतम !

[६] वीर्योत्साह द्वारा ही जीव ने जन्मान्तर में किए हुए पाप, मुहूर्त्त मात्र में जलकर राख हो जाते है ।

[७] इसलिए अच्छी तरह से कसौटी करके जो गच्छ सन्मार्ग प्रतिष्ठित हो उसमें जीवन पर्यन्त बँसना । क्योंकि जो संयत सक्रियावान् हो वही मुनि है ।

[८] आचार्य महाराज गच्छ के लिए मेढी, आलम्बन, स्तम्भ, दृष्टि, उत्तम यान समान है । यानि कि मेथी - (जो बंध से जानवर मर्यादा में रहे वो) में बाँधे जानवर जैसे मर्यादा में रहते है, वैसे गच्छ भी आचार्य के वन्धन से मर्यादा मे प्रवर्तते है । गड्ढे आदि में गिरते जैसे हस्तादिक का आलम्बन धरके रखते है, वैसे संसार समान गति में गिरते गच्छ को आचार्य धरके रखते है । जैसे स्तम्भ प्रासाद का आधार है, वैसे आचार्य भी गच्छ रूप प्रासाद का आधार है । जैसे नजर शुभाशुभ चीज जीव को बतानेवाली है, वैसे आचार्य भी गच्छ को भावि शुभाशुभ बतानेवाले है । जैसे बिना छिद्र का उत्तम जहाज जीव को समुद्र तट पर पहुँचाता है, वैसे आचार्य भी गच्छ को संसार के तट पर पहुँचाते है । इसलिए गच्छ की कसौटी करने की इच्छा रखनेवाले को पहले आचार्य की ही कसौटी लेना चाहिए ।

[९] हे भगवन् ! छद्मस्थमुनि किस निशानीओ से उन्मार्गगामी आचार्य को जान शके ? इस प्रश्न के उत्तर में श्री गुरु कहते कि हे मुनि ! उस निशानीयाँ मैं कहता हूँ वो सुनो ।

[१०] अपनी मरजी के अनुसार व्यवहार करनेवाले, दुष्ट-आचारवान्, आरम्भ में प्रवर्तावनार, पीठफलक आदि में प्रतिबद्ध, अप्काय की हत्या करनेवाले–

[११] मूल और उत्तर गुण से भ्रष्ट हुए, सामाचारी के विराधक, हंमेशा गुरु के आगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलोचना नहीं करनेवाले और राजकथा आदि विकथा में हंमेशा तत्पर हो वो आचार्य अधम जानने चाहिए ।

[१२] छत्तीस गुणयुक्त और अति व्यवहार कुशल ऐसे आचार्य को भी दुसरों की साक्षी में आलोचना रूप विशुद्धि करनी चाहिए ।

[१३] जैसे अति कुशल वैद्य अपनी व्याधि दुसरे वैद्य को वताते है, और उस वैद्य का कहा मानकर व्याधि के प्रतिकार समान कर्म का आचरण करते है, वैसे आलोचक सूरि भी अन्य के पास अपना पाप प्रकट करें और उन्होंने दिया हुआ तप विधिवत् अंगीकार करते है ।

[१४] देश, क्षेत्र, द्रव्य, काल और भाव जानकर वस्त्र, पात्र, उपाश्रय और साधु-साध्वी के समूह का संग्रह करे और सूत्रार्थ का चिन्तवन करे, उनको अच्छे आचार्य मानना चाहिए ।

[१५] जो आचार्य आगमोक्त विधि से शिष्य का संग्रह और उनके लिए श्रुतदान आदि उपग्रह न करे - न करवाएँ, साधु और साध्वी को दिक्षा देकर समाचारी न शीखाए ।

[१६] और जो बालशिष्य को गाय जैसे बछड़े को चूमती है वैसे चूमे और सन्मार्ग ग्रहण न करवाएँ, उसे शिष्य का शत्रु मानना चाहिए ।

[१७] जो आचार्य शिष्य को स्नेह से चूमे, लेकिन सारणा, वारणा, प्रेरणा और बार-बार प्रेरणा न करे वो आचार्य श्रेष्ठ नहीं है; लेकिन जो सारणा वारणादि करते है वो दंड आदि द्वारा मारने के बावजूद भी श्रेष्ठ है ।

[१८] और फिर जो शिष्य प्रमाद समान मदीरा से ग्रस्त और सामाचारी विराधक गुरु को हितोपदेश के द्वारा धर्ममार्ग में स्थिर न करे वो शिष्य भी शत्रु ही है ।

[१९] प्रमादी गुरु को किस तरह बोध करते है वो दिखाते है । हे मुनिवर ! हे गुरुदेव ! तुम्हारे जैसे पुरुष भी यदि प्रमाद के आधीन हो तो फिर इस संसार सागर में हम जैसे को नौकासमान दुसरे कौन आलम्बन होंगे ?

[२०] प्रवचन प्रधान, ज्ञानाचार, दर्शनाचार को चारित्राचार उन तीनों में और फिर पंचविध आचार में, खुद को और गच्छ को स्थिर करने के लिए जो प्रेरणा करे वो आचार्य।

[२१] चार तरह का पिंड, उपधि और शय्या इन तीनों को, उद्गम, उत्पादन और एषणा द्वारा शुद्ध, चारित्र की रक्षा के लिए, ग्रहण करे वो सच्चा संयमी है ।

[२२] दुसरों ने कहा हुआ गुह्य प्रकट न करनेवाले और सर्व तरह से सर्व कार्य में अविपरीत देखनेवाले हो वो, चक्षु की तरह, बच्चे और बुढ्ढे से संकीर्ण गच्छ की रक्षा करते है ।

[२३] जो आचार्य सुखशील आदि गुण द्वारा नवकल्प रुप या गीतार्थरूप विहार को शिथिल करते है वो आचार्य संयमयोग द्वारा केवल वेशधारी ही है ।

[२४] कुल, गाँव, नगर और राज्य का त्याग करके भी जो आचार्य फिर से उस कुल आदि में ममत्व करते है, उस संयमयोग द्वारा निःसार केवल वेशधारी ही है ।

[२५] जो आचार्य शिष्यसमूह को करनेलायक कार्य में प्रेरणा करते है और सूत्र एवं अर्थ पढ़ाते है, वह आचार्य धन्य है, पवित्र है, बन्धु है और मोक्षदायक है ।

[२६] वही आचार्य भव्यजीव के लिए चक्षुसमान कहे है कि जो जिनेश्वर के बताए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए अनुष्ठान यथार्थरूप से बताते है ।

[२७] जो आचार्य सम्यक् तरह से जिनमत प्रकाशते है वो तीर्थंकर समान है और जो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करते है वो कापुरुष है, सत्पुरुष नहीं ।

[२८] भ्रष्टाचारी आचार्य, भ्रष्टाचारी साधु की उपेक्षा करनेवाले आचार्य और उन्मार्ग में रहे आचार्य, इन तीनों ज्ञान आदि मोक्ष मार्ग को नष्ट करते है ।

[२९] उन्मार्ग में रहे और उन्मार्ग को नष्ट करनेवाले आचार्य का जो सेवन करते है, हे गौतम ! यकीनन वो अपने आत्मा को संसार में गिराते है ।

[३०] जिस तरह अनुचित तैरनेवाला आदमी कई लोगों को डूबाता है, वैसे उन्मार्ग में रहा एक भी आचार्य उसके मार्ग को अनुसरण करनेवाले भव्य जीव के समूह को नष्ट करते है ।

[३१] उन्मार्गगामी की राह में व्यवहार करनेवाले और सन्मार्ग को नष्ट करनेवाले केवल साधु वेश धरनेवाले को हे गौतम ! यकीनन अनन्त संसार होता है ।

[३२] खुद प्रमादी हो, तो भी शुद्ध साधुमार्ग की प्ररुपणा करे और खुद को साधु एवं श्रावकपक्ष के अलावा तीसरे संविज्ञपक्ष में स्थित करे । लेकिन इससे विपरीत अशुद्ध मार्ग की प्ररूपणा करनेवाले खुद को गृहस्थधर्म से भी भ्रष्ट करते है ।

[३३] अपनी कमजोरी के कारण से शायद त्रिकरणशुद्ध से जिनभाषित अनुष्ठान न कर शके, तो भी जैसे श्री वीतरागदेव ने कहा है, वैसे यथार्थ सम्यक् तरह से तत्त्व प्ररुपे ।

[३४] मुनिचर्या में शिथिल होने के बावजूद भी विशुद्ध चरणसित्तरी-करणसित्तरी के प्रशंसा करके प्ररूपणा करनेवाले सुलभबोधि जीव अपने कर्म को शिथिल करता है ।

[३५] संविज्ञपाक्षिकमुनि सन्मार्ग में प्रवर्तते दुसरे साधुओ को औषध, भैषज द्वारा समाधि दिलाने समान खुद वात्सल्य रखे और दुसरों के पास करवाए ।

[३६] त्रिलोकवर्ती जीव ने जिसके चरणयुगल को नमस्कार किया है ऐसे कुछ जीव ही भूतकाल में थे, अभी है और भावि में होंगे कि जिनका काल मात्र भी दुसरों का हित करने के ही एक लक्षपूर्वक बीतता है ।

[३७] गौतम ! भूत-भावि और वर्तमान काल में भी कुछ ऐसे आचार्य है, कि जिनका केवल नाम ही ग्रहण किया जाए, तो भी यकीनन प्रायश्चित लगता है ।

[३८] जैसे लोक में नौकर और वाहन शिक्षा बिना स्वेच्छाचारी होता है, वैसे शिष्य भी स्वेच्छाचारी होता है । इसलिए गुरु ने प्रतिपृच्छा और प्रेरणादि द्वारा शिष्य वर्ग को हंमेशा शिक्षा देनी चाहिए ।

[३९] जो आचार्य आदि उपाध्याय प्रमाद से या आलस से शिष्यवर्ग को मोक्षानुष्ठान के लिए प्रेरणा नहीं करते, उन्होंने जिनेश्वर की आज्ञा का खंडन किया है यह समझना चाहिए।

[४०] हे गौतम ! इस प्रकार मैंने संक्षेप से गुरु का लक्षण बताया । अब गच्छ का लक्षण कहूँगा, वो तूं हे धीर ! एकाग्ररूप से सुन ।

[४१] जो गीतार्थ संवेगशाली-आलस रहित - द्रढव्रती-अस्खलित - चारित्रवान् हंमेशा रागद्वेष रहित–

[४२] आठमदरहित - क्षीण कषायी और जीतेन्द्रिय ऐसे उस छद्मस्थ मुनि के साथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी केवली विचरे और बँस जाए ।

[४३] संयम में व्यवहार करने के बाद भी परमार्थ को न जाननेवाले और दुर्गति के मार्ग को देनेवाले ऐसे अगीतार्थ को दूर से ही त्याग करे ।

[४४] गीतार्थ के वचन से बुद्धिमान मानव हलाहल झहर भी निःशंकपन से पी जाए और मरण दिलाए ऐसी चीज को भी खा जाए ।

[४५] क्योंकि हकीकत में वो झहर नहीं है लैकिन अमृत समान रसायण होता है; निर्विघ्नकारी है, वो मारता नहीं, शायद मर जाता है, तो भी वो अमर समान होता है ।

[४६] अगीतार्थ के वचन से कोई अमृत भी न पीए, क्योंकि वो अगीतार्थ से बताया हुआ हकीकत में अमृत नहीं है ।

[४७] परमार्थ से वो अमृत न होने से सचमुच हलाहल झहर है, इसलिए वो अजरामर नहीं होता, लेकिन उसी वक्त नष्ट होता है ।

[४८] अगीतार्थ और कुशीलीया आदि का संग मन, वचन, काया से त्याग देना, क्योंकि सफर की राह में लूँटेरे जैसे विघ्नकारी है, वैसे वो मोक्षमार्ग में विघ्नकारी है ।

[४९] देदीप्यमान अग्नि को जलता देखकर उसमें निःशंक खूद को भस्मीभूत कर दे, लेकिन कुशीलीया का आश्रय कभी भी न करे ।

[५०] जो गच्छ के भीतर गुरु ने प्रेरणा किए शिष्य, रागद्वेष, पश्चाताप द्वारा धगधगायमान अग्नि की तरह जल उठता है, उसे हे गौतम ! गच्छ मत समजना ।

[५१] गच्छ महाप्रभावशाली है, क्योंकि उसमें रहनेवालों को बड़ी निर्जरा होती है, सारणा-वारणा और प्रेरणा आदि द्वारा उन्हें दोष की प्राप्ति भी नहीं होती ।

[५२] गुरु की ईच्छा का अनुसरण करनेवाले, सुविनीत, परिसह जीतनेवाले, धीर, अभिमानरहित, लोलुपतारहित, गारव और विकथा न करनेवाले–

[५३-५४] क्षमावान् इन्द्रिय का दमन करनेवले, गुप्तिवंत, निर्लोभी, वैराग्य मार्ग में लीन, दस-विध समाचारी, आवश्यक और संयम में उद्यमवान और खर, कठोर, कर्कश, अनिष्ट और दुष्ट वाणी से और फिर अपमान और नीकाल देना आदि द्वारा भी जो द्वेष न करे–

[५५] अपकीर्ति न करे, अपयश न करे, अकार्य न करे, कंठ में प्राण आए तो भी प्रवचन मलीन न करे, वैसे मुनि बहोत निर्जरा करते है ।

[५६] करने लायक या न करने लायक काम में कठोर-कर्कश-दुष्ठ-निष्ठुर भाषा में गुरुमहाराज कुछ कहे, तो वहाँ शिष्य विनय से कहे कि 'है प्रभु, आप कहते हो वैसे वो वास्तविक है ।' इस प्रकार जहाँ शिष्य व्यवहार करता है हे गौतम ! वो सचमुच गच्छ है।

[५७] पात्र आदि में भी ममत्वरहित, शरीर के लिए भी स्पृहा रहित शुद्ध आहार लेने में कुशल हो वो मुनि है । अगर अशुद्ध मिल जाए तो तपस्या करनेवाले और एषणा के बयाँलीस दोष रहित आहार लेने में कुशल हो वो मुनि है ।

[५८] वो निर्दोष आहार भी रूप-रस के लिए नहीं, शरीर के सुन्दर वर्ण के लिए नहीं और फिर काम की वृद्धि के लिए भी नहीं, लेकिन अक्षोपांग की तरह, चारित्र का भार वहन करने के लिए शरीर धारण करने के लिए ग्रहण करे ।

[५९] क्षुधा की वेदना शान्त करने के लिए, वैयावच्च करने के लिए, इर्यासमिति के

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

लिए संयम के लिए, प्राण धारण करने के लिए और धर्मचिन्तवन के लिए, ऐसे उस छ कारण से साधु आहार ग्रहण करे ।

[६०] जो गच्छ में छोटे-बड़े का फर्क जान शके, बड़ो के वचन का सम्मान हो और एक दिन भी पर्याय से बड़ा हो, गुणवृद्ध हो उसकी हीलना न हो, हे गौतम ! उसे हकीकत में गच्छ मानना चाहिए ।

[६१] और फिर जिस गच्छ में भयानक अकाल हो वैसे वक्त में प्राण का त्याग हो, तो भी साध्वी का लाया हुआ आहार सोचे बिना न खाए, उसे हे गौतम ! वास्तविक गच्छ कहा है ।

[६२] और जिस गच्छ में साध्वीओ के साथ जवान तो क्या, जिसके दांत गिर गए है वैसे बुढ़े मुनि भी आलाप, संलाप न करे और स्त्रीयों के अंग का चिन्तवन न करे, वो हकीकत में गच्छ है ।

[६३] हे, अप्रमादी मुनि ! तुम अग्नि और विष समान साध्वी का संसर्ग छोड़ दो, क्योंकि साध्वी का अनुसरण करनेवाला साधु थोड़े ही काल में जरुर अपयश पाता है ।

[६४] बुढ़े, तपस्वी, बहुश्रुत, सर्वजन को मान्य, ऐसे मुनि को भी साध्वी का संसर्ग लोगों की बुराई का आशय बनता है ।

[६५] तो फिर जो युवान, अल्पश्रुत, थोड़ा तप करनेवाले मुनि हो उसको आर्या का संसर्ग लोकनिन्दा का आशय क्यों न हो ?

[६६] जो कि खुद दृढ अन्तःकरणवाला हो तो भी संसर्ग बढ़ने से अग्नि की नजदीक जैसे घी पीगल जाता है, वैसे मुनि का चित्त साध्वी के समीप विलीन होता है ।

[६७] सर्व स्त्री वर्ग की भीतर हंमेशा अप्रमत्तपन से विश्वासरहित व्यवहार करे तो वो ब्रह्मचर्य का पालन कर शकता है, अन्यथा उसके विपरीत प्रकार से व्यवहार करे तो ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर शकता ।

[६८] सर्वत्र सर्व चीज में ममतारहित मुनि स्वाधीन होता है, लेकिन वो मुनि यदि साध्वी के पास में बँधा हो तो वो पराधीन हो जाता है ।

[६९] लींट में पड़ी मक्खी छूट नहीं शकती, वैसे साध्वी का अनुसरण करनेवाला साधु छूट नहीं शकता ।

[७०] इस जगत में अविधि से साध्वी का अनुसरण करनेवाले साधु को उसके समान दुसरा कोई बन्धन नहीं है और साध्वी को धर्म में स्थापन करनेवाले साधु को उसके समान दुसरी निर्जरा नहीं है ।

[७१] वचन मात्र से भी चारित्र से भ्रष्ट हुए बहुलब्धिवाले साधु को भी जहाँ विधिवत् गुरु से निग्रह किया जाता है उसे गच्छ कहते है ।

[७२] जिस गच्छ में रात को अशनादि लेने में, औदेशिक-अभ्याहृत आदि का नाम ग्रहण करने में भी भय लगे और भोजन अनन्तर पात्रादि साफ करने समान कल्प और अपानादि धोने समान त्रेप उस उभय में सावध हो–

[७३] विनयवान हो, निश्चल चित्तवाला हो, हाँसी मजाक करने से रहित, विकथा से मुक्त, बिना सोचे कुछ न करनेवाले, अशनादि के लिए विचरनेवाले या–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[७४] ऋतु आदि आँठ प्रकार की गोचरभूमि के लिए विहरनार, विविध प्रकार के अभिग्रह और दुष्कर प्रायश्चित आचरण करनेवाले मुनि जिस गच्छ में हो, वो देवेन्द्र को भी आश्चर्यकारी है । गौतम ! ऐसे गच्छ को ही गच्छ मानना चाहिए ।

[७५] पृथ्वी, अप्, अग्नि, वायु और वनस्पति और अलग तरह के बेइन्द्रिय आदि त्रस जीव को जहाँ मरण के अन्त में भी मन से पीड़ित नहीं किया जा शकता, हे गौतम ! उसे हकीकत में गच्छ मानना चाहिए ।

[७६] खजुरी और मुँज के झाडु से जो साधु उपाश्रय को प्रमार्जते है, उस साधु को जीव पर बीलकुल दया नहीं है, ऐसा हे गौतम ! तू अच्छी तरह से समझ ले ।

[७७] ग्रीष्म आदि काल में तृषा से प्राण सूख जाए और मौत मिले तो भी बाहर का सचित्त पानी बूँद मात्र भी जो गच्छ में मुनि न ले, वो गच्छ मानना चाहिए ।

[७८] और फिर जिस गच्छ में अपवाद मार्ग से भी हंमेशा प्राशुक-निर्जीव पानी सम्यक् तरह से आगम विधि से इच्छित होता है गौतम ! उसे गच्छ जानो ।

[७९] शूल, विशूचिका आदि में से किसी भी विचित्र बिमारी पेदा होने से, जिस गच्छ में मुनि अग्नि आदि न जलाए, उसे गच्छ जानना चाहिए ।

[८०] लेकिन अपवादपद में सारुपिक आदि या श्रावक आदि के पास यतना से वैसा करवाएं ।

[८१] पुष्प, बीज, त्वचा आदि अलग तरह के जीव का संघट्ट और परिताप आदि जिस गच्छ में मुनि से सहज भी न किया जाता हो उसे गच्छ मानना चाहिए ।

[८२] और हाँसी, क्रीडा, कंदर्प, नास्तिकवाद, बेवक्त कपड़े धोना, वंडी, गड्ढा आदि ठेकना साधु श्रावक पर क्रोधादिक से लांघण करना, वस्त्र पात्रादि पर ममता और अवर्णवाद का उच्चारण आदि जिस गच्छ में न किया जाए उसे सम्यग् गच्छ मानना चाहिए ।

[८३] जिस गच्छ के भीतर कारण उत्पन्न हो तो भी वस्त्रादिक का अन्तर करके स्त्री का हाथ आदि का स्पर्श द्रष्टिविष सर्प और ज्वलायमान अग्नि की तरह त्याग किया जाए उसे गच्छ मानना चाहिए ।

[८४] बालिका, वुढ़िया, पुत्री, पौत्री या भगिनी आदि के शरीर का स्पर्श थोड़ा भी जिस गच्छ में न किया जाए, हे गौतम ! वही गच्छ है ।

[८५] साधु का वेश धारण करनेवाला, आचार्य आदि पदवी से युक्त ऐसा भी मुनि जो खुद स्त्री के हाथ का स्पर्श करे, तो हे गौतम ! जरुर वो गच्छ मूलगुण से भ्रष्ट चारित्रहीन है ऐसा जानना ।

[८६] अपवाद पद से भी स्त्री के हाथ का स्पर्श आगम में निषेध किया है, लेकिन दीक्षा का अंत आदि हो ऐसा कार्य पेदा हो तो आगमोक्त विधि जाननेवाले स्पर्श करे उसे गच्छ मानना चाहिए ।

[८७] अनेक विज्ञान आदि गुणयुक्त, लब्धिसम्पन्न और उत्तम कुल में पेदा होनेवाला मुनि यदि प्राणातिपातविरमण आदि मूल गुण रहित हो उसे गच्छ में से बाहर नीकाला जाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसे गच्छ मानना चाहिए ।

[८८] जिस गच्छ में सुवर्ण, चाँदी, धन, धान्य, काँसु, ताम्र, स्फटिक, बिस्तर आदि शयनीय, कुर्शी आदि आसन और सच्छिद्र चीज का उपभोग होता हो–

[८९] और फिर जिस गच्छ में मुनि को उचित श्वेतवस्त्र छोडकर लाल, हरे, पीले वस्त्र का इस्तेमाल होता हो उस गच्छ में मर्यादा कहाँ से हो ?

[९०] और फिर जिस गच्छ में किसी भी कारण से किसी गृहस्थ का दिया दुसरों का भी सोना, चाँदी, अर्ध निमेषमात्र भी हाथ से न छूए ।

[९१] जिस गच्छ में आर्या का लाया हुआ विविध उपकरण और पात्रा आदि साधु बिना कारण भी भुगते उसे कैसा गच्छ कहना ?

[९२] बल और बुद्धि को बढ़ानेवाला, पुष्टिकारक, अति दुर्लभ ऐसा भी भैषज्य साध्वी का प्राप्त किया हुआ साधु भुगते, तो उस गच्छ में मर्यादा कहाँ से हो ?

[९३] जिस गच्छ में अकेला साधु, अकेली स्त्री या साध्वी साथ रहे, उसे हे गौतम ! हम अधिक करके मर्यादारहित गच्छ कहते है ।

[९४] दृढ़चारित्रवाली, निर्लोभी, ग्राह्यवचना, गुण समुदायवाली ऐसी लेकिन महत्तरा साध्वी को जिस गच्छ में अकेला साधु पढ़ाता है, वो अनाचार है, गच्छ नहीं ।

[९५] मेघ की गर्जना-अश्व हृदयगत वायु और विद्युत की तरह जैसे दुग्राह्य गूढ़ हृदयवाली आर्याए जिस गच्छ में अटकाव रहित अकार्य करते है–

[९६] और जिस गच्छ के भीतर भोजन के वक्त साधु की मंडली में साध्वी आती है, वो गच्छ नहीं लेकिन स्त्री राज्य है ।

[९७] सुख में रहे पंगु मानव की तरह जो मुनि के कषाय दुसरों के कषाय द्वारा भी उद्दीपन न हो, उसे हे गौतम गच्छ मानना चाहिए ।

[९८] धर्म के अन्तराय से भय पाए हुए और संसार की भीतर रहने से भय पानेवाले मुनि, अन्य मुनि के क्रोध आदि कषाय को न उदीरे, उसे गच्छ मान ।

[९९] शायद किसी कारण से या बिना कारण मुनिओं के कषाय का उदय हो और उदय को रोके और तदनन्तर खमाए, उसे हे गौतम ! गच्छ मान ।

[१००] दान, शील, तप और भावना, इन चार प्रकार के धर्म के अन्तराय से भय पानेवाले गीतार्थ साधु जिस गच्छ में ज्यादा हो उसे हे गौतम ! गच्छ कहा है ।

[१०१] और फिर हे गौतम ! जिस गच्छ में चक्की, खंडणी, चूल्हा, पानेहारा और झाडु इस पाँच वधस्थान में से कोई एक भी हो, तो वो गच्छ का मन, वचन, काया से त्याग करके अन्य अच्छे गच्छ में जाना चाहिए ।

[१०२] खंड़ना आदि के आरम्भ में प्रवर्ते हुए और उज्ज्वल वेश धारण करनेवाले गच्छ की सेवा न करना लेकिन जो गच्छ चारित्र गुण से उज्ज्वल हो उसकी सेवा करना चाहिए ।

[१०३] और फिर जिस गच्छ के भीतर मुनि क्रय-विक्रय आदि करें-करवाए, अनुमोदन करे, वो मुनि को संयमभ्रष्ट मानना चाहिए । हे गुणसागर गौतम ! वैसे लोगों को विष की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह दूर से ही त्याग देना चाहिए ।

[१०४] आरम्भ में आसक्त, सिद्धांत में कहे अनुष्ठान करने में पराङ्गमुख और विषय में लंपट ऐसे मुनिओं का संग छोड़कर हे गौतम ! सुविहित मुनी के समुदाय में वास करना चाहिए ।

[१०५] सन्मार्ग प्रतिष्ठित गच्छ को सम्यक् तरह से देखकर वैसे सन्मार्गगामी गच्छ में पक्ष-मास या जीवनपर्यन्त बसना चाहिए, क्योंकि हे गौतम`! वैसा गच्छ संसार का उच्छेद करनेवाला होता है ।

[१०६]जिस गच्छ के भीतर क्षुल्लक या नवदीक्षित शिष्य या अकेला जवान यति उपाश्रय की रक्षा करता हो, उस गच्छ में हम कहते है कि मर्यादा कहाँ से हो ?

[१०७] जिस गच्छ में अकेली क्षुल्लक साध्वी, नवदीक्षित साध्वी, अथवा अकेली युवान साध्वी उपाश्रय की रक्षा करती हो, उस विहार में–उपाश्रय में है गौतम ! ब्रह्मचर्य की शुद्धि कैसी हो ? अर्थात् न हो ।

[१०८] जिस गच्छ के भीतर रात को अकेली साध्वी केवल दो हाथ जितना भी उपाश्रय से बाहर नीकले तो वहाँ गच्छ की मर्यादा कैसी ? अर्थात् नहीं होती ।

[१०९] जिस गच्छ के भीतर अकेली साध्वी अपने बन्धु मुनि के साथ बोले, अगर अकेला मुनि अपनी भगिनी साध्वी के साथ बात-चीत भी करे, तो हे सौम्य ! उस गच्छ को गुणहीन मानना चाहिए ।

[११०] जिस गच्छ के भीतर साध्वी जकार मकारादि अवाच्य शब्द गृहस्थ की समक्ष बोलती है । वो साध्वी अपनी आत्मा को प्रत्यक्ष तरीके से संसार में डालते है ।

[१११] जिस गच्छ में रुष्ट भी हुई ऐसी साध्वी गृहस्थ के जैसी सावद्य भाषा बोलती है, उस गच्छ को हे गुणसागर गौतम ! श्रमणगुण रहित मानना चाहिए ।

[११२] और फिर जो साध्वी खुद को उचित ऐसे श्वेत वस्त्र का त्याग करके तरह-तरह के रंग के विचित्र वस्त्र-पात्र का सेवन करती है, उसे साध्वी नहीं कहते ।

[११३] जो साध्वी गृहस्थ आदि का शीवना-तुगना, भरना आदि करती है या खुद तेल आदि का उद्वर्तन करती है, उसे भी साध्वी नहीं कहा जाता ।

[११४] विलासयुक्त गति से गमन करे, रूई आदि से भरी गद्दी में तकियापूर्वक बिस्तर आदि में शयन करे, तेल आदि से शरीर का उद्वर्तन करे और जिस स्नानादि से विभूषा करे–

[११५] और फिर गृहस्थ के घर जाकर कथा-कहानी कहे, युवान पुरुष के आगमन का अभिनन्दन करे उस साध्वी को शत्रु मानना चाहिए ।

[११६] बुढ्ढे या जवान पुरुष के सामने रात को जो साध्वी धर्म कहे उस साध्वी को भी गुणसागर गौतम ! गच्छ की शत्रु समान मानना चाहिए ।

[११७] जिस गच्छ में साध्वी परस्पर में कलह न करे और गृहस्थ जैसी सावद्य भाषा न बोले, उस गच्छ को सर्व गच्छ में श्रेष्ठ मानना चाहिए ।

[११८] देवसी, राई, पाक्षिक, चातुर्मासिक या सांवत्सरिक जो अतिचार जितना हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो उतना वो आलोचन न करे और बडी साध्वी की आज्ञा में न रहे । तथा–

[११९] निमित्त आदि का प्रयोग करे, ग्लान और नवदीक्षित को औषध-वस्त्र आदि द्वारा प्रसन्न न करे, अवश्य करनेलायक न करे, न करने लायक यकीनन करे–

[१२०] यतनारहित गमन करे, ग्रामान्तर से आए प्राहुणा साध्वी का निर्दोष अन्न-पान आदि द्वारा वात्सल्य न करें तरह-तरह के रंग के वस्त्र का सेवन करे और फिर विचित्र रचनावाले रजोहरण का इस्तेमाल करे–

[१२१] गति-विभ्रम आदि द्वारा स्वाभाविक आकार का विकार इस तरह प्रकट करे कि जिससे जवान को तो क्या लेकिन बुढ्ढो को भी मोहोदय हो ।

[१२२] मुख, नयन, हाथ, पाँव, कक्षा आदि बारबार साफ करे और वसंत आदि रंग के समूह से बच्चों की भी श्रोत्रादि इन्द्रिय का हरण करे । ऐसी साध्वीओं को स्वेच्छाचारी मानना चाहिए ।

[१२३] जिस गच्छ में स्थविरा के बाद तरुणी और तरुणी के बाद स्थविरा ऐसे एक-एक के अन्तर में सोए, उस गच्छ को हे गौतम ! उत्तमज्ञान और चारित्र का आधार समान मानना चाहिए ।

[१२४] जो साध्वी कंठप्रदेश को पानी से धोए, गृहस्थ के मोती आदि परोए, बच्चों के लिए कपड़े दे, या औषध जड़ीबुट्टी दे, गृहस्थ के कार्य की फिक्र करे ।

[१२५] जो साध्वी हाथी, घोड़े, गधे आदि के स्थान पर जाए, या वो उसके उपाश्रय में आए, कुल्टा स्त्री का संग करे और जिसका उपाश्रय कुल्टा के गृह की नजदीक हो–

[१२६] गृहस्थ को तरह-तरह की प्रेरणा दे गृहस्थ के आसन पर बैठे और गृहस्थ से परीचय करे उसे हे गौतम साध्वी न कहना चाहिए ।

[१२७] अपनी शिष्याए या प्रातीच्छिकाओ को समान माननेवाले, प्रेरणा करने में आलस रहित और प्रशस्त पुरुष का अनुसरण करनेवाली महत्तरा साध्वी गुण सम्पन्न मानना चाहिए ।

[१२८] संवेगवाली, भीत पर्षदावाली, जरुर होने पर उग्र दंड देनेवाली, स्वाध्याय और ध्यान में युक्त और शिष्यादिक का संग्रह करने में कुशल ऐसी साध्वी प्रवर्तिनी पद के योग्य जानना ।

[१२९] जिस गच्छ में बुढ्ढी साध्वी कोपायमान होकर साधु के साथ उत्तर-प्रत्युत्तर द्वारा जोरो से प्रलाप करती है, वैसे गच्छ से हे गौतम ! क्या प्रयोजन है ?

[१३०] है गौतम ! जिस गच्छ के भीतर साध्वी जरुरत पड़ने पर ही महत्तरा साध्वी के पीछे खड़े रहकर मृदु, कोमल शब्द से बोलती है वही सच्चा गच्छ है ।

[१३१]और फिर माता, बेटी, स्नुषा या भगिनी आदि वचन गुप्ति का भंग जिस गच्छ में साध्वी न करे उसे ही सच्चा गच्छ मानना चाहिए ।

[१३२] जो साध्वी दर्शनातिचार लगाए, चारित्र का नाश और मिथ्यात्व पेदा करे, दोनों वर्ग के विहार की मर्यादा का उल्लंघन करे वो साध्वी नहीं है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१३३] धर्मोपदेश रहित वचन संसारमूलक होने से वैसी साध्वी संसार बढ़ाती है, इसीलिए है गौतम ! धर्मोपदेश छोडकर दुसरा वचन साध्वी को नहीं बोलना चाहिए ।

[१३४] हर एक महिने एक ही कण से जो साध्वी तप का पारणा करती है, वैसी साध्वी भी यदि गृहस्थ की सावद्य बोली से कलह करे तो उसका सर्व अनुष्ठान निरर्थक है ।

[१३५] महानिशीथ, कल्प और व्यवहारभाष्य में से साधु-साध्वी के लिए यह गच्छाचार प्रकरण उध्धृत किया है ।

[१३६] प्रधान श्रुत के रहस्यभूत ऐसा यह अति उत्तम गच्छाचार प्रकरण अस्वाध्यायकाल छोडकर साधु-साध्वी को पढ़ना चाहिए ।

[१३७] यह गच्छाचार साधु-साध्वी को गुरुमुख से विधिवत् सुनकर या पढ़कर आत्महित की उम्मीद रखनेवालों ने जैसे यहाँ कहा है वैसा करना चाहिए ।

३० गच्छाचार-प्रकिर्णक सूत्र-७/१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३०/२ चन्द्रवेध्यक

प्रकिर्णक-७/२- हिन्दी अनुवाद

[१] लोक पुरुष के मस्तक (सिद्धशीला) पर सदा विराजमान विकसित पूर्ण, श्रेष्ठ ज्ञान और दर्शन गुण के धारक ऐसे श्री सिद्ध भगवन्त और लोक में ज्ञान को उद्योत करनेवाले श्री अरिहंत परमात्मा को नमस्कार हो ।

[२] यह प्रकरण मोक्षमार्ग के दर्शक शास्त्र-जिन आगम के सारभूत और महान गम्भीर अर्थवाला है । उसे चार तरह की विकथा से रहित एकाग्र चित्त द्वारा सुनो और सुनकर उसके अनुसार आचरण करने में पलभर का भी प्रमाद मत कर ।

[३] विनय, आचार्य के गुण, शिष्य के गुण, विनयनिग्रह के गुण, ज्ञानगुण, चारित्रगुण और मरणगुण में कहूँगा ।

[४] जिनके पास से विद्या-शिक्षा पाई है, वो आचार्य-गुरु का जो मानव पराभव तिरस्कार करता है, उसकी विद्या कैसे भी कष्ट से प्राप्त की हो तो भी निष्फल होती है ।

[५] कर्म की प्रबलता को लेकर जो जीव गुरु का पराभव करता है, वो अक्कड-अभिमानी और विनयहीन जीव जगत में कहीं भी यश या कीर्ति नहीं पा शकता । लेकिन सर्वत्र पराभव पाता है ।

[६] गुरुजन ने उपदेशी हुई विद्या को जो मानव विनयपूर्वक ग्रहण करता है, वो सर्वत्र आश्रय, विश्वास और यश-कीर्ति प्राप्त करता है ।

[७] अविनीत शिष्य की श्रमपूर्वक शीखी हुई विद्या गुरुजन के पराभव करने की बुद्धि के दोष से अवश्य नष्ट होती है, शायद सर्वथा नष्ट न हो तो भी अपने वास्तविक लाभ फल को देनेवाली नहीं होती ।

[८] विद्या बार-बार स्मरण करने के योग्य है, संम्भालने योग्य है । दुर्विनीत-अपात्र को देने के लिए योग्य नहीं है । क्योंकि दुर्विनीत विद्या और विद्या दाता गुरु दोनो पराभव करते है ।

[९] विद्या का पराभव करनेवाला और विद्यादाता आचार्य के गुण को प्रकट नहीं करनेवाला प्रवल मिथ्यात्व पानेवाला दुर्विनीत जीव ऋषिघातक की गति यानि नरकादि दुर्गति का भोग बनता है ।

[१०] विनय आदि गुण से युक्त पुन्यशाली पुरुष द्वारा ग्रहण की गई विद्या भी वलवती बनती है । जैसे उत्तम कुल में पेदा होनेवाली लडकी मामूली पुरुषको पति के रूप में पाकर महान बनती है ।

[११] हे वत्स ! तब तक तू विनय का ही अभ्यास कर, क्योंकि विनय विना-दुर्विनीत ऐसे तुझे विद्या द्वारा क्या प्रयोजन है । सचमुच विनय शीखना दुष्कर है । विद्या तो विनीत को अति सुलभ होती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१२] हे सुविनीत वत्स ! तू विनय से विद्या-श्रुतज्ञान शीख, शीखी हुई विद्या और गुण बार-बार याद कर, उसमें सहज भी प्रमाद मत कर । क्योंकि ग्रहण की हुई और गिनती की हुई विद्या ही परलोक में सुखाकारी बनती है ।

[१३] विनय से शीखी हुई, प्रसन्नतापूर्वक गुरुजन ने उपदेशी हुई और सूत्र द्वारा संपूर्ण कंठस्थ की गई विद्या का फल यकीनन महसूस कर शकते है ।

[१४] इस विषम काल में समस्त श्रुतज्ञान के दाता आचार्य भगवन्त मिलने अति दुर्लभ है और फिर क्रोध, मान आदि चार कषाय रहित श्रुत ज्ञान को शीखनेवाले शिष्य मिलने भी दुर्लभ है ।

[१५] साधु या गृहस्थ कोई भी हो, उसके विनय गुण की प्रशंसा ज्ञानी पुरुष यकीनन करते है । अविनीत कभी भी लोक में कीर्ति या यश प्राप्त नहीं कर शकता ।

[१६] कुछ लोग विनय का स्वरूप, फल आदि जानने के बावजूद भी ईस तरह के प्रबल अशुभ कर्म के प्रभाव को लेकर रागद्वेष से घैरे हुए विनय की प्रवृति करना नहीं चाहते।

[१७] न बोलनेवाले या अधिक न पढनेवाले फिर भी विनय से सदा विनीत-नम्र और इन्द्रिय पर काबू पानेवाले कुछ पुरुप या स्त्री की यशकीर्ति लोक में सर्वत्र फैलती है ।

[१८] भागशाली पुरुष को ही विद्याएँ फल देनेवाली होती है, लेकिन भाग्यहीन को विद्या नहीं फलती ।

[१९] विद्या का तिरस्कार या दुरूपयोग करनेवाला और निंदा अवेहलना आदि द्वारा विद्यावान् आचार्य भगवंत आदि के गुण को नष्ट करनेवाला गहरे मिथ्यात्व से मोहित होकर भयानक दुर्गति पाता है ।

[२०] सचमुच ! समस्त श्रुतज्ञान के दाता आचार्य भगवंत मिलने सुलभ नहीं है । और फिर सरल और ज्ञानाभ्यास मे सतत उद्यमी शिष्य मिलने भी सुलभ नहीं है ।

[२१] इस तरह के विनय के गुण विशेषो-विनीत बनने से होनेवाले महान लाभ को संक्षिप्त में कहा है, अब आचार्य भगवन्त के गुण कहता हूँ, वो एकाग्र चित्त से सुनो ।

[२२] शुद्ध व्यवहार मार्ग के प्ररूपक, श्रुतज्ञान रूप रत्न के सार्थवाह और क्षमा आदि कई लाखों गुण के धारक ऐसे आचार्य के गुण मैं कहूँगा ।

[२३-२७] पृथ्वी की तरह सबकुछ सहन करनेवाले, मेरु जैसे निष्प्रकंप-धर्म में निश्चल और चन्द्र जैसी सौम्य-कान्तिवाले, शिष्य आदि ने आलोचन किए हुए दोष दुसरों के पास प्रकट न करनेवाले । आलोचना के उचित आशय, कारण और विधि को जाननेवाले, गम्भीर हृदयवाले, परवादी आदि से पराभव नहीं पानेवाले । उचितकाल, देश और भाव को जाननेवाले, त्वरा रहित, किसी भी काम में जल्दबाजी न करनेवाले, भ्रान्तिरहित, आश्रित शिष्यादि को संयम-स्वाध्याय आदि में प्रेरक और माया रहित, लौकिक, वैदिक और सामाजिक-शास्त्र में जिनका प्रवेश है और स्वसमय-जिनागम और परसमय अन्यदर्शन शास्त्र के ज्ञाता, जिसकी आदि में सामायिक और अन्त में पूर्वो व्यवस्थित है । ऐसी द्वादशांगी का अर्थ जिन्होंने पाया है, ग्रहण किया है, वैसे आचार्य की विद्वद्जन पंड़ित-गीतार्थ हंमेशा तारीफ करते है ।

[२८] अनादि संसार में कई जन्म के लिए यह जीव ने कर्म काम-काज, शिल्पकला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और दुसरे धर्म आचार के ज्ञाता-उपदेष्टा हजारों आचार्य प्राप्त किए है ।

[२९-३०] सर्वज्ञ कथित निग्रन्थ प्रवचन में जो आचार्य है, वो संसार और मोक्ष-दोनों के यथार्थ रूप को बतानेवाले होने से–जिस तरह एक प्रदीप्त दीप से सेंकड़ों दीपक प्रकाशित होते है, फिर भी वो दीप प्रदीप्त-प्रकाशमान ही रहता है, वैसे दीपक जैसे आचार्य भगवन्त स्व और पर, अपने और दुसरे आत्माओं के प्रकाशक-उद्धारक होते है ।

[३१-३२] सूरज जैसे प्रतापी, चन्द्र जैसे सौम्य-शीतल और क्रान्तिमय एवं संसारसागर से पार उतारनेवाले आचार्य भगवन्त के चरणों में जो पुण्यशाली नित्य प्रणाम करते है, वो धन्य है । ऐसे आचार्य भगवन्त की भक्ति के राग द्वारा इस लोक में कीर्ति, परलोक में उत्तम देवगति और धर्म में अनुत्तर-अनन्य बोधि-श्रद्धा प्राप्त होती है ।

[३३] देवलोक में रहे देव भी दिव्य अवधिज्ञान द्वारा आचार्य भगवन्त को देखकर हंमेशा उनके गुण का स्मरण करते हुए अपने आसन-शयन आदि रख देते है ।

[३४] देवलोक में रूपमती अप्सरा के बीच में रहे देव भी निर्ग्रन्थ प्रवचन का स्मरण करते हुए उस अप्सरा द्वारा आचार्य भगवन्त को वन्दन करवाते है ।

[३५] जो साधु छट्ठ, अट्ठम, चार उपवास आदि दुष्कर तप करने के बावजूद भी गुरु वचन का पालन नहीं करते, वो अनन्त संसारी बनते है ।

[३६] यहाँ गिनवाए वे और दुसरें भी कईं आचार्य भगवन्त के गुण होने से उसकी गिनती का प्रमाण नहीं हो शकता । अब मैं शिष्य के विशिष्ट गुण के संक्षेप में कहूँगा ।

[३७] जो हंमेशा नम्रवृत्तिवाला, विनीत, मदरहित, गुण को जाननेवाला, सुजन-सज्जन और आचार्य भगवन्त के अभिप्राय-आशय को समजनेवाला होता है, उस शिष्य की प्रशंसा पंड़ित पुरुष भी करते है । (अर्थात् वैसा साधु सुशिष्य कहलाता है ।)

[३८] शीत, ताप, वायु, भुख, प्यास और अरति परीषह सहन करनेवाले, पृथ्वी की तरह सर्व तरह की प्रतिकूलता-अनुकूलता आदि को सह लेनेवाली-धीर शिष्य की कुशल पुरुष तारीफ करते है ।

[३९] लाभ या गेरलाभ के अवसर में भी जिसके मुख का भाव नहीं बदलता अर्थात् हर्ष या खेद युक्त नहीं बनता और फिर जो अल्प ईच्छावाला और सदा संतुष्ट होते है, ऐसे शिष्य की पंड़ित पुरुष तारीफ करते है ।

[४०] छ तरह की विनयविधि को जाननेवाला और आत्मिकहित की रूचिवाला है, ऐसा विनीत और ऋद्धि आदि गारव रहित शिष्य की गीतार्थ भी प्रशंसते है ।

[४१] आचार्य आदि दश प्रकार की वैय्यावच्च करने में सदा उद्यत, वाचना आदि स्वाध्याय में नित्य प्रयत्नशील तथा सामायिक आदि सर्व आवश्यक में उद्यत शिष्य की ज्ञानीपुरुष प्रशंसा करते है ।

[४२] आचार्यो के गुणानुवाद कर्ता, गच्छवासी गुरु एवं शासन की कीर्ति को बढ़ानेवाले और निर्मल प्रज्ञा द्वारा अपने ध्येय प्रति अति जागरूक शिष्य की महर्षिजन प्रशंसा करते है ।

[४३] हे मुमुक्षु मुनि ! सर्व प्रथम सर्व तरह के मान का वध करके शिक्ष प्राप्त कर। सुविनीत शिष्य के ही दुसरे आत्मा शिष्य बनते है, अशिष्य के कोई शिष्य नहीं वनता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४४] सुविनीत शिष्य ने आचार्य भगवन्त के अति कटु-रोषभरे वचन या प्रेमभरे वचन को अच्छी तरह से सहना चाहिए ।

[४५] अब शिष्य की कसौटी के लिए उसके कुछ विशिष्ट लक्षण और गुण बताते है, जो पुरुष उत्तम जाति, कुल, रूप, यौवन, बल, वीर्य-पराक्रम, समता और सत्त्व गुण से युक्त हो मृदु-मधुरभाषी, किसी की चुगली न करनेवाला, अशठ, नम्र और अलोभी हो–

[४६] और अखंड हाथ और चरणवाला, कम रोमवाला, स्निग्ध और पुष्ट देहवाला, गम्भीर और उन्नत नासिकावाला उदार दृष्टि, दीर्घदृष्टिवाला और विशाल नेत्रवाला हो ।

[४७] जिनशासन का अनुरागी पक्षपाती, गुरजन के मुख की ओर देखनेवाला, धीर, श्रद्धा गुण से पूर्ण, विकाररहित और विनय प्रधान जीवन जीनेवाला हो ।

[४८] काल देश और समय-अवसर को पहचाननेवाला, शीलरूप और विनय को जाननेवाला, लोभ, भय, मोहरहित, निद्रा और परीषह को जीतनेवाला हो, उसे कुशल पुरुष उचित शिष्य कहते है ।

[४९] किसी पुरुप शायद श्रुतज्ञान में निपुण हो, हेतु, कारण और विधि को जाननेवाला हो फिर भी यदि वो अविनीत और गौरव युक्त हो तो श्रुतधर महर्षि उसकी प्रशंसा नहीं करते।

[५०] पवित्र, अनुरागी, सदा विनय के आचार का आचरण करनेवाला, सरल दिलवाले, प्रवचन की शोभा को वढानेवाले और धीर ऐसे शिष्य को आगम की वाचना देनी चाहिए ।

[५१] उक्त विनय आदि गुण से हीन और दुसरे नय आदि सेंकडो गुण से युक्त ऐसे पुत्र को भी हितैषी पंड़ित शास्त्र नहीं पढ़ाता, तो सर्वथा गुणहीन शिष्य को कैसे शास्त्रज्ञान करवाया जाए ?

[५२] निपुण-सूक्ष्म मतलववाले शास्त्र में विस्तार से बताई हुई यह शिष्य परीक्षा संक्षेप में कही है । परलौकिक हित के कामी गुरु को शिष्य का अवश्य इम्तिहान लेना चाहिए ।

[५३] शिष्य के गुण की कीर्ति का मैंने संक्षेप में वर्णन किया है, अब विनय के निग्रह गुण बताऊँगा, वो तुम सावध चित्तवाले बनकर सुनो ।

[५४] विनय मोक्ष का दरवाजा है । विनय को कभी ठुकराना नहीं चाहिए क्योंकि अल्प श्रुत का अभ्यासी पुरुप भी विनय द्वारा सर्व कर्म को खपाते है ।

[५५] जो पुरुप विनय द्वारा अविनय को, शील सदाचार द्वारा निःशीलत्व को और अपाप-धर्म द्वारा पाप को जीत लेता है, वो तीनों लोक को जीत लेता है ।

[५६] पुरुप मुनि श्रुतज्ञान में निपुण हो-हेतु, कारण और विधि को जाननेवाला हो, फिर भी अविर्नीत और गौरव युक्त हो तो श्रुतधर-गीतार्थ पुरुप उसकी प्रशंसा नहीं करते ।

[५७] वहुश्रुत पुरुप भी गुणहीन, विनयहीन और चारित्र योग में शिथिल बना हो तो गीतार्थ पुरुष उसे अल्पश्रुतवाला मानता है ।

[५८] जो तप, नियम और शील से युक्त हो-ज्ञान दर्शन और चारित्रयोग में सदा उद्यत हो वो अल्प श्रुतवाला हो तो भी ज्ञानी पुरुप उसे वहुश्रुत का स्थान देते है ।

[५९] सम्यक्त्व में ज्ञान समाया हुआ है चारित्र में ज्ञान और दर्शन दोनों सामिल है, क्षमा के वल द्वारा तप और विनय द्वारा विशिष्ट तरह के नियम सफल-स्वार्धीन बनते है ।

[६०] मोक्षफल देनेवाला विनय जिसमें नहीं है, उसके विशिष्ट तरह के तप, विशिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोटि के नियम और दुसरे भी कई गुण निष्फल-निरर्थक बनते है ।

[६१] अनन्तज्ञानी श्री जिनेश्वर भगवन्त ने सर्व कर्मभूमि में मोक्षमार्ग की प्ररूपणा करते हुए सर्व प्रथम विनय का ही उपदेश दिया है ।

[६२] जो विनय है वही ज्ञान है जो ज्ञान है, वो ही विनय है । क्योंकि विनय से ज्ञान मिलता है और ज्ञान द्वारा विनय का स्वरूप जान शकते है ।

[६३] मानव के पूरे चारित्र का सार विनय में प्रतिष्ठित है इसलिए विनयहीन मुनि की प्रशंसा निर्ग्रन्थ महर्षि नहीं करते ।

[६४] बहुश्रुत होने के बावजुद भी जो अविनीत और अल्प श्रद्धा-संवेगवाला है वो चारित्र का आराधन नहीं कर शकता और चारित्र-भ्रष्ट जीव संसार में घूमता रहता है ।

[६५] जो मुनि थोड़े से भी श्रुतज्ञान से संतुष्ट चित्तवाला बनकर विनय करने में तत्पर रहता है और पाँच महाव्रत का निरतिचार पालन करता है और मन, वचन, काया को गुप्त रखता है, वो यकीनन चारित्र का आराधक होता है ।

[६६] बहुत शास्त्र का अभ्यास भी विनय रहित साधु को क्या लाभ करवा शके ? लाखो-करोड़ों झगमगाते दीए भी अंधे मानव को क्या फायदा करवा शके ।

[६७] इस तरह मैंने विनय के विशिष्ट लाभो का संक्षेप में वर्णन किया । अब विनय से शीखे श्रुतज्ञान के विशेष गुण-लाभ का वर्णन करता हूँ वो सुनो ।

[६८] श्री जिनेश्वर परमात्मा ने उपदेश दिए हुए, महान विषयवाले श्रुतज्ञान को पूरी तरह जान लेना मुमकीन नहीं है । इसलिए वो पुरुष प्रशंसनीय है, जो ज्ञानी और चारित्र सम्पन्न है ।

[६९] सुर, असुर, मानव, गरुड़कुमार, नागकुमार एवं गंधर्वदेव आदि सहित उर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्छालोक का विशद स्वरूप श्रुतज्ञान से जान शकते है ।

[७०] जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बँध, निर्जरा और मोक्ष-यह नौ तत्त्व को भी बुद्धिमान पुरुष श्रुतज्ञान द्वारा जान शकते है । इसलिए ज्ञान चारित्र का हेतु है ।

[७१] जाने हुए दोष का त्याग होता है, और जाने हुए गुण का सेवन होता है, यानि कि धर्म के साधन भूत वो दोनों चीज ज्ञान से ही सिद्ध होती है ।

[७२] ज्ञान रहित अकेला चारित्र (क्रिया) और क्रिया रहित अकेला ज्ञान भवतारक नहीं बनते । लेकिन (क्रिया) संपन्न ज्ञानी ही संसार सागर को पार कर जाता है ।

[७३] ज्ञानी होने के बावजूद भी जो क्षमा आदि गुण में न वर्तता हो, क्रोध आदि दोप को न छोड़े तो वो कभी भी दोपमुक्त और गुणवान नहीं बन शकता ।

[७४] असंयम और अज्ञानदोप से कई भावना में बँधे हुए शुभाशुभ कर्म मल को ज्ञानी चारित्र के पालन द्वारा समूल क्षय कर देते है ।

[७५] बिना शस्त्र के अकेला सैनिक, या बिना सैनिक के अकेले शस्त्र की तरह ज्ञान बिना चारित्र और चारित्र बिना ज्ञान, मोक्ष साधक नहीं बनता ।

[७६] मिथ्यादृष्टि को ज्ञान नहीं होता, ज्ञान बिना चारित्र के गुण नहीं होते, गुण बिना सम्पूर्ण क्षय समान मोक्ष नहीं और सम्पूर्ण कर्मक्षय-मोक्ष बिना निर्वाण- नहीं होता ।

[७७] जो ज्ञान है, वो ही करण-चारित्र है, जो चारित्र है, वो ही प्रवचन का सार है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और जो प्रवचन का सार है, वही परमार्थ है ऐसे मानना चाहिए ।

[७८] प्रवचन के परमार्थ को अच्छी तरह से ग्रहण करनेवाला पुरुष ही बँध और मोक्ष को अच्छी तरह जानकर वो ही पुरातन-कर्म का क्षय करते है ।

[७९] ज्ञान से सम्यक् क्रिया होती है और क्रिया से ज्ञान-आत्मसात् होता है । इस तरह ज्ञान और सम्यग् क्रिया के योग से भाव चारित्र की विशुद्धि होती है ।

[८०] ज्ञान प्रकाश करनेवाला है, तप शुद्धि करनेवाला है और संयम रक्षण करनेवाला है, इस तरह ज्ञान, तप और संयम तीनो के योग से जिन शासन में मोक्ष कहा है ।

[८१] जगत के लोग चन्द्र की तरह बहुश्रुत-महात्मा पुरुष के मुख को बार-बार देखता है । उससे श्रेष्ठतर, आश्चर्यकारक और अति सुन्दर चीज कौन-सी है ?

[८२] चन्द्र से जिस तरह शीतल-ज्योत्सना नीकलती है, और वो सब लोगों को खुश-आल्हादित करती है । उस तरह गीतार्थ ज्ञानी पुरुष के मुख से चन्दन जैसे शीतल जिनवचन नीकलते है, जो सुनकर मानव भवाटवी का पार पा लेते है ।

[८३] धागे से पिराई हुई सूई जिस तरह कूड़े में गिरने के बाद नहीं गूम होती वैसे आगम का ज्ञानी जीव संसार अटवी में गिरने के बाद भी गूम नहीं होता ।

[८४] जिस तरह धागे के बिना सुई नजर में न आने से गुम हो जाती है । वैसे सूत्र-शास्त्र बोध बिना मिथ्यात्व से घैरा जीव भवाटवी में खो जाता है ।

[८५] श्रुतज्ञान द्वारा परमार्थ का यथार्थ दर्शन होने से, तप और संयम गुण को जीवनभर अखंड रखने से मरण के वक्त शरीर संपत्ति नष्ट हो जाने से जीव को विशिष्ट गति-सद्गति और सिद्धगति प्राप्त होती है ।

[८६] जिस तरह वैद्य वैदक शास्त्र के ज्ञान द्वारा बिमारी का निदान जानते है, वैसे श्रुतज्ञान द्वारा मुनि चारित्र की शुद्धि कैसे करना, वो अच्छी तरह जानते है ।

[८७] वैदक ग्रंथ के अभ्यास बिना जैसे वैद्य व्याधि का निदान नहीं जानता, वैसे आगमिक ज्ञान से रहित मुनि चारित्र शुद्धि का उपाय नहीं जान शकता ।

[८८] उस कारण से मोक्षाभिलाषी आत्मा ने श्री तीर्थंकर प्ररूपित आगम अर्थ के साथ पढने में सतत उद्यम करना चाहिए ।

[८९] श्री जिनेश्वर परमात्मा के बताए हुए बाह्य और अभ्यंतर तप के बारह प्रकारो में स्वाध्याय समान अन्य कोई तप नहीं है और होगा भी नहीं ।

[९०] ज्ञानाभ्यास की रुचिवाले को बुद्धि हो या न हो लेकिन उद्यम जरुर करना चाहिए । क्योंकि बुद्धि ज्ञानावरणीयादि कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होती है ।

[९१] असंख्य जन्म के उपार्जन किए कर्म को उपयोग युक्त आत्मा प्रति समय खपाता है लेकिन स्वाध्याय से कई भव के संचित कर्म पलभर में खपाते है ।

[९२] तिर्यंच, सुर, असुर, मानव, किन्नर, महोरग और गंधर्व सहित सर्व छद्मस्थ जीव केवली भगवान को पूछता है, यानि कि लोक में छद्मस्थ जीव को अपनी जिज्ञासा के समाधान के लिए पूछने को उचित स्थान केवल एक केवलज्ञानी है ।

[९३] जो किसी एक पद के श्रवण-चिन्तन से मानव वैराग्य पाता है वो एक पद भी सम्यग्ज्ञान है । क्योंकि जीससे वैराग्य प्राप्त हो, वो ही उसका सच्चा ज्ञान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[९४] वीतराग परमात्मा के मार्ग में जो एक पद द्वारा मानव ने तीव्र वैराग्य पाया हो, उस पद को मरण तक भी न छोडना चाहिए ।

[९५] जिन शासन के जो किसी एक पद के धारण से जिसे संवेग प्राप्त होता है, वही एक पद के आलम्बन से क्रमिक अध्यात्म-योग की आराधना द्वारा विशिष्ट धर्मध्यान और शुकलध्यान द्वारा समग्र मोहजाल को भेदते है ।

[९६-९७] मरण के वक्त समग्र द्वादशांगी का चिन्तन होना वो अति समर्थ चित्तवाले मुनि से भी मुमकीन नहीं है । इसलिए उस देश-काल में एक भी पद का चिन्तन आराधना में उपयुक्त होकर जो करता है उसे जिनेश्वर ने आराधक कहा है ।

[९८] सुविहित मुनि आराधना में एकाग्र होकर समाधिपूर्वक काल करके उत्कृष्ट से तीन भव में यकीनन मोक्ष पाता है । अर्थात् निर्वाण-शाश्वत पद पाता है ।

[९९] इस तरह श्रुतज्ञान के विशिष्ट गुण के महान लाभ संक्षेप में मैंने वर्णन किया है। अब चारित्र के विशिष्ट गुण एकाग्र चित्तवाले बनकर सुनो ।

[१००] जिनेश्वर भगवान् के बताए धर्म का कोशीश से पालन करने के लिए जो सर्व तरह से गृहपाश के बँन्धन से सर्वथा मुक्त होते है, वो धन्य है ।

[१०१] विशुद्ध भाव द्वारा एकाग्र चित्तवाले बनकर जो पुरुष जिनवचन का पालन करता है, वो गुण-समृद्ध मुनि मरण समय ग्राप्त होने के बावजुद सहज भी विषाद-ग्लानि महसूस नहीं करते ।

[१०२] केवल दुःख से मुक्त करनेवाले ऐसे मोक्षमार्ग में जिन्होंने अपने आत्मा को स्थिर नहीं किया, वो दुर्लभ ऐसे श्रमणत्व को पाकर सीदाते है ।

[१०३] जो दृढ़ प्रज्ञावाले भाव से एकाग्र चित्तवाले बनकर पारलौकिक हित की गवेषणा करते है । वो मानव सर्व दुःख का पार पाते है ।

[१०४] संयम में अप्रमत्त होकर जो पुरुष क्रोध, मान, माया, लोभ, अरति और दुगंछा का क्षय कर देता है । वो यकीनन परम सुख पाता है ।

[१०५] अति दुर्लभ मानव जन्म पाकर जो मानव उसकी विराधना करता है, जन्म को सार्थक नहीं करता, वो जहाज तूट जाने से दुःखी होनेवाले जहाजचालक की तरह पीछे से बहुत दुःखी होता है ।

[१०६] दुर्लभतर श्रमणधर्म पाकर जो पुरुष मन, वचन, काया के योग से उसकी विराधना नहीं करते, वो सागर में जहाज पानेवाले नाविक की तरह पीछे शोक नहीं पाता ।

[१०७] सबसे पहले तो मानव जन्म पाना दुर्लभ मानव जन्म में बोधि प्राप्ति दुर्लभ है । बोधि मिले तो भी श्रमणत्व अति दुर्लभ है ।

[१०८] साधुपन मिलने के बावजूद भी शास्त्र का रहस्यज्ञान पाना अति दुर्लभ है । ज्ञान का रहस्य समजने के बाद चारित्र की शुद्धि होना अति दुर्लभ है । इसलिए ही ज्ञानी पुरुष आलोचनादि के द्वारा चारित्र विशुद्धि के लिए परम उद्यमशील रहते है ।

[१०९] कितनेक सम्यक्त्वगुण की नियमा प्रशंसा करते है, कितनेक चारित्र की शुद्धि की प्रशंसा करते है तो कुछ सम्यग् ज्ञान की प्रशँसा करते है ।

[११०-१११] सम्यक्त्व और चारित्र दोनो गुण एक साथ प्राप्त होते हो तो बुद्धिशाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुष को उसमें से कौन-सा गुण पहले करना चाहिए ? चारित्र बिना भी सम्यकत्व होता है। जिस तरह कृष्ण और श्रेणिक महाराजा को अविरतिपन में भी सम्यक्त्व था । लेकिन जो चारित्रवान् है, उन्हें सम्यक्त्व नियमा होते है ।

[११२] चारित्र से भ्रष्ट होनेवाले को श्रेष्ठतर सम्यकत्व यकीनन धारण कर लेना चाहिए। क्योंकि द्रव्य चारित्र को न पाए हुए भी सिद्ध हो शकता है, लेकिन दर्शनगुण रहित जीव सिद्ध नहीं हो शकते ।

[११३] उत्कृष्ट चारित्र पालन करनेवाले भी किसी मिथ्यात्व के योग से संयम श्रेणी से गिर जाते है, तो सराग धर्म में रहे-सम्यग्दृष्टि उसमें से पतित हो जाए उसमें क्या ताज्जुब ?

[११४] जो मुनि की बुद्धि पाँच समिति और तीन गुप्ति युक्त है । और जो राग-द्वेष नहीं करता, उसका चारित्र शुद्ध बनता है ।

[११५] उस चारित्र की शुद्धि के लिए समिति और गुप्ति के पालनरूप कार्य में प्रयत्नपूर्वक उद्यम करो । और फिर सम्यग्दर्शन, चारित्र और ज्ञान की साधना में लेशमात्र प्रमाद मत कर...।

[११६] इस तरह चारित्रधर्म के गुण-महान फायदे मैंने संक्षिप्त में वर्णन किए है । अब समाधिमरण के गुण विशेष को एकाग्र चित्त से गुनो ।

[११७-११८] जिस तरह बेकाबू घोड़े पर बैठा हुआ अनजान पुरुष शत्रु सैन्य को परास्त करना शायद इच्छा रखें, लेकिन वो पुरुष और घोड़े पहले से शिक्षा और अभ्यास नहीं करने से...संग्राम में शत्रु सैन्य को देखते ही नष्ट हो जाते है ।

[११९] उसी तरह पहले क्षुधादि परीषह, लोचादि कष्ट और तप का अभ्यास नहीं किया, वैसा मुनि मरण समय प्राप्त होते ही शरीर पर आनेवाले परीषह उपसर्ग और वेदना को समता से सह नहीं शकता ।

[१२०] पूर्व तप आदि का अभ्यास करनेवाले और समाधि की कामनावाला मुनि यदि वैषयिक-सुख की इच्छा रोक ले तो परीषह को समता से सहन कर शकता है ।

[१२१] पहेले शास्त्रोक्त विधि के मुताबिक विगई त्याग, उणोदरी उत्कृष्ट तप आदि करके क्रमशः सर्व आहार का त्याग करनेवाले मुनि मरण काल से निश्चयनयरूप परशु के प्रहार द्वारा परीषह की सेना छेद डालते है ।

[१२२] पूर्वे चारित्र पालन में भारी कोशीश न करनेवाले मुनि को मरण के वक्त इन्द्रिय पीडा देती है । समाधि में बाधा पेदा करती है । इस तरह तप आदि के पहले अभ्यास न करनेवाले मुनि अन्तिम आराधना के वक्त कायर-भयभीत होकर घबराते है ।

[१२३] आगम का अभ्यासी मुनि भी इन्द्रिय की लोलुपतावाला वन जाए तो उसे मरण के वक्त शायद समाधि रहे या न भी रहे, शास्त्र के वचन याद आए तो समाधि रह भी जाए, लेकिन इन्द्रियरस की परवशता को लेकर शास्त्रवचन की स्मृति नामुमकीन होने से प्रायः करके समाधि नहीं रहती ।

[१२४] अल्पश्रुतवाला मुनि भी तप आदि का सुन्दर अभ्यास किया हो तो संयम और मरण की शुभ प्रतिज्ञा को व्यथा बिना-सुन्दर तरीके से निभा शकते है ।

[१२५] इन्द्रिय सुख-शाता में व्याकुल घोर परिसह की पराधीनता से घैंरा, तप आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अभ्यास रहित कायर पुरुष अंतिम आराधना के वक्त घबरा जाता है ।

[१२६] पहले से ही अच्छी तरह से कठिन-तप-संयम की साधना करके सत्त्वशील बने मुनि को मरण के वक्त धृतिबल से निवारण की गई परिसह की सेना कुछ भी करने के लिए समर्थ नहीं हो शकती ।

[१२७] पहले से ही कठिन तप, संयम की साधना करनेवाले बुद्धिमान मुनि अपने भावि हित को अच्छी तरह से सोचकर निदान-पौद्गलिक सुख की आशंसा रहित होकर, किसी भी द्रव्य-क्षेत्रादि विषयक प्रतिबंध न रखनेवाला ऐसा वो स्वकार्य समाधि योग की अच्छी तरह से साधना करता है ।

[१२८] धनुष ग्रहण करके, उसके ऊपर खींचकर तीर चड़ाकर लक्ष्य के प्रति - स्थिर मतिवाला पुरुष अपनी शिक्षा के बारे में सोचता हुआ-राधा वेध को बांध लेता है ।

[१२९] लेकिन वो धनुर्धर अपने चित्त को लक्ष्य से अन्यत्र ले जाने की गलती कर बैठे तो प्रतिज्ञाबद्ध होने के बावजूद राधा के चन्द्रक रूप वेध्य को वींध नहीं शकता ।

[१३०] चन्द्रवेध्य की तरह मरण के वक्त समाधि प्राप्त करने के लिए अपने आत्मा को मोक्ष मार्ग में अविराधिगुणवाला अर्थात् आराधक बनाना चाहिए ।

[१३१] सम्यग्दर्शन की दृढ़ता से निर्मल बुद्धिवाला और स्वकृत पाप की आलोचना निंदा-गर्हा करनेवाले अन्तिम वक्त पर मुनि का मरण शुद्ध होता है ।

[१३२] ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में मुझसे जो अपराध हुए है, श्री जिनेश्वर भगवंत साक्षात् जानते है, उन सर्व अपराध की सर्व भाव से आलोचना करने के लिए मैं उपस्थित हुआ हूँ ।

[१३३] संसार का बँध करनेवाले, जीव सम्बन्धी राग और द्वेष रूप दो पाप को जो पुरुष रोक ले-दूर करे वो मरण के वक्त यकीनन अप्रमत्त-समाधियुक्त बनता है ।

[१३४] जो पुरुष जीव के साथ तीन दंड का ज्ञानांकुश द्वारा गुप्ति रखने के द्वारा निग्रह करते है, वो मरण के वक्त कृतयोगी-यानि अप्रमत्त रहकर समाधि रख शकता है ।

[१३५] जिनेश्वर भगवंत से गर्हित, स्व शरीर में पेदा होनेवाले, भयानक क्रोध आदि कषाय को जो पुरुष हंमेशा निग्रह करता है, वो मरण में समतायोग को सिद्ध करता है ।

[१३६] जो ज्ञानी पुरुष विषय में अति लिप्त इन्द्रिय के ज्ञान रूप अंकुश द्वारा निग्रह करता है, वो मरण के वक्त समाधि साधनेवाला बनता है ।

[१३७] छ जीव निकाय का हितस्वी, इहलोकादि साँत भय रहित, अति मृदु-नम्र स्वभाववाला मुनि नित्य सहज समता का अहेसास करते हुए मरण के वक्त परम समाधि को सिद्ध करनेवाला बनता है ।

[१३८] जिन्होंने ने आठ मद जीत लिए है, जो ब्रह्मचर्य की नव-गुप्ति से गुप्त-सुरक्षित है, क्षमा आदि दस यति धर्म के पालन में उद्यत है, वो मरण के वक्त भी यकीनन समता-समाधिभाव पाता है ।

[१३९] जो अति दुर्लभ ऐसे मोक्षमार्ग की आराधना की इच्छा रखता हो, देव, गुरु आदि की आशातना का वर्जन करता हो या धर्मध्यान के सतत अभ्यास द्वारा शुकल-ध्यान के सन्मुख हुआ हो, वो मरण में यकीनन समाधि प्राप्त करता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४०] जो मुनि बाईस परिषह और दुःसह ऐसे उपसर्ग को शून्य स्थान या गाँव नगर आदि में सहन करता है, वो मरणकाल में समाधि में भी झैल शकता है ।

[१४१] धन्य पुरुष के कषाय दुसरों के क्रोधादिक कषाय से टकराने के बावजूद भी - अच्छी तरह से बैठे हुए पंगु मानव की तरह खड़े होने की इच्छा नहीं रखते ।

[१४२] श्रमणधर्म का आचरण करनेवाले साधु को यदि कषाय उच्च कोटि के हो तो उनका श्रमणत्व शेलड़ी के फूल की तरह निष्फल है, ऐसा मेरा मानना है ।

[१४३] कुछ न्यून पूर्व कोटि साल तक पालन किया गया निर्मल चारित्र भी कषाय से कलूषित चित्तवाला पुरुष एक मुहूर्त्त में हार जाता है ।

[१४४] अनन्तकाल से प्रमाद के दोष द्वारा उपार्जन किए कर्म को, राग-द्वेष को परास्त करनेवाले - खत्म कर देनेवाले मुनि केवल कोटि पूर्व साल में ही खपा देते है ।

[१४५] यदि उपशान्त कषायवाला - उपशम श्रेणी में आरूढ़ हुआ योगी भी अनन्त बार पतन पाता है । तो बाकी रहे थोड़े कषाय का भरोसां क्यों किया जाए ?

[१४६] यदि क्रोधादि कषाय का क्षय हुआ हो तो ही खुद को क्षेम-कुशल है, उस तरह जैसे, अगर कषाय जीते हो तो सद्या जय जाने, यदि कषाय हत-प्रहत हुए हो तो अभय प्राप्त हुआ ऐसा माने एवं कषाय सर्वथा नष्ट हुए हो तो अविनाशी सुख अवश्य मिलेगा ऐसा जाने ।

[१४७] धन्य है उन साधुभगवंतो को जो हंमेशा जिनवचनमें रक्त रहते है, कषायो का जय करते है, बाह्य वस्तु प्रति जिनको राग नहीं है तथा निःसंग, निर्ममत्व बनकर यथेच्छ रूप से संयममार्ग में विचरते है ।

[१४८] मोक्षमार्ग में लीन बने जो महामुनि, अविरहित गुणो से युक्त होकर इसलोक या परलोक में तथा जीवन या मृत्यु में प्रतिबन्ध रहित होकर विचरते है, वे धन्य है ।

[१४९] बुद्धिमान पुरुष को मरणसमुद्घात के अवसर पर मिथ्यात्व का वमन करके सम्यक्त्व को प्राप्त करने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिए ।

[१५०-१५१] खेद की बात है कि महान् धीर पुरुष भी बलवान् मृत्यु के समय मरण समुद्घात की तीव्र वेदना से व्याकुल होकर मिथ्यात्व दशा पाते है । इसीलिए बुद्धिमान् मुनि को गुरु के समीप दीक्षा के दिन से हुए सर्व पापो को याद करके उसकी आलोचना, निंदा, गर्हा करके पाप की शुद्धि अवश्य कर लेनी चाहिए ।

[१५२] उस वक्त गुरु भगवंत जो उचित प्रायश्चित देवे, उसका इच्छापूर्वक स्वीकार करके तथा गुरु का अनुग्रह मानते हुए कहे कि हे भगवन् ! मैं आपके द्वारा दिया गया प्रायश्चित-तप करना चाहता हुं, आपने मुझे पाप से निकालकर भवसमुद्र पार करवाया है ।

[१५३] परमार्थ से मुनि को अपराध करना ही नहीं चाहिए, प्रमादवश हो जाए तो उसका प्रायश्चित अवश्य करना चाहिए ।

[१५४] प्रमाद की बहुलतावाले जीव को विशुद्धि प्रायश्चित से ही हो शकती है, चारित्र की रक्षा के लिए उसके अंकुश समान प्रायश्चित्त का आचरण करना चाहिए ।

[१५५] शल्यवाले जीव की कभी शुद्धि नहीं होती, ऐसा सर्वभावदर्शी जिनेश्वरने कहा है । पाप की आलोचना, निंदा करनेवाले मरण और पुनः भव रहित होते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१५६] एक बार भी शल्य सहित मरण से मरकर जीव महाभयानक इस संसार में बार-बार कईं जन्म और मरण करते हुए भ्रमण करते है ।

[१५७] जो मुनि पाँच समिति से सावध होकर, तीन गुप्ति से गुप्त होकर, चिरकाल तक विचरकर भी यदि मरण के समय धर्म की विराधना करे तो उसे ज्ञानी पुरुष ने अनाराधक-आराधना रहित कहा है ।

[१५८] काफी वक्त पहले अति मोहवश जीवन जी कर अन्तिम जीवन में यदि संवृत्त होकर मरण के वक्त आराधना में उपयुक्त हो तो उसे जिनेश्वर ने आराधक कहा है ।

[१५९] इसलिए सर्वभाव से शुद्ध, आराधना को अभिमुख होकर, भ्रान्ति रहित होकर संथारा स्वीकार करता हुआ मुनि अपने दिल में इस मुताबिक चिन्तन करेगा ।

[१६०] मेरी आत्मा एक है, शाश्वत है, ज्ञान और दर्शन युक्त है । शेष सर्व-देहादि बाह्य पदार्थ संयोग सम्बन्ध से पेदा हुआ है ।

[१६१] मैं एक हूँ, मेरा कोई नहीं या मैं किसी का नही । जिसका मैं हूँ उसे मैं देख नहीं शकता, और फिर ऐसी कोई चीज नहीं कि जो मेरी हो ।

[१६२१६३] पूर्वे-भूतकाल में अज्ञान दोष द्वारा अनन्तबार देवत्व, मनुष्यत्व, तिर्यंचयोनि और नरकगति पा चूका हूँ । लेकिन दुःख की कारण ऐसे अपने ही कर्म द्वारा अब तक मुझे न तो संतोष प्राप्त हुआ न सम्यकत्व युक्त विशुद्धि पाई ।

[१६४] दुःख से मुक्त करवानेवाले धर्म में जो मानव प्रमाद करते है, वो महा भयानक ऐसे संसार सागर में दीर्ध काल तक भ्रमण करते है ।

[१६५] दृढ-बुद्धियुक्त जो मानव पूर्व-पुरुष ने आचरण किए जिनवचन के मार्ग को नहीं छोड़ते, वो सर्व दुःख का पार पा लेते है ।

[१६६] जो उद्यमी पुरुष क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेष का क्षय करता है, वो परम-शाश्वत सुख समान मोक्ष की यकीनन साधना करता है ।

[१६७] पुरुष के मरण वक्त माता, पिता, बन्धु या प्रिय मित्र कोई भी सहज मात्र भी आलम्बन समान नहीं बनता मतलब मरण से नहीं बचा शकते ।

[१६८] चाँदी, सोना, दास, दासी, रथ, बैलगाड़ी या पालखी आदि किसी भी बाह्य चीजे पुरुष को मरण के वक्त काम नहीं लगते, आलम्बन नहीं दे शकते ।

[१६९] अश्वबल, हस्तीबल, सैनिकबल, धनुबल, रथबल आदि किसी बाह्य संरक्षक चीजे मानव को मरण से नहीं बचा शकते ।

[१७०] इस तरह संक्लेश दूर करके, भावशल्य का उद्धार करनेवाले आत्मा जिनोक्त समाधिमरण की आराधना करते हुए शुद्ध होता है ।

[१७१] व्रत में लगनेवाले अतिचार-दोष की शुद्धि के उपाय को जाननेवाले मुनि को भी अपने भावशल्य की विशुद्धि गुरु आदि परसाक्षी से ही करनी चाहिए ।

[१७२] जिस तरह चिकित्सा करने में माहिर वैद्य भी अपने बिमारी की बात दुसरे वैद्य को करते है, और उसने बताई हुई दवाई करते है । वैसे साधु भी उचित गुरु के सामने अपने दोष प्रकट करने उसकी शुद्धि करते है ।

[१७३] इस तरह मरणकाल के वक्त मुनि को विशुद्ध प्रव्रज्या-चारित्र पेदा होता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो साधु मरण के वक्त मोह नहीं रखता, उसे आराधक कहा है ।

[१७४-१७५] हे मुमुक्षु आत्मा ! विनय, आचार्य के गुण, शिष्य के गुण, विनयनिग्रह के गुण, ज्ञानगुण, चरणगुण और मरणगुण की विधि को सुनकर—तुम इस तरह व्यवहार करो कि जिससे गर्भवास, मरण, पुनर्भव, जन्म और दुर्गति के पतन से सर्वथा मुक्त हो शको ।

३०/२	चन्द्रवेध्यक-प्रकिर्णक-७/२ हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३१ गणिविद्या

प्रकिर्णक-८- हिन्दी अनुवाद

[१] प्रवचन शास्त्र में जिस तरह से दिखाया गया है, वैसा यह जिनभाषित वचन है और विद्वान् ने प्रशंसा की है वैसी उत्तम नव बल विधि की बलाबल विधि मैं कहूँगा ।

[२] यह उत्तम नवबल विधि इस प्रकार है–दिन, तिथि, नक्षत्र, करण, ग्रहदिन, मुहूर्त्त, शुकनबल, लग्नबल निमित्तबल ।

[३] उभयपक्ष में दिन में होरा ताकतवर है । रात्रि को कमजोर है, रात्रि में विपरित है उस बलाबल विधि को पहचानो ।

[४-८] एकम को लाभ नहीं, बीज को विपत्ति है, त्रीज को अर्थ सिद्धि पाँचम को विजय आगे रहता है । सातम में कई गुण है, दशम को प्रस्थान करे तो मार्ग निष्कंटक बनता है । एकादशी को आरोग्य में विघ्नरहितता और कल्याण को जानो । जो अमित्र हुए है वो तेरस के बाद बँस में होते है । चौदश, पूनम, आठम, नोम, छट्ठ, चौथ, वारस का उभय पक्ष में वर्जन करना ।

[८] एकम, पाँचम, दशम, पुर्णिमा, अगियारस इन दिनों में शिष्य दीक्षा करनी चाहिए।

[९-१०] पाँच तिथि है–नन्दा, भद्रा, विजया, तुच्छा और पूर्णा । छ बार एक मास में यह एक-एक अनियत वर्तती है । नन्दा, जया और पूर्णा तिथि में शिष्य दीक्षा करना । नन्दा भद्रा में व्रत और पूर्णा में अनशन करना चाहिए ।

[११-१४] पुष्य, अश्विनी, मृगशिर्ष, रेवती, हस्त, चित्रा, अनुराधा, जयेष्ठा और मूल यह नौ नक्षत्र गमन के लिए सिद्ध है । मृगशिर्ष, मघा, मूल, विशाखा, अनुराधा हस्त, उत्तरा, रेवती, अश्विनी और श्रवण इस नक्षत्र में मार्ग में प्रस्थान और स्थान करना लेकिन इस कार्य अवसर में ग्रहण या संध्या नहीं होनी चाहिए । (इस तरह स्थान-प्रस्थान करनेवाले को) सदा मार्ग में भोजन-पान बहुत सारे फल-फूल प्राप्त होते है और जाते हुए भी क्षेम-कुशल पाते है।

[१५] सन्ध्यागत, रविगत, विड्डेर, संग्रह, विलंबि, राहुगत और ग्रहभिन्न यह सर्व नक्षत्र वर्जन करने । (जिसको समजाते हुए आगे बताते है कि) ।

[१६] अस्त समय के नक्षत्र को सन्ध्यागत्, जिसमें सूरज रहा हो वो रविगत नक्षत्र उल्टा होनेवाला विड्डेर नक्षत्र, क्रूर ग्रह रहा हो वो संग्रह नक्षत्र ।

[१७] सूरज ने छोडा हुआ विलम्बी नक्षत्र, जिसमें ग्रहण हो वो राहुगत नक्षत्र, जिसकी मध्य में से ग्रह पसार हो वो ग्रह भिन्न नक्षत्र कहलाता है ।

[१८-२०] सन्ध्यागत नक्षत्र में तकरार होती है और विलम्बी नक्षत्र में विवाद होता है । विड्डेर में सामनेवाले की जय हो और आदित्यगत में परम दुःख प्राप्त होता है । संग्रह नक्षत्र में निग्रह हो, राहुगत में मरण हो और ग्रहभिन्न में लहूँ की उल्टी होती है । सन्ध्यागत, राहुगत और आदित्यगत नक्षत्र, कमजोर और रूखे है । सन्ध्यादि चार से और ग्रहनक्षत्र से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमुक्त बाकी के नक्षत्र ताकतवर जानने ।

[२१-२८] पुष्य, हस्त, अभिजित, अश्विनी और भरणी नक्षत्र में पादपोगमन करना। श्रवण, घनिष्ठा और पुनर्वसु में निष्क्रमण(दिक्षा) नहीं करना, शतभिषा, पुष्य, हस्त, नक्षत्र में विद्यारंभ करना चाहिए । मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुष्य, तीन पूर्वा, मूल, आश्लेषा, हस्त, चित्रा यह दस ज्ञान के वृद्धिकारक नक्षत्र है । हस्त आदि पांच वस्त्र के लिए प्रशस्त है । पुनर्वसु, पुष्य श्रवण और घनिष्ठा यह चार नक्षत्र में लोचकर्म करना । तीन उत्तरा और रोहिणी में नव दीक्षित को निष्क्रमण (दिक्षा), उपस्थापना (वड़ी दीक्षा) और गणि या वाचक की अनुज्ञा करना । गणसंग्रह करना, गणधर स्थापना करना । अवग्रह वसति, स्थान में स्थिरता करना ।

[२९] पुष्य, हस्त, अभिजित, अश्विनी, यह चार नक्षत्र कार्य आरम्भ के लिए सुन्दर और समर्थ है । (कौन से कार्य वो बत्ताते है) ।

[३०] विद्या धारण करना, ब्रह्मयोग साधना, स्वाध्याय, अनुज्ञा, उदेश और समुद्देश।

[३१-३२] अनुराधा, रेवती, चित्रा और मृगशीर्ष यह चार मृदु नक्षत्र है उसमें मृदु कार्य करने चाहिए । भिक्षाचरण से पीड़ित को ग्रहण धारण करना चाहिए । बच्चे और बुढ्ढो के लिए संग्रह-उपग्रह करना चाहिए ।

[३३-३४] आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूल यह चार नक्षत्र में गुरुप्रतिमा और तपकर्म करना । देव-मानव-तिर्यंच का उपसर्ग सहना, मूलगुण-उत्तरगुण पुष्टी करना ।

[३५-३६] मधा, भरणी, तीनोंपूर्वा उग्र नक्षत्र है । उसमें बाह्य अभ्यंतर तप करना। ३६० तप कर्म है । उग्रनक्षत्र के योग में उससे दुसरे तप करने चाहिए।

[३७-३८]कृतिका और विशाखा यह दोनो उष्ण नक्षत्र में लेपन और सीवण एवं संथारा-उपकरण, भाँड़ आदि, विवाद, अवग्रह और वस्त्र (धारण करना) आचार्य द्वारा उपकरण और विभाग करना ।

[३९-४१] घनिष्ठा, शतभिषा, स्वाति, श्रवण और पुनर्वसु इस नक्षत्र में गुरुसेवा, चैत्यपूजन, स्वाध्यायकरण करना, विद्या और विरति करवाना, व्रत-उपस्थापना गणि और वाचक की अनुज्ञा करना । गणसंग्रह, शिष्यदीक्षा, गणावच्छेदक द्वारा संग्रह-आदि करना ।

[४२-४३] बव, बालव, कोलव, स्त्रिलोचन, गर-आदि, वणिज विष्टी, शुकल पक्ष के निशादि करण है; शकुनि, चतुष्पाद, नाग, किंस्तुघ्न ध्रुव करण है । कृष्ण चौदश की रात को शकुनिकरण होता है ।

[४४] तिथि को दुगना करके अंधेरी रात न गिनते हुए साँत से हिस्से करने से जो बचे वो करण । (सामान्य व्यवहार में एक तिथि के दो करण बताए है ।)

[४५] बव, बालव, कौलव, वणिज्, नाग, चतुष्पाद यह करण में शिष्य-दीक्षा करना।

[४६] बव में व्रत-उपस्थापन, गणि-वाचक की अनुज्ञा करना । शकुनि और विष्टी करण में अनशन करना ।

[४७-४८] गुरु-शुक्र और सोम दिन में शैक्षनिष्क्रमण, व्रत, उपस्थापन और गणि वाचक अनुज्ञा करना । रवि, मंगल और शनि के दिन मूल-उत्तरगुण, तपकर्म और पादपोपगमन कार्य करना चाहिए ।

[४९-५५] रुद्र आदि मुहूर्त्त ९६ अंगुल छाया प्रमाण है । ६० अंगुलछाया से श्रेय,

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

बारह से मित्र । छ अंगुल से आरभड मुहूर्त्त, पाँच अंगुल से सौमित्र । चार से वायव्य, दो अंगुल से सुप्रतीत मुहूर्त्त होते है । मध्याहन स्थिति परिमंडल मुहूर्त्त होता है । दो अंगूल से रोहण, चार अंगुल छाया से पुनबल मुहूर्त्त होता है । पाँच अंगुल छाया से विजय मुहूर्त्त, छ से नैऋत होता है । बारह अंगुल छाया से वरुण, ६० अंगुल से अधर्म और द्वीप मुहूर्त्त होता है । ९६ अंगुल छाया अनुसार रात-दिन के मुहूर्त्त बताए । दिन मुहूर्त्त से विपरीत रात्रि मुहूर्त्त जानना । दिन मुहूर्त्त गति द्वारा छाया का प्रमाण जानना ।

[५६-५८] मित्र, नन्द, सुस्थित, अभिजित, चन्द्र, वारुण, अग्नि, वेश्य, ईशान, आनन्द, विजय । इस मुहूर्त्त योग में शिष्य-दिक्षा, व्रत-उपस्थापना और गणि वाचक की अनुज्ञा करना । बम्भ, वलय, वायु, वृषभ और वरुण मुहूर्त्त-योग में उत्तमार्थ (मोक्ष) के लिए पादपोपगमन अनशन करना ।

[५९-६०] पुंनामधेय शकुन में शिष्य दीक्षा करना । स्त्रीनामी शुकुन में विद्वान समाधि को साधे । नपुंसक शकुन में सर्व कर्म का वर्जन करना, व्यामिश्र निमित्त में सर्व आरम्भ वर्जन करना ।

[६१-६३] तिर्यंच बोले तब मार्गगमन करना, पुष्पफलित पेड़ देंखे तो स्वाध्याय-क्रिया करना । पेड़ की डाली फूटने की आवाज से शिल्प की उपस्थापना करना । आकाश गड़गडाट हो तो उत्तमार्थ (मोक्ष) साधना करना । बिलमूल की आवाज से स्थान ग्रहण करना। वज्र के उत्पात के शकुन हो तो मौत हो । प्रकाश शकुन मे हर्ष और संतोष विकुर्वना ।

[६४-६८] चल राशि लग्न में शिष्य-दिक्षा करना । स्थिर राशि लग्न में व्रत-उपस्थापना, श्रुतस्कंध अनुज्ञा, उदेश, समुदेश करना । द्विराशीलग्न में स्वाध्याय करना, रवि की होरामें शिष्य दीक्षा करना ।

[६७] चन्द्र होरा में शीष्या संग्रह करना और सौम्य लग्न में चरण-करण शिक्षा-प्रदान करना । खूणा-दिशा लग्न मे उत्तमार्थ साधना, इस प्रकार लग्न बल जानना और दिशा-कोना आदि के लिए संशय नहीं करना ।

[६९-७१] सौम्यग्रह लग्न में हो तब शिष्यदीक्षा करना, क्रुरग्रह लग्न में हो तब उत्तमार्थ साधना करनी । राहु या केतु लग्न में सर्वकर्म वर्जन करने, प्रशस्त लग्न में प्रशस्त कार्य करे । अप्रशस्त लग्न में सर्व कार्य वर्जन करने । जिनेश्वर भाषित् ऐसे ग्रह के लग्न को जानने चाहिए।

[७२] निमित्त नष्ट नहीं होते । ऋषिभाषित् मिथ्या नहीं होते, दुर्दिष्टि निमित्त द्वारा व्यवहार नष्ट होता है । सुदृष्ट निमित्त द्वारा व्यवहार नष्ट नहीं होता ।

[७३-७९] जो उत्पातिकी बोली और जो बच्चे बोलते है । और फिर स्त्री जो बोलती है उसका व्यतिक्रम नहीं है . उस जात द्वारा और उस जात का और उसके द्वारा समान तद्रूप से ताद्रप्य और सदृश से सदृश निर्देश होता है । स्त्री-पुरुष के निमित में शिष्य-दीक्षा करना। नपुंसक निमित्त में सर्वकार्य वर्जन, व्यामिश्र निमित्त में सर्व आरम्भ वर्जन करना, निमित्त कृत्रिम नहीं है । निमित्त भावि बताते है । जिससे सिद्ध पुरुष निमित्त-उत्पत्त लक्षण को जानते है । प्रशस्त-दृढ और ताकतवर निमित्त में शिष्य-दीक्षा, व्रत-स्थापना, गणसंग्रह करना और गणधर की स्थापना करनी । श्रुतस्कंध और गणि-वाचक की अनुज्ञा करनी चाहिए।

[८०-८१] अप्रशस्त, कमजोर और शिथिल निमित्त में सर्व कार्य वर्जन करना और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मसाधना करना । प्रशस्त निमित्त में हंमेशा प्रशस्त कार्य का आरम्भ करना, अप्रशस्त निमित्त में सर्वकार्य वर्जन करना ।

[८२-८४] दिन से अधिक तिथि ताकतवर है । तिथि से अधिक नक्षत्र ताकतवर है। नक्षत्र से करण, करण से ग्रहदिन ताकतवर है । उससे अधिक मुहूर्त्त, मुहूर्त्त से अधिक शकुन ताकतवर है । शकुन से लग्न ताकतवर है । उससे निमित्त प्रधान है । विलग्न निमित्त से निमित्त बल उत्तम है । निमित्त सव से प्रधान है । निमित्त से अधिक बलवान लोक में कुछ नहीं है ।

[८५] इस तरह संक्षेप से बल-निर्बल विधि सुविहित द्वारा कही गई है । जो अनुयोग ज्ञान ग्राह्य है । और वो अप्रमत्तपन से जाननी चाहिए ।

३१	गणिविद्या-प्रकिर्णक-८-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३२ देवेन्द्रस्तव

प्रकिर्णक-९- हिन्दी अनुवाद

[१-३] त्रैलोक्य गुरु-गुण से परिपूर्ण, देव और मानव द्वारा पूजनीय, ऋषभ आदि जिनवर और अन्तिम तीर्थंकर महावीर को नमस्कार करके निश्चे आगमविद् किसी श्रावक संध्याकाल के प्रारम्भ में जिसका अहंकार जीत लिया है वैसे वर्धमानस्वामी की मनोहर स्तुति करता है । और वो स्तुति करनेवाले श्रावक की पत्नी सुख शान्ति से सामने बैठकर समभाव से दोनों हाथ जोड़कर वर्धमानस्वामी की स्तुति सुनती है ।

[४] तिलक समान रत्न और सौभाग्य सूचक निशानी से अलंकृत इन्द्र की पत्नी के साथ हम भी -मान नष्ट हुआ है ऐसे वर्धमानस्वामी के चरण की वंदना करते है ।

[५] विनय से प्रणाम करने की कारण से जिनके मुकुट शिथिल हो गए है उस देव के द्वारा अद्वितीय यशवाले और उपशान्त रोषवाले वर्धमानस्वामी के चरण वंदित हुए है ।

[६] जिनके गुण द्वारा बत्तीस देवेन्द्र पूरी तरह से पराजित हुए है इसलिए उनके कल्याणकारी चरण का हम ध्यान करते है ।

[७] श्रावक की पत्नी अपने प्रिय को कहती है कि इस तरह यहाँ जो बत्तीस देवेन्द्र कहलाए है उसके लिए मेरी जिज्ञासा का संतोष करने के लिए विशेष व्याख्या करो ।

[८-१०] वो बत्तीस इन्द्र कैसे है ? कहाँ रहते है ? किस की कैसी दशा है ? भवन परिग्रह कितना है ? किसके कितने विमान है ? कितने भवन है ? कितने नगर है ? वहाँ पृथ्वी की चौड़ाई ऊँचाई कितनी है ? उस विमान का वर्ण कैसा है ? आहार का जघन्य-मध्यम या उत्कृष्ट काल कितना है ? श्वासोच्छ्वास, अवधिज्ञान कैसे है ? आदि मुजे बताओ।

[११] जिसने विनय और उपचार दूर किए है, हास्य रस समाप्त किया है वैसी प्रिया द्वारा पूछे गए सवाल के उत्तर में उसके पति कहते है कि हे सुतनु ! वो सुनो ।

[१२-१३] प्रश्न के उत्तर समान श्रुतज्ञान रूपी सागर से जो बात उपलब्ध है उसमें इन्द्र की नामावली सुनो । और वीर द्वारा प्रणाम किए गए उस ज्ञान समान रत्न कि जो तारागण की पंक्ति की तरह शुद्ध है उसे प्रसन्न चित्त दिल से तुम सुनो ।

[१४-१९] हे विशाल नैनवाली सुंदरी ! रत्नप्रभा पृथ्वी में रहनेवाले तेजोलेश्या सहित वीस भवनपति देव के नाम मुझसे सुनो । असुर के दो भवनपति इन्द्र है । चमरेन्द्र और असुरेन्द्र । नागकुमार के दो इन्द्र है धरणेन्द्र और भूतानन्द । सुपर्ण के दो इन्द्र है वेणुदेव और वेणुदाली । उदधिकुमार के दो इन्द्र है जलकान्त और जलप्रभ, दिशाकुमार के दो इन्द्र है अमितगति और अमितवाहन । वायुकुमार के दो इन्द्र है वेलम्ब और प्रभंजन, स्तनित कुमार के दो इन्द्र, घोष और महाघोष । विद्युतकुमार के दो इन्द्र, हरिकान्त और हरिस्सह, अग्निकुमार के दो इन्द्र है—अग्निशीख और अग्निमानव ।

[२०-२६] हे विकसित यश और विशाल नयनवाली, सुखपूर्वक भवन में बैठी हुई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(सुंदरी) ! मैंने जो यह बीस इन्द्र बताए उनका भवन परिग्रह सुन । वो चमरेन्द्र वैरोचन और असुरेन्द्र महानुभव के श्रेष्ठ भवन की गिनती ६४-लाख है । वो भूतानन्द और धरण नाम के दोनों नागकुमार इन्द्र के श्रेष्ठ भवन की गिनती ५४ लाख है । हे सुंदरी ! वेणुदेव और वेणुदालि दोनों सुवर्ण इन्द्र के भवन ७२ लाख है । वेलम्ब और प्रभंजन वायुकुमार इन्द्र के श्रेष्ठ भवन की गिनती ९६ लाख है । इस तरह । असुर के ६४, नागकुमार के ५४, सुवर्णकुमार के ७२, वायुकुमार के ९६ । द्विप-दिशा-उदधि-विद्युत-स्तनित और अग्नि वो छ युगल के प्रत्येक के भवन ७६-७६ लाख है ।

[२७] हे लीला स्थित सुंदरी अब उनकी स्थिति मतलब आयु विशेष को क्रम से सुन।

[२८-३१] हे सुंदरी ! चमरेन्द्र की उत्कृष्ट आयु स्थिति एक सागरोपम है । वो ही बलि और वैरोचन इन्द्र की भी जानना । चमरेन्द्र सिवा बाकी के दक्षिण दिशा के इन्द्र की उत्कृष्ट आयु-स्थिति देढ़ पल्योम है । बलि के सिवा बाकी जो उत्तर दिशा स्थित इन्द्र है उसकी आयु स्थिति कुछ न्यून दो पल्योपम है । यह सब आयु-स्थिति का विवरण है । अब तूं उत्तम भवनवासी देव के सुन्दर नगर का माहात्म्य भी सुन,...।

[३२-३८] सम्पूर्ण रत्नप्रभा पृथ्वी ११००० योजन में एक हजार योजन के अलावा भवनपति के नगर बने है । यह सब भवन भीतर से चतुष्कोण और बाहर से गोल है । आम तोर पर अति सुन्दर, रमणीय, निर्मल और व्रज रत्न के बने है भवन नगर के प्राकार सोने के बने हुए है । श्रेष्ठ कमल की पंखडी पर रहा यह भवन अलग-अलग-मणी से शोभायमान स्वभाव से मनोहारी दिखते है । लम्बे अरसे तक न मूर्जानेवाली पुष्पमाला और । चन्दन से बने दरवाज युक्त उस नगर का ऊपर का हिस्सा पताका से शोभायमान है । इसलिए वो श्रेष्ठ नगर सुन्दर है । वो श्रेष्ठ द्वार आँठ योजन ऊँचे है और उसका ऊपर का हिस्सा लाल कलश से सजाए हुए है, ऊपर सोने के घंट बँधे है । इस भवन में भवनपति देव श्रेष्ठ तरुणी के गीत और वाद्य की आवाज की कारण से हंमेशा सुख युक्त और प्रमुदित रहकर पसार होनेवाले वक्त को नहीं जानते ।

[३९-४०] चमरेन्द्र, धरणेन्द्र, वेणुदेव, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब, घोष, हरि और अग्निशीख । उस भवनपति इन्द्र के मणिरत्न से जडित स्वर्ण स्तम्भ और रमणीय लतामंडप युक्त भवन दक्षिण दिशा की ओर होता है उत्तर दिशा और उसके आसपास बाकी के इन्द्र के भवन होते है ।

[४१-४२] दक्षिण दिशा की ओर असुरकुमार के ३४ लाख, नागकुमार के ४४ लाख सुवर्णकुमार के ४८ लाख और द्वीप, उदधि, विद्युत, स्तनित और अग्निकुमार के ४०-४० लाख और वायुकुमार के ५० लाख भवन होते है । उत्तर दिशा की ओर असुरकुमार के ३० लाख, नागकुमार के ४० लाख, सुवर्णकुमार के ३४ लाख, वायुकुमार के ४६; द्वीप, उदधि, स्तनित, अग्निकुमार के ३६-३६ लाख भवन है ।

[४३] सभी भवनपति और वैमानिक इन्द्र की तीन पर्षदा होती है । उन सबके त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल और सामानिक देव होते है और चार गुने अंगरक्षक देव होते है ।

[४४] दक्षिण दिशा के भवनपति के ६४००० और उत्तर दिशा के भवनपति के ६०००० वाणव्यंतर के ६००० और ज्योतिष इन्द्र के ४००० सामानिक देव होते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४५] उसी तरह चमरेन्द्र और बलिन्द्र की पाँच अग्रमहिषी और बाकी के भवनपति की छह अग्रमहिषी होती है ।

[४६] उसी तरह जम्बूद्वीप में दो, मानुषोत्तर पर्वत में चार, अरुण समुद्र में छ और अरुण द्वीप में आठ उस तरह से भवनपति के आवास है ।

[४७] जिस नाम के सागर या द्वीप है उसी नाम के द्वीप या समुद्र में उनकी उत्पत्ति होती है ।

[४८-५०] असुर नाग और उदधि कुमार का आवास अरूणवर समुद्र में होता है और उसमें ही उनकी उत्पत्ति होती है । द्वीप, दिशा, अग्नि और स्तनितकुमार का आवास अरुणवर द्वीप में होता है और उसमें ही उनकी उत्पत्ति होती है । वायुकुमार-सुवर्णकुमार इन्द्र के आवास मानुषोत्तर पर्वत पर होता है । हरि-हरिस्सह देव के आवास विद्युत्प्रभ और माल्यवंत पर्वत पर होते है ।

[५१-६५] हे सुंदरी इस भवनपति देव में जिनका बल-वीर्य पराक्रम है उसके यथाक्रम से आनुपूर्वी से वर्णन करता हूँ । असुर और असुर कन्या द्वारा जो स्वामित्व का विषय है । उसका क्षेत्र जम्बुद्वीप और चमरेन्द्र की चमरचंचा राजधानी तक है । यही स्वामीत्त्व बलि और वैरोचन के लिए भी समजना । धरण और नागराज जम्बूद्वीप को फन द्वारा आच्छादित कर शकते है । उसी तरह भूतानन्द के लिए भी समजना । गरुड़ेन्द्र और वेणुदेव पंख से जम्बूद्वीप को आच्छादित कर शकते है । वही अतिशय वेणुदाली का भी जानना चाहिए । उस जम्बूद्वीप को वशिष्ट अपने हाथ के तल से आच्छादीत कर शकता है । जलकान्त और जलप्रभ एक जलतरंग द्वारा जम्बूद्वीप को भर शकता है । अमितगति और अमितवाहन अपनी एक पाँव की एड़ी से पूरे जम्बूद्वीप को हिला शकता है । वेलम्ब और प्रभंजन एक वायु के गुंजन से पुरे जम्वूद्वीप को भर शकता है । हे सुंदरी ! घोष और महाघोष एक मेघगर्जना शब्द से जम्वूद्वीप को बेहरा बना शकता है । हरि ओर हरिस्सह एक विद्युत से पूरे जम्बूद्वीप को प्रकाशित कर शकता है । अग्निशीख और अग्निमानव एक अगन ज्वाला से पूरे जम्बूद्वीप को जला शकता है । हे सुंदरी तिर्छालोक में अनगिनत द्वीप और सागर है । इसमें से किसी भी एक इन्द्र अपने रूप से इस द्वीप-समुद्र को जम्बूद्वीप को बाये हाथ से छत्र की तरह धारण कर शकता है और मेरु पर्वत को भी परिश्रम बिना ग्रहण कर शकता है । किसी एक ताकतवर इन्द्र जम्वूद्वीप को छत्र और मेरु पर्वत को दंड बना शकता है । उन सभी इन्द्र की ताकत विशेष है ।

[६६-६८] संक्षेप में इस भवनपति के भवन की स्थिति बताई अब यथा क्रम वाणव्यंतर के भवन की स्थिति सुनो । पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष महोरग और गंधर्व वो वाणव्यंतर देव के आठ प्रकार के है । यह वाणव्यंतर देव मैंने संक्षेप में बताए । अब एक-एक करके सोलह इन्द्र और उसकी ऋद्धि कहूँगा ।

[६९-७२] काल, महाकाल, सुरूप, प्रतिरूप, पूर्णभद्र, माणिभद्र, भीम, महाभीम, किन्नर, किंपुरुष, सत्पुरुष महापुरुष, अतिकाय, महाकाय, गीतरति और गीतयश यह वाणव्यंतर इन्द्र है । और वाणव्यंतर के भेद में सन्निहित, समान, धाता, विधाता, ऋषि, ऋषिपाल, ईश्वर, महेश्वर, सुवत्स, विशाल, हास, हासरति, श्वेत, महाश्वेत, पतंग, पतंगपति उन सोलह इन्द्र को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानना ।

[७३] व्यंतर देव उर्ध्व, अधो और तिर्यक् लोक में पेदा होते है और निवास करते है। उसके भवन रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के हिस्से में होते है ।

[७४-७६] एक-एक युगल में नियमा अनगिनत श्रेष्ठ भवन है । वो फाँसले में अनगिनत योजनवाले है, जिसके विविध विविध भेद इस प्रकार है । वो उत्कृष्ट से जम्बुद्वीप समान, जघन्य से भरतक्षेत्र समान और मध्यम से विदेह क्षेत्र समान होते है । जिसमे व्यंतर देव श्रेष्ठ तरुणी के गीत और संगीत की आवाज की कारण से नित्य सुख युक्त और आनन्दित रहने से पसार होने वाले वक्त को नहीं जानते ।

[७७-७८] काल, सूरूप, पुन्य, भीम, किन्नर, सुपुरिष, अकायिक, गीतरती ये आठ दक्षिण में होते है । मणि-स्वर्ण और रत्न के स्तूप और सोने की वेदिका युक्त ऐसे उनके भवन दक्षिण दिशा की ओर होते है और वाकी के उत्तर दिशा में होते है ।

[७९] इस व्यंतर देव की जघन्य आयु १०००० साल है और उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम है ।

[८०] इस तरह व्यंतर देव के भवन और स्थिति संक्षेप में कहा है अब श्रेष्ठ ज्योतिष्क देव के आवास का विवरण सुन ।

[८१-८४] चन्द्र, सूर्य, तारागण, नक्षत्र और ग्रहगण समूह इस पाँच तरह के ज्योतिषी देव बताए है । अब उसकी स्थिति और गति बताऊँगा । तिर्छालोक में ज्योतिषी के अर्धकपित्थ फल के आकारवाले स्फटिक रत्नमय, रमणीय अनगिनत विमान है । रत्नप्रभा पृथ्वी के समभूतल हिस्से से ७९० योजन ऊँचाई पर उसका निम्न तल है और वो समभूतला पृथ्वी से सूर्य ८०० योजन ऊपर है । उसी तरह चन्द्रमा ८८० योजन ऊपर है उसी तरह ज्योतिष देव का विस्तार ११० योजन में है ।

[८५] एक योजन के ६१ हिस्से किए जाए तो ६१वे हिस्से में ५६ वे हिस्से जितना चन्द्र परिमंडल होता है । और सूर्य का आयाम विष्कम्भ ४५ हिस्से जितना होता है ।

[८६] जिसमें ज्योतिषी देव श्रेष्ठ तरुणी के गीत और वाद्य की आवाज की कारण से हंमेशा सुख और प्रमोद से पसार होनेवाले काल को नहीं जानते ।

[८७-८९] एक योजन के ६१ हिस्से में से ५६ हिस्से विस्तारवाला चन्द्र मंडल होता है और २८ जितनी चौड़ाई होती है । ४८ भाग जितने फैलाववाला सूर्य मंडल और २४ हिस्से जितनी चौड़ाई होती है । ग्रह आधे योजन विस्तार में उससे आधे विस्तार में नक्षत्र समूह और उसके आधे विस्तार में तारा समूह होता है । उससे आधे विस्तार के अनुसार उसकी चौड़ाई होती है ।

[९०] एक योजन का आधा दो गाउ होता है । उसमें गाउ ५०० धनुष का होता है । यह ग्रहनक्षत्र समूह और ताराविमान का विष्कम्भ है ।

[९१] जिसका जो आयाम विष्कम्भ है उससे आधी उसकी चौड़ाई होती है । और उससे तीन गुनी अधिक परिधि होती है ऐसा जान ।

[९२-९३] चन्द्र-सूर्य विमान का वहन १६००० देव करते है, ग्रह विमान का वहन ८००० देव करते है । नक्षत्र विमान का वहन ४००० देव करते है और तारा विमान का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहन २००० देव करते है । वो देव पूर्व में सिंह, दक्षिण में महाकाय हाथी, पश्चिम में बैल और उत्तर में घोड़े के रूप में वहन करते है ।

[९४] चन्द्र-सूर्य, ग्रह-नक्षत्र और तारे एक-एक से तेज गति से चलते है ।

[९५] चन्द्र की गति सबसे कम और तारों की गति सबसे तेज है । इस प्रकार ज्योतिष्क देव की गति विशेष जानना ।

[९६] ऋद्धि में तारे, नक्षत्र, ग्रह, सूर्य, चन्द्र एक एक से ज्यादा ऋद्धिवान् जानना।

[९७] सबके भीतर अभिजित नक्षत्र है, सबसे बाहर मूल नक्षत्र है । ऊपर स्वाति नक्षत्र है और नीचे भरणी नक्षत्र है ।

[९८] निश्चय से चन्द्र और सूर्य के बीच सभी ग्रह-नक्षत्र होते है । चन्द्र और सूर्य के बराबर नीचे और ऊपर तारे होते है ।

[९९-१००] तारो का परस्पर जघन्य अन्तर ५०० धनुष और उत्कृष्ट फाँसला ४००० धनुप (दो गाउ) होता है । व्यवधान की अपेक्षा से तारों का फाँसला जघन्य २६६ योजन और उत्कृष्ट से १२२४२ योजन है ।

[१०१] इस चन्द्रयोग की ६७ खंडित अहोरात्रि, ९ मुहूर्त्त और २७ कला होती है।

[१०२-१०४] शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और जयेष्ठा यह छह नक्षत्र १५ मुहूर्त्त संयोगवाले है । तीनो उत्तरा नक्षत्र और पुनर्वसु, रोहिणी, विशाखा यह छह नक्षत्र चन्द्रमा के साथ ४५ मुहूर्त्त का संयोग करते है । बाकी पंद्रह नक्षत्र चन्द्रमा के साथ ३० मुहूर्त्त का संयोग करते है इस तरह चन्द्रमा के साथ नक्षत्र का योग जानना ।

[१०५-१०८] अभिजित नक्षत्र सूर्य के साथ चार अहोरात्री और छ मुहूर्त्त एक साथ गमन करते है । शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और जयेष्ठा यह छह नक्षत्र छ अहोरात्रि और २१ मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ भ्रमण करते है । तीन उत्तरा नक्षत्र और पुनर्वसु रोहिणी और विशाखा यह छह नक्षत्र २० अहोरात्रि और तीन मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ भ्रमण करते है । बाकी के १५ नक्षत्र १३ अहोरात्रि और १२ मुहूर्त्त सूर्य के साथ भ्रमण करते है।

[१०९-११०] दो चन्द्र, दो सूर्य, ५६ नक्षत्र, १७६ ग्रह वो सभी जम्बूद्वीप में विचरण करते है । १३३९५० कोडाकोडी तारागण जम्बूद्वीप में होते है ।

[१११-११२] लवण समुद्र में ४ चन्द्र, ४-सूर्य, ११२ नक्षत्र और ३५२ ग्रह भ्रमण करते है और २६७९०० कोडाकोडी तारागण है ।

[११३-११४] घातकी खंड में १२ चन्द्र, १२ सूर्य, ३३६ नक्षत्र, १०५६ ग्रह और ८०३७०० कोडाकोडी तारागण होते है ।

[११५-११७] कालोदधि समुद्र में तेजस्वी किरण से युक्त ४२ चन्द्र, ४२ सूर्य, ११७६ नक्षत्र ३६९६ ग्रह और । २८१२९५० कोडाकोडी तारागण होते है ।

[११८-१२०] पुष्करवरद्वीप में १४४ चन्द्र, १४४ सूर्य, ४०३२ नक्षत्र, १२६३२ ग्रह ९६,४४४०० कोडाकोडी तारागण विचरण करते है ।

[१२१-१२३] अर्धपुष्करवरद्वीप में ७२ चन्द्र, ७२ सूर्य, ६३३६ महाग्रह, २०१६ नक्षत्र और ४८२२२०० कोडाकोडी तारागण है ।

[१२४-१२६] समस्त मानव लोक को १३२ चन्द्र, १३२ सूर्य ११६१६ महाग्रह,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६९६ नक्षत्र और ८८४०७०० कोडाकोडी तारागण प्रकाशीत करते है ।

[१२७] संक्षेप में मानव लोक में यह नक्षत्र समूह कहा है । मानव लोक की बाहर जिनेन्द्र द्वारा असंख्य तारे बताए है ।

[१२८] इस तरह मानव लोक में जो सूर्य आदि ग्रह बताए है वो कदम्ब वृक्ष के फूल की समान विचरण करते है ।

[१२९] इस तरह मानवलोक में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र बताए है जिसके नाम और गोत्र सामान्य बुद्धिवाले मानव नहीं कह शकते ।

[१३०-१३५] मानव लोक में चन्द्र और सूर्य की ६६ पिटक है और एक पीटक में दो चन्द्र और सूर्य है । नक्षत्र आदि की ६६ पिटक और एक पिटक में ५६ नक्षत्र है । महाग्रह ११६ है । इसी तरह मानवलोक में चन्द्र-सूर्य की ४-४ पंक्ति है । हर एक पंक्ति में ६६ चन्द्र, ६६ सूर्य है । नक्षत्र की ५६ पंक्ति है और हर एक पंक्ति में ६६-६६ नक्षत्र है । ग्रह की ७६ पंक्ति होती है हरएक में ६६-६६ ग्रह होते है ।

[१३६] चन्द्र, सूर्य और ग्रह समूह अनवरित रूप से उस मेरु पर्वत की परिक्रमा करते हुए सभी मेरु पर्वत की मंडलाकार प्रदक्षिणा करते है ।

[१३७] उसी तरह नक्षत्र और ग्रह के नित्य मंडल भी जानने वो भी मेरु पर्वत की परिक्रमा मंडल के आकार से करते है ।

[१३८] चन्द्र और सूर्य की गति ऊपर नीचे नहीं होती लेकिन अभ्यंतर-बाह्य तिर्छी और मंडलाकार होती है ।

[१३९] चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्क के परिभ्रमण विशेष द्वारा मानव से सुख और दुःख की गति होती है ।

[१४०] यह ज्योतिष्क देव निकट हो तो तापमान नियम से बढता है और दूर हो तो तापमान कम होता है ।

[१४१] उसका ताप क्षेत्र कलम्बुक पुष्प के संस्थान समान होता है और चन्द्र-सूर्य का तापक्षेत्र भीतर से संकुचित और बाहर से विस्तृत होता है ।

[१४२] किस कारण से चन्द्रमा बढता है और किस कारण से चन्द्रमा क्षीण होता है ? या किस कारण से चन्द्र की ज्योत्सना और कालिमा होती है ?

[१४३] राहु का काला विमान हंमेशा चन्द्रमा के साथ चार अंगुल नीचे गमन करते है ।

[१४४] शुकलपक्ष में चन्द्र का ६२-६२ हिस्सा राहु से अनावृत होकर हररोज बढ़ता है और कृष्ण पक्ष में उतने ही वक्त में राहु से आवृत होकर कम होता है ।

[१४५] चन्द्रमा के पंद्रह हिस्से क्रमिक राहु के पंद्रह हिस्सो से अनावृत्त होते जाते है और फिर आवृत्त होते जाते है ।

[१४६] उस कारण से चन्द्रमा वृद्धि को और ह्रास को पाते है । उसी कारण से ज्योत्सना और कालिमा आते है ।

[१४७] मानव लोक में पेदा होनेवाले और संचरण करनेवाले चन्द्र, सूर्य, ग्रह-समूह आदि पाँच तरह के ज्योतिष्क देव होते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४८] मानव लोक बाहर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारे और नक्षत्र है उसकी गति भी नहीं और संचरण भी नहीं होता इसलिए उसे स्थिर ज्योतिष्क जानना ।

[१४९-१५०] यह चन्द्र-सूर्य जम्बूद्वीप में दो-दो, लवण समुद्र में चार-चार, धातकीखंड में बारह-बारह होते है । यानि कि जम्बूद्वीप में दुगुने, लवणसमुद्र में चारगुने और धातकीखंड में बारह गुने होते है ।

[१५१] घातकी खंड के आगे के क्षेत्र में मतलब द्वीप समुद्र में सूर्य-चन्द्र की गिनती उसके पूर्वे द्वीप समुद्र की गिनती से तीन तीन गुना करके और उसमें पूर्व के चन्द्र और सूर्य की गिनती बढाकर मानना चाहिए । (जैसे कि कालोदधि समुद्र में ४२-४२ चन्द्र-सूर्य विचरण करते है, वो इस तरह पूर्व के लवणसमुद्र में १२-१२ है तो उसके तीन गुने यानि ३६ और उसमें पूर्व के जंबूद्वीप दो और लवण समुद्र के चार चन्द्र सूर्य शामील करने से ४२ चन्द्र सूर्य होते है, इस तरह से आगे-आगे की गिनती होती है ।

[१५२] यदि तूं द्वीप समुद्र में नक्षत्र, ग्रह, तारों की गिनती जानने की इच्छा रखती हो तो एक चन्द्र परिवार की गिनती से दुगुने करने से वो द्वीपसमुद्र के नक्षत्र, ग्रह और तारो की गिनती जान शकती है ।

[१५३] मानुषोत्तर पर्वत के बाहर चन्द्र और सूर्य अव्यवस्थित है, वहाँ चन्द्रमा अभिजित नक्षत्र के योगवाला और सूर्य पुष्य नक्षत्र के योगवाला होता है ।

[१५४] सूर्य से चन्द्र और चन्द्र से सूर्य का अन्तर ५० हजार योजन से कम नहीं होता ।

[१५५] चन्द्र का चन्द्र से और सूर्य का सूर्य से १ लाख योजन होता है ।

[१५६] चन्द्रमा से सूर्य अंतरित है और प्रदीप्त सूर्य से चन्द्रमा अंतरीत है । वे अनेक वर्ण के किरणवाला है ।

[१५७] एक चन्द्र परिवार के ८८ ग्रह और २८ नक्षत्र होते है ।

[१५८] ६६९७५ कोडाकोडी तारागण होता है ।

[१५९-१६०] सूर्य देव की आयुदशा १ हजार वर्ष पल्योपम और चन्द्र देव की आयु दशा १ लाख वर्ष पल्योपम से अधिक, ग्रह की १ पल्योपम, नक्षत्र की आधा पल्योपम और तारों की १/४ पल्योपम कहा है ।

[१६१] ज्योतिष्क देव की जघन्यदशा पल्योपम का आँठवा भाग और उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक लाख पल्योपम वर्ष कही है ।

[१६२] मैंने भवनपति, वाणव्यंतर और ज्योतिष्क देव की दशा कही है । अब महान् ऋद्धिवाले १२ कल्पपति इन्द्र का विवरण करूँगा ।

[१६३] पहले सौधर्मपति, दुसरे ईशानपति, तीसरे सनतकुमार, चौथे महिन्द्र ।

[१६४] पाँचवे ब्रह्म, छट्ठे लांतक, साँतवे महाशुक्र, आँठवे सहस्त्रार ।

[१६५] नौवें आणत, दँशवे प्राणत, ग्यारहवे आरण और बारवें अच्युत इन्द्र होते है।

[१६६] इस तरह से यह बारह कल्पपति इन्द्र कल्प के स्वामी कहलाए उनके अलावा देव को आज्ञा देनेवाला दुसरा कोई नही है ।

[१६७] इस कल्पवासी के ऊपर जो देवगण है वो स्वशासित भावना से पेदा होते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि ग्रैवेयक में दास भाव या स्वामी भाव से उत्पत्ति मुमकीन नहीं हैं ।

[१६८] जो सम्यक्दर्शन से पतित लेकिन श्रमण वेश धारण करते है उसकी उत्पत्ति भी उत्कृष्ट रूप में ग्रैवेयक तक होती है ।

[१६९] यहाँ सौधर्म कल्पपति शक्र महानुभव के ३२ लाख विमान है ।

[१७०] ईशानेन्द्र के २८ लाख, सनत्कुमार के १२ लाख ।

[१७१] माहेन्द्र में ८ लाख, ब्रह्मलोक में ४ लाख ।

[१७२] लांतक मे ५० हजार, महाशुक्र में ४० हजार सहस्त्रार में छ हजार ।

[१७३] आणत-प्राणत में ४००, आरण अच्युण में ३०० विमान कहा हैं ।

[१७४-१७८] इस तरह से हे सुंदरी ! जिस कल्प में जितने विमान कहे है उस कल्पपति की दशा विशेष को सुन । शक्र महानुभाग की दो सागरोपम, ईशानेन्द्र की साधिक दो सागरोपम, सनत्कुमारेन्द्र की सात सागरोपम । माहेन्द्र की साधिक सात सागरोपम, ब्रह्मलोकेन्द्र की दश सागरोपम, लांतकेन्द्र की १४ सागरोपम, महाशुक्रेन्द्र की १७ सागरोपम । सहस्त्रारेन्द्र की १५ सागरोपम, आनत कल्पे १९ और प्राणत कल्पे २० सागरोपम । आरण कल्पे २१ सागरोपम और अच्युत कल्पे २२ सागरोपम आयु दशा जानना।

[१७९] इस तरह कल्पपति के कल्प में आयु दशा कही अब अनुत्तर और ग्रैवेयक विमान के विभागो को सुनो ।

[१८०-१८१] अधो-मध्यम-उर्ध्व तीन ग्रैवेयक है और हर एक के तीन प्रकार है । इस तरह से ग्रैवेयक नौ है । सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, वत्स, सुवत्स, सुमनस, सोमनस और प्रियदर्शन ।

[१८२] नीचे के ग्रैवेयक में १११, मध्यम ग्रैवेयक में १०७ ऊपर के ग्रैवेयक में १०० और अनुत्तरोपपातिक में पाँच विमान बताए है ।

[१८३] हे नमितांगि ! सबसे नीचेवाले ग्रैवेयक देव की आयु २३ सागरोपम है, बाकी ऊपर के आठ में क्रमिक १-१ सागरोपम आयु दशा बढ़ती जाती है ।

[१८४-१८६] विजय वैजयन्त-जयन्त अपराजित ये चार क्रमिक । पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर में स्थित है मध्य में सर्वार्थसिद्ध नाम का पाँचवा विमान है । इन सभी विमान की स्थिति ३३ सागरोपम कही है । सवार्थसिद्ध में अजघन्योत्कृष्ट ३३ सागरोपम कही है ।

[१८७-१८८] नीचे-उपर के दो-दो कल्पयुगल अर्थात् यह आठ विमान अर्ध चन्द्राकार है और मध्य के चार कल्प पूर्ण चंद्राकार है । ग्रैवेयक देव के विमान तीन-तीन पंक्ति में है । अनुत्तर विमान हुल्लक-पुष्प के आकार के होते है ।

[१८९] सौधर्म और ईशान इन दोनों कल्प में देव-विमान घनोदधि पर प्रतिष्ठित है । सानत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्म उन तीन कल्प में वायु के ऊपर प्रतिष्ठित है और लांतक, महाशुक्र और सहस्त्रार ये तीन घनोदधि, घनवात दोनों के आधार पर प्रतिष्ठित है ।

[१९०] इसके उपर के सभी विमान आकाशान्तर प्रतिष्ठित है । इस तरह उर्ध्वलोक के विमान की आधार विधि बताई ।

[१९१-१९२] भवनपति और व्यंतर देव में कृष्ण, नील, कापोत और तेजोलेश्या होती है । ज्योतिष्क, सौधर्म और ईशान देव में तेजोलेश्या होती है । सानत्कुमार, माहेन्द्र और

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ब्रह्मलोक में पद्मलेश्या होते है । उनके ऊपर के देव में शुकललेश्या होती है ।

[१९३] सौधर्म और ईशान दो कल्पवाले देव का वर्ण तपे हुए सोने जैसा सानत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक के देव का वर्ण पद्म जैसा श्वेत और उसके ऊपर के देव का वर्ण शुक्ल होता है ।

[१९४-१९६] भवनपति, वाणव्यंतर और ज्योतिष्क देव की ऊँचाई सात हाथ जितनी होती है । हे सुंदरी ! अब ऊपर के कल्पपति देव की ऊँचाई सुन । सौधर्म और ईशान की सात हाथ प्रमाण-उसके ऊपर के दो-दो कल्प समान होते है और एक-एक हाथ प्रमाण नाप कम होता जाता है । ग्रैवेयक के दो हाथ प्रमाण और अनुत्तर विमानवासी की ऊँचाई एक हाथ प्रमाण होती है ।

[१९७] एक कल्प से दुसरे कल्प के देव की स्थिति एक सागरोपम से अधिक होती है और उसकी ऊँचाई उससे ११ भाग कम होती है ।

[१९८] विमान की ऊँचाई और उसकी पृथ्वी की चौड़ाई उन दोनों का प्रमाण ३२०० योजन होता है ।

[१९९-२०२] भवनपति, वाणव्यंतर और ज्योतिष्क देव की कामक्रीडा शारीरिक होती है । हे सुंदरी, अब तू कल्पपति की कामक्रीडा विधि सुन । सौधर्म और ईशान कल्प में जो देव है उसकी कामक्रीडा शारीरिक होती है। सानत्कुमार और माहेन्द्र की स्पर्श के द्वारा होती है । ब्रह्म और लांतक के देव की चक्षु द्वारा होती है । महाशुक्र और सहस्त्रार देव की कामक्रीडा श्रोत्र (कान) द्वारा होती है । आणतप्राणत, आरण, अच्युत कल्प के देव की मन से होती है और इसके ऊपर के देव की कामक्रीडा नहीं होती ।

[२०३] गोशीर्ष, अगरु, केतकी के पान, पुन्नाग के फूल, बकुल की सुवास, चंपक और कमल की खुश्बु और तगर आदि की खुश्बु देवता में होती है ।

[२०४] यह गन्धविधि संक्षेप में उपमा द्वारा कही गई है । देवता नजर से स्थिर और स्पर्श की अपेक्षा में सुकुमार होते है ।

[२०५-२०७] उर्ध्वलोक में विमान की गिनती ८४९७०२३ है । उसमें पुष्प आकृतिवाले ८४८९१५४ है । श्रेणीबद्ध विमान ७८७४ है । बाकी के विमान पुष्पकर्णिका आकृतिवाले है ।

[२०८] विमान की पंक्ति का अंतर निश्चय से असंख्यात योजन और पुष्पकर्णिका आकृति वाले विमान का अन्तर संख्यात-संख्यात योजन बताया है ।

[२०९] आवलिकाप्रविष्ट विमान गोल, त्रिपाई और चतुष्कोण होते है । जबकि पुष्पकर्णिका की संरचना अनेक आकार की होती है ।

[२१०] गोल विमान कंकणाकृति जैसे, त्रिपाई शींगोडे जैसे और चतुष्कोण पासा के आकार के होते है ।

[२११] प्रथम वृत्त विमान, बाद में त्रीकोन, बाद में चतुरस्त्र फिर ईसी क्रम से विमान होते है ।

[२१२] विमान की पंक्ति वर्तुलाकार पर वर्तुलाकार, त्रिपाई पर त्रिपाई, चतुष्कोण पर चतुष्कोण होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२१३] सभी विमान का अवलंबन रस्सी की तरह ऊपर से नीचे एक कोने से दुसरे तक समान होते है ।

[२१४] सभी वर्तुलाकार विमान प्राकार से घैरे हुए और चतुष्कोण विमान चारों दिशा में वेदिकायुक्त बताए है ।

[२१५] जहाँ वर्तुलाकार विमान होते है वहाँ त्रिपाई विमान की वेदिका होती है। बाकी के पाँच हिस्से में प्राकार होता है ।

[२१६] सभी वर्तुलाकार विमान एक द्वार वाले होते है । त्रिपाई विमान तीन और चतुष्कोण विमान में चार दरवाजे होते है । यह वर्णन कल्पपति के विमान का जानना ।

[२१७] भवनपति देव के ७ करोड ७२ लाख भवन होते है । यह भवन का संक्षिप्त कथन कहा ।

[२१८] तिर्छालोक में पेदा होनेवाले वाणव्यंतर देव के असंख्यात भवन होते है । उससे संख्यात गुने अधिक ज्योतिषीदेव के होते है ।

[२१९] विमानवासी देव अल्प है । उससे व्यंतर देव असंख्यात गुने है । उससे संख्यात गुने अधिक ज्योतीष्क देव है ।

[२२०] सौधर्म देवलोक में देवीओं के अलग विमान की गिनती छ लाख होती है । और ईशान कल्प में चार लाख होती है ।

[२२१] पाँच तरह के अनुत्तर देव गति, जाति और दृष्टि की अपेक्षा से श्रेष्ठ है और अनुपम विषय सुखवाले है ।

[२२२] जिस तरह सर्व श्रेष्ठ गन्ध, रूप और शब्द होते है उसी तरह सचित पुद्गल के भी सर्वश्रेष्ठ रस, स्पर्श और गन्ध इस देव के होते है ।

[२२३] जैसे भँवरा फैली हुई कली, फैली हुई कमल रज और श्रेष्ठ कुसुम की मकरंद का सुख से पान करता है । (उस तरह यह देव पौद्गलिक विषय सेवन करते है ।)

[२२४] हे सुंदरी ! यह देव श्रेष्ठ कमल जैसे श्वेतवर्णवाले एक ही उद्भव स्थान में निवास करनेवाले और वो उद्भव स्थान से विमुक्त होकर सुख का अहेसास करते है ।

[२२५-२२७] हे सुंदरी ! अनुत्तर विमानवासी देव को ३३ हजार साल पूरे होने पर आहार की ईच्छा होती है । मध्यवर्ती आयु धारण करनेवाले देव को १६५०० साल पूरे होने पर आहार ग्रहण होता है । जो देव १० हजार साल की आयु धारण करते है उनका आहार एक-एक दिन के अन्तर से होता है ।

[२२८-२३०] हे सुंदरी ! एक साल साड़े चार महिने अनुत्तरवासी देव के श्वासोच्छ्वास होते है । मध्यम आयु देव को आठ मास और साडे सात दिन के बाद श्वाच्छ्वोश्वास होते है । जघन्य आयु को धारण करनेवाले देव का श्वासोच्छ्वास सात स्तोक में पूर्ण होते है ।

[२३१] देव को जितने सागरोपम की जिनकी दशा उतने ही दिन साँसे होती है ।

[२३२] और उतने ही हजार साल पर उन्हें आहार की इच्छा होती है । इस तरह आहार और श्वासोच्छ्वास का मैंने वर्णन किया, हे सुंदरी ! अब जल्द उनके सूक्ष्म अन्तर को मैं क्रमशः बताऊँगा ।

[२३३] हे सुंदरी ! इस देव का जो विषय जितनी अवधि का होता है उसको मैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनुपूर्वी क्रम से वर्णन करूँगा ।

[२३४] सौधर्म और ईशान देव नीचे एक नरक तक, सनत्कुमार और महिन्द्र दुसरे नरक तक, ब्रह्म और लांतक तीसरे नरक तक शुक्र और सहस्त्रार चौथी नरक तक ।

[२३५] आनत से अच्युत तक के देवो को पाँचवे नरक तक ।

[२३६] अधस्तन और मध्यवर्ती ग्रैवेयक देवो को छट्ठी नरक तक, उपरितन ग्रैवेयको को साँतवी नरक तक और पाँच अनुत्तरवासी सम्पूर्ण लोकनाड़ी को अवधि ज्ञान से देखते है।

[२३७] आधा सागरोपम से कम आयुवाले देव अवधिज्ञान से तिर्छा संख्यात योजन-उससे अधिक पच्चीस सागरोपमवाले भी जघन्य से संख्यात योजन देखते है ।

[२३८] उससे ज्यादा आयुवाले देव तिर्छा असंख्यात द्वीप-समुद्र तक जानते है । ऊपर सभी अपने कल्प की ऊँचाई तक जानते है ।

[२३९] अबाह्य अर्थात् जन्म से अवधिज्ञानवाले नारकी देव, तीर्थंकर पूर्णता से देखते है और बाकी अवधिज्ञानी देश से देखते है ।

[२४०] मैंने संक्षेप में यह अवधिज्ञानी विषयक वर्णन किया । अब विमान का रंग, चौड़ाई और ऊँचाई बताऊँगा ।

[२४१] सौधर्म और ईशान कल्प में पृथ्वी की चौड़ाई २७०० योजन है और वो रत्न से चित्रित जैसी है ।

[२४२] सुन्दर मणी की वेदिका से युक्त, वैडुर्यमणि के स्तुप से युक्त, रत्नमय हार और अलंकार युक्त ऐसे कई प्रासाद इस विमान में होते है ।

[२४३] उसमें जो कृष्ण विमान है वो स्वाभाव से अंजन धातुसमान एवं मेघ और काक समान वर्णवाले होते है । जिसमें देवता बँसते है ।

[२४४] जो हरे रंग के विमान है वो स्वभाव से मेदक धातु समान और मोर की गरदन समान वर्णवाले है जिसमें देवता बँसते है ।

[२४५] जो दीपशिखा के रंगवाले विमान है वो जासुद पुष्प, सूर्य जैसे और हिंगुल धातु के समान वर्णवाले है उसमें देवता बँसते है ।

[२४६] उसमें जो कोरंटक धातु समान रंगवाले विमान है वो खीले हुए फूल की कर्णिका समान और हल्दी जैसे पीले रंग के है जिसमें देवता बँसते है ।

[२४७] यह देवता कभी न मुर्जानेवाले हारवाले, निर्मल देहवाले, गन्धदार श्वासोच्छ्वासवाले अव्यवस्थित वयवाले, स्वयं प्रकाशमान और अनिमिष आँखवाले होते है ।

[२४८] वे सभी देवता ७२ कला में पंड़ित होते है । भव संक्रमण की प्रक्रिया में उसका प्रतिपात होता है ऐसा जानना ।

[२४९] शुभ कर्म के उदयवाले उन देव का शरीर स्वाभाविक तो आभुषण रहित होता है । लेकिन वो अपनी ईच्छा के मुताबिक विकुर्वित आभूषण धारण करते है ।

[२५०] सौधर्म ईशान के यह देव माहात्म्य, वर्ण, अवगाहना, परिमाण और आयु मर्यादा आदि दशा विशेष में हंमेशा गोल सरसव समान एक रूप होता है ।

[२५१-२५२] इस कल्प में हरे, पीले, लाल, श्वेत और काले वर्णवाले पाँचसौ ऊँचे प्रासाद शोभायमान है । वहाँ सेंकड़ों मणि जड़ित कई तरह के आसन, शय्या, सुशोभित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विस्तृत वस्त्र रत्नमय हार और अलंकार होते है ।

[२५३] सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में पृथ्वी की चौड़ाई २६०० योजन है । वो पृथ्वी रत्न से चित्रित है ।

[२५४-२५५] वहाँ हरे, पीले, लाल, श्वेत और काले ऐसे ६०० ऊँचे प्रासाद शोभायमान है । सेंकड़ों मणी जड़ित, कईं तरह के आसन-शय्या, सुशोभित विस्तृतवस्त्र, रत्नमय हार और अलंकार होते है ।

[२५६-२५७] ब्रह्म और लांतक कल्प में पृथ्वी की चौड़ाई २४०० योजन है जो पृथ्वी रत्न से चित्रित होती है । सुन्दर मणी और वेदिका, वैडुर्य मणि की स्तुपिका, रत्नमय हार और अलंकार युक्त कईं तरह के प्रासाद इस विमान में होते है ।

[२५८] वहाँ लाल, पीले और श्वेत वर्णवाले ७०० ऊँचे प्रासाद शोभायमान है ।

[२५९-२६०] शुक्र और सहस्त्रार कल्प में पृथ्वी की चौड़ाई २४०० योजन होती है वो पृथ्वी रत्न से चित्रित होती है । सुन्दर मणी और वेदिका, वैडुर्य मणि की स्तुपिका, रत्नमय हार और अलंकार युक्त ऐसे कईं तरह के प्रासाद होते है ।

[२६१] पीले और श्वेत वर्णवाले ५०० ऊँचे प्रासाद शोभायमान है ।

[२६२] वहाँ सेंकड़ो मणि जड़ित कईं तरह के आसन, शय्या, सुशोभित विस्तृत वस्त्र, रत्नमय माला और अलंकार होते है ।

[२६३-२६५] आणत-प्राणत कल्प में पृथ्वी की मोटाई २३०० योजन होती है । वो पृथ्वी रत्न से चित्रित होती है । सुन्दर मणि की वेदिका, वैडुर्य मणी की स्तुपिका, रत्नमय हार और अलंकार युक्त कईं तरह के वहाँ प्रासाद है । और शंख और हिम जैसे श्वेत वर्णवाले ९०० ऊँचे प्रासाद से शोभायमान है ।

[२६६] ग्रैवेयक विमानो में पृथ्वी की मोटाई २२०० योजन होती है ।

[२६७] उस विमान में सुन्दर मणिमय वेदिका, वैडूर्य मणि की स्तुपिका और रत्नमय अलंकार होते है ।

[२६८] वहाँ शंख और हीम जैसे श्वेत वर्णवाले १००० उंचे प्रासाद शोभायमान है।

[२६९-२७२] पाँच अनुत्तर विमान में २१०० योजन पृथ्वी की चौड़ाई होती हो वो पृथ्वी रत्न से चित्रित है । सुन्दर मणी की वेदिका, वैडुर्य मणि की स्तूपिका, रत्नमय हार और अलंकार युक्त कईं तरह के प्रासाद वहाँ है । और शंख और हिम जैसे श्वेत वर्णवाले ११०० ऊँचे प्राद शोभाय-मान है । सेंकड़ों मणि जड़ित कईं तरह के आसन, शय्या, सुशोभित विस्तृत वस्त्र, रत्नमय हार और अलंकार होते है ।

[२७३-२७४] सर्वार्थसिद्ध विमान के सबसे ऊँचे स्तूप के अन्त में बारह योजन पर ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी होती है । उसे निर्मल जलकण हिम, गाय का दूध, समुद्र के झाग जैसे उज्ज्वल वर्णवाली और उल्टे किए गए छत्र के आकार से स्थिर कहा है ।

[२७५-२७६] वो ४५ लाख योजन लम्बी-चौड़ी और उससे तीन गुने से कुछ ज्यादा परिधि होती है वैसा जानना । यह परिधि १४२३०२४९ है ।

[२७७-२७८] वो पृथ्वी बीच में ८ योजन चौड़ी और कम होते होते मक्खी के पंख की तरह पतली होती जाती है । शंख, श्वेत रत्न और अर्जुन सुवर्ण समान वर्णवाली उल्टे छत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के आकार-वाली है ।

[२७९] सिद्ध शिला पर एक योजन के वाद लोक का अन्त होता है । उस एक योजन के ऊपर के सोलहवे हिस्से में सिद्ध स्थान अवस्थित है ।

[२८०] वहाँ वो सिद्ध निश्चय से वेदना रहित, ममतारहित, आसक्ति रहित और शरीर रहित घनीभूत आत्मप्रदेश से निर्मित आकारवाले होते है ।

[२८१] सिद्ध कहाँ अटकते है ? कहाँ प्रतिष्ठित होते है ? शरीर का कहाँ त्याग करते है ? और फिर कहाँ जाकर सिद्ध होते है ?

[२८२] सिद्ध भगवंत अलोक के पास रुकते है, लोकाग्र में प्रतिष्ठित होते है यहां शरीर को छोडते है और वहां जाकर सिद्ध होते है ।

[२८३] शरीर छोड़ देते वक्त अंतिम वक्त पर जो संस्थान हो, उसी संस्था को ही आत्म प्रदेश घनीभूत होकर वे सिद्ध अवस्था पाते है ।

[२८४] अन्तिम भव में शरीर का जो दीर्घ या ह्रस्व प्रमाण होता है । उसका एक तृतीयांश हिस्सा कम होकर सिद्ध की अवगाहना होती है ।

[२८५] सिद्ध की उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ धनुप से कुछ ज्यादा होती है वैसा समज।

[२८६] सिद्ध की मध्यम अवगाहना ४ हाथ पूर्ण के ऊपर दो तृतियांश हस्त प्रमाण कहा है । रत्नी यानि एक हाथ प्रमाण जिसमे कोश में देढ फूट प्रमाण कहा है ।

[२८७] जघन्य अवगाहना १ हाथ प्रमाण और आँठ अंगुल से कुछ अधिक है ।

[२८८] अन्तिम भव के शरीर के तीन हिस्सों में से एक हिस्सा न्यून अर्थात् दो तृतीयांश प्रमाण सिद्ध की अवगाहना कही है ।

[२८९] जरा और मरण से विमुक्त अनन्त सिद्ध होते है । वे सभी लोकान्त को छूते हुए एक दुसरे की अवगाहना करते है ।

[२९०] अशरीर सघन आत्मप्रदेशवाले अनाकार दर्शन और साकार ज्ञान में अप्रमत्त सिद्ध का लक्षण है ।

[२९१] सिद्ध आत्मा अपने प्रदेश से अनन्त सिद्ध को छूता है । देश प्रदेश से सिद्ध भी असंख्यात गुना है ।

[२९२] केवलज्ञान में उपयोगवाले सिद्ध सभी द्रव्य के हर एक गुण और हर एक पर्याय को जानते है । अनन्त केवल दृष्टि से सब देखते है ।

[२९३] ज्ञान और दर्शन दोनों उपयोग में सभी केवली को एक समय एक उपयोग होता है । दोनों उपयोग एक साथ नहीं होता ।

[२९४] देवगण समूह के समस्त काल के समस्त सुख को अनन्त गुने किए जाए और पुनः अनन्त वर्ग से वर्गित किया जाए तो भी मुक्ति के सुख की तुलना नहीं हो शकती ।

[२९५] मुक्ति प्राप्त सिद्ध को जो अव्याबाध सुख है वो सुख मानव या समस्त देव को भी नहीं होता ।

[२९६] सिद्ध के समस्त सुख-राशि को समस्त काल से गुना करके उसका अनन्त वर्गमूल नीकालने से प्राप्त अंक समस्त आकाश में समा नहीं शकता ।

[२९७] जिस तरह किसी म्लेच्छ कई तरह के नगर गुण को जानता हो तो भी अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोली में अप्राप्त उपमा द्वारा नहीं कह शकता ।

[२९८] उस तरह सिद्ध का सुख अनुपम है । उसकी कोई उपमा नहीं है तो भी कुछ विशेषण द्वारा उसकी समानता कहूँगा । वो सुन–

[२९९-३००] कोइ पुरुष सबसे उत्कृष्ट भोजन करके भूख-प्यास से मुक्त हो जाए जैसे कि अमृत से तृप्त हुआ हो । उस तरह से समस्त काल में तृप्त, अतुल, शाश्वत और अव्याबाध निर्वाण सुख पाकर सिद्ध सुखी रहते है ।

[३०१] वो सिद्ध है । बुद्ध है । पारगत है, परम्परागत है । कर्म रूपी कवच से उन्मुक्त, अजर, अमर और असंग है ।

[३०२] जिन्होंने सभी दुःख दूर कर दिए है जाति, जन्म, जरा, मरण के बँन्धन से मुक्त, शाश्वत और अव्याबाध सुख का हंमेशा अहेसास करते है ।

[३०३] समग्र देव की और उसके समग्र काल की जो ऋद्धि है उसका अनन्त गुना करे तो भी जिनेश्वर परमात्मा की ऋद्धि के अनन्तानन्त भाग के समान भी न हो ।

[३०४] सम्पूर्ण वैभव और ऋद्धि युक्त भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और विमानवासी देव भी अरहंतो को वंदन करनेवाले होते है ।

[३०५] भवनपति, वाणव्यंतर, विमानवासी देव और ऋषि पालित अपनी-अपनी बुद्धि से जिनेश्वर परमात्मा की महिमा वर्णन करते है ।

[३०६] वीर और इन्द्र की स्तुति के कर्ता जिसमें खुद सभी इन्द्र की और जिनेन्द्र की स्तुति किर्तन किया वो ।

[३०७] सूरो, असुरो, गुरु और सिद्धो (मुजे) सिद्धि प्रदान करों ।

[३०८] इस तरह भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और विमानवासी देव निकाय देव की स्तुति (कथन) समग्र रूप से समाप्त हुआ ।

३२ देवेन्द्रस्तव-प्रकिर्णक-९-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३३ वीरस्तव

प्रकिर्णक-१०- हिन्दी अनुवाद

[१] जगजीव बन्धु, भविजन रूपी कुमुद को विकसानेवाला, पर्वत समान धीर ऐसे वीर जिनेश्वर को नमस्कार करके उन्हें प्रगट नाम के द्वारा मैं स्तवन करूँगा ।

[२-३] अरुह, अरिहंत, अरहंत, देव, जिन, वीर, परम करुणालु, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, समर्थ, त्रिलोक के नाथ । वीतराग केवलि, त्रिभुवनगुरु, सर्व त्रिभुवन वरिष्ठ भगवन् तिर्थंकर, शक्र द्वारा नमस्कार किए गए, जिनेन्द्र तुम जय पाओ ।

[४] श्री वर्धमान, हरि, हर, कमलासन प्रमुख नाम से जड़मति ऐसा मैं सूत्र के अनुसार यथार्थ गुण द्वारा स्तवन करूँगा ।

[५] भवबीज समान अंकुर से हुए कर्म को ध्यान समान अग्नि द्वारा जलाकर फिर से भव समान गहन वन मे न ऊँगने देनेवाले हो इसलिए हे नाथ ! तुम 'अरूह' हो ।

[६] तिर्यंच के घोर उपसर्ग, परीपह, कषाय पेदा करनेवाले शत्रु को हे नाथ ! तुमने पूरी तरह से वध कर दिया है इसलिए तुम अरिहंत हो ।

[७] उत्तम ऐसे वंदन, स्तवन, नमस्कार, पूजा, सत्कार और सिद्धि गमन की योग्यता वाले हो जिस कारण से तुम 'अरहंत' हो ।

[८] देव, मानव, असुर प्रमुख की उत्तम पूजा को तुम योग्य हो, धीरज और मान से छोड़े हुए हो इसलिए हे देव तुम अरहंत हो ।

[९] रथ-गाड़ी निदर्शित अन्य संग्रह या पर्वत की गुफा आदि तुमसे कुछ दूर नहीं है इसलिए हे जिनेश्वर तुम अरहंत हो ।

[१०] जिसने उत्तम ज्ञान द्वारा संसार मार्ग का अंत करके, मरण को दूर करके निज स्वरूप समान संपत्ति पाई है इसलिए तुम अरहंत हो ।

[११] मनोहर या अमनोहर शब्द आप से छिपे नहीं है और फिर मन और काया के योग के सिद्धांत से रंजित किया है इसलिए तुम अरहंत हो ।

[१२] देवेन्द्र और अनुत्तर देव की समर्थ पूजा आदि के योग्य हो, करोडो मर्यादा का अंत करनेवाले को शरण के योग्य हो इसलिए अरहंत हो ।

[१३] सिद्धि के संग से दुसरे मोह शत्रु के विजेता हो, अनन्त सुख, पुण्य परिणति से परिवेष्टित हो इसलिए देव हो ।

[१४] राग आदि वैरी को दूर करके, दुःख और क्लेश का समाधान किया है यानि निवारण किया है । गुण आदि से शत्रु को आकर्षित करके जय किया है इसलिए हे जिनेश्वर ! तुम देव हो ।

[१५] दुष्ट ऐसे आठ कर्म की ग्रंथि को प्राप्त धन समूह को दूर किया है उत्तम मल्लसमूह को आकलन करके तप से शुद्ध किया । मतलब तप द्वारा कर्म समान मल्ल को खत्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है इसलिए तुम वीर हो ।

[१६] प्रथम व्रत ग्रहण के दिन ईन्द्र के विनयकरण की इच्छा का निषेध करके तुम उत्तम मुनि हुए इसलिए तुम महावीर हो ।

[१७] चल रहे या नहीं चल रहे प्राणी ने आपको दुभाए या भक्ति की, आक्रोश किया या स्तुति की । शत्रु या मित्र बने, तुमने करुणा रस से मन को रंजित किया इसलिए तुम परम कारुणिक (करुणावाले) हो ।

[१८] दुसरों के जो भाव-सद्भाव या भावना जो हुए - जो होंगे या होते है उस ज्ञान द्वारा तुम जानते हो - कहते हो इसलिए तुम सर्वज्ञ हो ।

[१९] समस्त भुवन में अपने-अपने स्वरूप में रहे सामान्य, बलवान् या कमजोर को (तुम देखते हो) इसलिए तुम सर्वदर्शी हो ।

[२०] कर्म और भव का पार पाया है या श्रुत समान जलधि को जानकर उसका सर्व तरह से पार पाया है इसलिए तुमको पारग कहा है ।

[२१] वर्तमान, भावि और भूतवर्ती जो चीज हो उसको हाथ में रहे आँबला के फल की तरह तुम जानते हो इसलिए त्रिकालविद् हो ।

[२२] अनाथ के नाथ हो । भयंकर गहन भवन में रहे हुए जीव को उपदेश दान से मार्ग समान नयन देते हो इसलिए तुम नाथ हो ।

[२३] प्राणीओ के चित्त में प्रवेश करनेवाली अच्छी तरह की चीज का राग-रति उस रागरूप को पुनःदोष रूप से समजाया है या विपरीत किया है मतलब कि राग दूर किया है इसलिए वीतराग हो ।

[२४] कमल समान आसन है इसलिए हरि-इन्द्र हो । सूर्य या इन्द्र प्रमुख के मान का खंड़न किया है इसलिए शंकर हो । हे जिनेश्वर एक समान सुख आश्रय तुमसे मिलते है वो भी तुम ही हो ।

[२५] जीव का मर्दन, चूर्णन, विनाश भक्षण, हत्या, हाथ पाँव का विनाश, नाखून, होठ का विदारण, इस कार्य का जिसका लक्ष्य या आश्रयज्ञान है ।

[२६] अन्य कुटिलता, त्रिशुल, जटा, गुरूर, नफरत, मन में असूया गुणाकारी की लघुता ऐसे कईं दोष हो ।

[२७] ऐसे बहुरूप धारी देव तुम्हारे पास बँसते है तो भी उसे विकाररहित किए, इसलिए तुम वीतराग हो ।

[२८] सर्वद्रव्य के प्रति पर्याय की अनन्त परिणति स्वरूप को एक साथ और त्रिकाल संस्थित रूप से जानते हो इसलिए तुम केवलि हो ।

[२९] उस विषय से तुम्हारी अप्रतिहत, अनवरत, अविकल शक्ति फैली हुई है । रागद्वेष रहित होकर चीजों को जाना है । इसलिए केवलि कहलाते हो ।

[३०] जो संज्ञी पंचेन्द्रिय को त्रिभुवन शब्द द्वारा अर्थ ग्राह्य होने से उनको सद्धर्म में जो जोडते हो अर्थात् अपनी वाणी से धर्म में जुड़ते है इसलिए तुम त्रिभुवन गुरु हो ।

[३१] प्रत्येक सूक्ष्म जीव को बड़े दुःख से बचानेवाले और सबके हितकारी होने से तुम सम्पूर्ण हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३२] बल, वीर्य, सत्त्व, सौभाग्य, रूप, विज्ञान, ज्ञान में उत्कृष्ट हो । उत्तम पंकज में निवास करते हो (विचरते हो) इसलिए तुम त्रिभुवनमें श्रेष्ठ हो ।

[३३] प्रतिपूर्ण रूप, धन, कान्ति, धर्म, उद्यम, यशवाले हो, भयसंज्ञा भी तुमसे शिथिल हुई है इसलिए हे नाथ ! तुम भयान्त हो ।

[३४] यह लोक परलोक आदि सात तरह के भय आपके विनष्ट हुए है । इसलिए हे जिनेश ! तुम भयान्त हो ।

[३५] चतुर्विध संघ या प्रथम गणधर समान ऐसे तीर्थ को करने के आचारवाले हो इसलिए तुम तीर्थंकर हो ।

[३६] इस प्रकार गुण समूह से समर्थ ! तुम्हें शक्र भी अभिनन्दन करे तो इसमें क्या ताज्जुब ? इसलिए शक्र से अभिवंदित हे जिनेश्वर ! तुम्हें नमस्कार हो ।

[३७] मनःपर्यव, अवधि, उपशान्त और क्षय मोह इन तीनों को जिन कहते है । उसमें तुम परम ऐश्वर्यवाले इन्द्र समान हो इसलिए तुम्हें जिनेन्द्र कहा है ।

[३८] श्री सिद्धार्थ नरेश्वर के घर में धन, कंचन, देश-कोश आदि की तुमने वृद्धि की इसलिए हे जिनेश्वर तुम वर्द्धमान हो ।

[३९] कमल का निवास है, हस्त तल में शंख चक्र, सारंग (की निशानी) है । वर्षिदान को दिया है । इसलिए हे जिनवर तुम विष्णु कहलाते हो ।

[४०] तुम्हारे पास शिव-आयुध नहीं है और तुम नीलकंठ भी नहीं तो भी जीव की बाह्य-अभ्यंतर (कर्म) रज को तुम हर लेते हो इसलिए तुम हर (शीव) हो ।

[४१] कमल समान आसन है । चार मुख से चतुर्विध धर्म कहते है । हंस अर्थात् ह्रस्वगमन से जानेवाले हो इसीलिए तुम ही ब्रह्मा कहलाते हो ।

[४२] समान अर्थवाले ऐसे जीव आदि तत्त्व को सबसे ज्यादा जानते हो । उत्तम निर्मल केवल (ज्ञान-दर्शन) पाए हुए हो इसलिए तुम्हें बुद्ध माना है ।

[४३] श्री वीर जिणंद को इस नामावलि द्वारा मंदपुन्य ऐसे मैंने संस्तव्य किया है । हे जिनवर मुज पर करुणा करके हे वीर ! मुजे पवत्रि शीव पंथ में स्थिर करो ।

३३	**वीरस्तव-प्रकिर्णक-१०-हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३४ निशीथ

छेदसूत्र-१- हिन्दी अनुवाद

उद्देशक-१

'निसीह' सूत्र के प्रथम उद्देशा में १ से ५८ सूत्र है । यह हरएक सूत्र के मुताबिक दोष या गलती करनेवाले को 'अनुग्घातियं' नाम का प्रायश्चित् आता है ऐसा सूत्र के अन्त में बताया है ।

दुसरे उद्देशक के आरम्भ में 'निसीह-भास' की दी गई गाथा के मुताबिक पहले उद्देश के दोष के लिए 'गुरुमासं' - गुरुमासिक नाम का प्रायश्चित बताया है । मतलब कि पहले उद्देशा में बताई हुई गलती करनेवाले को गुरमासिक प्रायश्चित आता है ।

[१] जो साधु या साध्वी खुद हस्तकर्म करे, दुसरों के पास करवाए या अन्य करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित ।

उपस्थ विषय में जननांग सम्बन्ध से हाथ द्वारा जो अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचारका आचरण करना । यहाँ हस्त विषयक मैथुन क्रिया सहित हाथ द्वारा होनेवाली सभी वैषेयिक क्रियाए समज लेना ।

[२] जो साधु-साध्वी अंगादान, जनन अंग का लकड़ी के टुकड़े, वांस की सलाखा, ऊँगली या लोहा आदि की सलाखा से संचालन करे अर्थात् उत्तेजित करने के लिए हिलाए, दुसरों के पास संचालन करवाए या संचालन करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

जैसे सोए हुए शेर को लकड़ी आदि से तंग करे तो वो संचालक को मार डालता है ऐसे जननांग का संचालन करनेवाले का चरित्र नष्ट होता है ।

[३] जो साधु-साध्वी जननांग का मामूली मर्दन या विशेप मर्दन खुद करे, दुसरों के पास करवाए या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित - जैसे सर्प उस मर्दन का विनाश करते है । ऐसे जननांग का मर्दन करनेवाले के चारित्र का ध्वंस होता है ।

[४] जो साधु-साध्वी जननांग को तेल, घी, स्निग्ध पदार्थ या मक्खन से सामान्य या विशेष अभ्यंगन मर्दन करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित...जैसे प्रज्वलित अग्नि में घी डालने से सब सुलगता है ऐसे जननांग का मर्दन चारित्र का विनाश करता है ।

[५] जो साधु-साध्वी जननांग को चन्दन आदि मिश्रित गन्धदार द्रव्य, लोध्र, नाम के सुगंधित द्रव्य या कमलपुष्प के चूर्ण आदि उद्वर्तन द्रव्य से सामान्य या विशेप तरह से स्नान करे, पीष्टी या विशेप तरह के चूर्ण द्वारा सामान्य या विशेष मर्दन करे, करवाए या मर्दन करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित जिस तरह धारवाले शस्त्र के पुरुपन से हाथ का छेद हो ऐसे गुप्त इन्द्रिय के मर्दन से संयम का छेद हो ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

[६] जो साधु-साध्वी जननांग को ठंडे या गर्म विकृत किए पानी से सामान्य या विशेष तरह से प्रक्षालन करे यानि खुद धोए, दुसरों के पास धुलवाए या धोनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित । जैसे नेत्र दर्द होता हो और कोई भी दवाई मिश्रित पानी से बार-बार धोने से वो दर्द दुःसह्य बने ऐसे गुप्तांग का बार-बार प्रक्षालन मोह का उदय पेदा करता है ।

[७] जो साधु पुरुषचिह्न की चमड़ी का अपवर्तन करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित, जैसे सुख से सोनेवाले साँप का मुँह कोई खोले तो उसे साँप नीगल जाए ऐसे ऐसे मुनि का चारित्र नीगल जाता है - नष्ट हो जाता है ।

[८] जो साधु-साध्वी जननांग को नाक से सूँघे या हाथ से मर्दन करके सूँघ ले या दुसरे के पास करवाए या दुसरे ऐसे दोष का सेवन करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित...जैसे कोई झहरीली चीज सूँघ ले तो मर जाए ऐसे अतिक्रम आदि दोष से ऐसा करनेवाला मुनि अपनी आत्मा को संयम से भ्रष्ट करता है ।

[९] जो साधु जननेन्द्रिय को अन्य किसी योग्य स्त्रोत यानि वलय आदि छिद्र में प्रवेश करवाके शुक्र पुद्गल बाहर नीकाले, साध्वी अपने गुप्तांग में कदली फल आदि चीजे प्रवेश करवाके रज-पुद्गल बाहर नीकाले उस तरह से निर्घातन करे - करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित ।

[१०] जो साधु-साध्वी सचित प्रतिष्ठित यानि सचित पानी आदि के साथ स्थापित ऐसी चीज को सूँघे, सूँघाये या सूँघानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित ।

[११] जो साधु-साध्वी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पास चलने का मार्ग, पानी, कीचड़ आदी को पार करने का पुल या ऊपर चड़ने की सीड़ी आदि अवलंबन खुद करे या करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित ।

[१२-१८] जो साधु-साध्वी अन्य तीर्थिक या गृहस्थ के पास पानी के निकाल का नाला...भिक्षा आदि स्थापन करने का सिक्का और उसका ढक्कन, आहार या शयन के लिए सूत की या डोर की चिलिमिलि यानि परदा,...सूई, कातर, नाखूनछेदनी, कान-खुतरणी आदि साधन का समारकाम करवाए, धार नीकलवाए । इसमें से कोई भी काम खुद करे, दुसरों के पास करवाए या वो दोष करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१९-२२] जो साधु-साध्वी प्रयोजन के सिवा (गृहस्थ के पास) सूई, कातर, कान खुतरणी, नाखून छेदिका की खुद याचना करे, दुसरे के पास करवाए या याचक की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित ।

[२३-२६] जो साधु-साध्वी अविधि से सूई-कातर, नाखूनछेदिका, कान खुतरणी की याचना स्वयं करे, अन्य से करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[२७-३०] जो साधु-साध्वी अपने किसी कार्य के लिए सूई, कातर, नाखून छेदिका, कान खुतरणी की याचना करे, फिर दुसरे साधा-साध्वी, गृहस्थ को दे, दिलाए या देनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३१] जो साधु-साध्वी 'मुजे वस्त्र सी के लिए सूई का खप-जुरुर है, काम पुरा होने पर वापस कर देंगे ऐसा कहर सूई की याचना करे । लाने के बाद उससे पात्र या अन्य चीज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीए यानि सीए-सीलाए या सीनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित ।

[३२-३४] जो साधु-साध्वी वापस करूँगा ऐसे कहकर-वस्त्र फाड़ डालने के लिए कातर माँगकर पात्र या अन्य चीज काट डाले, नाखून काटने के लिए नाखून छेदिका माँगकर वो नाखून छेदिका से काँटा नीकाले...कान का मैल नीकालने के लिए कान खुतरणी माँगकर दाँत या नाखून का मैल नीकाले । यह काम खुद करे, अन्य से करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे (तो वहाँ भापा समिति की स्खलना होती है इसीलिए) प्रायश्चित ।

[३५-३८] जो साधु-साध्वी सुई, कातर, नाखून छेदिका, कान खुतरणी अविधि से परत करे, करवाए या परत करनेवाले की अनुमोदना करे (जैसे कि दूर से फेंक के आदि प्रकार से देनेवाले वायुकाय विराधना, धर्म लघुता दोष होता है ।) तो प्रायश्चित्त ।

[३९] जो साधु-साध्वी तुंबड़ा के बरतन, लकड़ी में से बने बरतन या मिट्टी के बरतन यानि किसी भी तरह के पात्रा को अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पास निर्माण, संस्थापन, पात्र के मुख आदि ठीक करवाए, पात्र के किसी भी हिस्से का समारकाम करवाए, खुद करने के शक्तिमान न हो, खुद थोड़-सा भी करने के लिए समर्थ नहीं है ऐसे खुद की ताकत को जानते हो तो सोचकर दूसरों को दे दे और खुद वापस न ले । यह कार्य खुद करे, दुसरों के पास करवाए या ऐसे करनेवाले को अनुमोदना करे तो प्रायश्चित ।

सामान्य अर्थ में कहा जाए तो अपने पात्र के लिए किसी भी तरह का परिकर्म समारकाम करने की क्रिया गृहस्थ के पास करवाए या दुसरों को रखने के लिए दे दे तो उसमें छ जीव निकाय की विराधना का संभव होने से साधु-साध्वी को निषेध किया है ।

[४०] जो साधु-साध्वी दंड, लकड़ी, वर्षा आदि की कारण से पाँव में लगी कीचड़ साफ करने की शूली, वांस की शूली, यह सव चीजो को अन्य तीर्थिक या गृहस्थ के पास तैयार करवाए, समारकाम करवाए या किसी को दे दे । यह सब खुद करे - करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[४१-४२] जो साधु-साध्वी पात्र को अकारण या शोभा के लिए थिग्गल लगाता है और जो कारणविशेष से वह तुटा हो तो तीन से ज्यादा थीग्गल लगावे या सांधे - यह कार्य खुद करे - करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित ।

[४३-४६]जो साधु-साध्वी पात्रा को विना कारण अविधि से बँधन से बाँधे...बिना कारण एक बँधन बाँधे यानि एक ही जगह बँधन लगाए, कारण हो तो भी तीन से ज्यादा अधिक बँधन बाँधे...कारण वश होकर तीन से ज्यादा वँधन बाँधे, बन्धे हुए पात्र देढ़ मास से ज्यादा वक्त तक रख दे । यह सब खुद करे, दुसरों के पास करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[४७-४८] जो साधु-साध्वी वस्त्र को बिना कारण थीगड़ा लगाए...तीन से ज्यादा जगह पर थीगड़े लगाए, दुसरों के पास लगवाए, थीगड़े लगानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[४९] जो साधु-साध्वी अविधि से वस्त्र सीए, सीलाए या सीनेवाले की अनुमोदना करे। (वैसा करने से प्रतिलेखना बराबर नहीं होती इसलिए प्रायश्चित्) ।

[५०-५५] जो साधु-साध्वी (फटे हुए वस्त्र को सीए जाए तो भी) बिना कारण एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाँठ लगाए...फटे वस्त्र होने से या कारण वश होकर गाँठ लगानी पड़े तो भी तीन से ज्यादा गाँठ लगाए...फटे हुए दो कपड़ों को एक साथ जुड़े...फटे कपड़ों की कारण से परस्पर तीन से ज्यादा जगह पर साँधे लगाए...अविधि से कपड़ों के टुकड़े को जुड़ दे...अलग-अलग तरह के कपड़ों को जुड़ दे । यह सब खुद करे, अन्य के पास करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५६] जो साधु-साध्वी ज्यादा वस्त्र ग्रहण करे और वो ग्रहण किए वस्त्र को देढ़ मास से ज्यादा वक्त रखे रखवाए या जो रखे उसकी अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५७] जो साधु-साध्वी जिस घर में रहे हो वहाँ अन्य तीर्थिक या गृहस्थ के पास धुँआ करवाए, करे या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५८] जो साधु-साध्वी (आधाकर्म आदि मिश्रित ऐसा) पूतिकर्म युक्त आहार (वस्त्र, पात्र, शय्या आदि) खुद उपभोग करे, अन्य के पास करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

हस्तकर्म दोष से लेकर इस पूतिकर्म तक के जो दोष बताए उसमें से किसी भी दोष का सेवन करे, करवाए या अनुमोदन करे तो वो साधु या साध्वी को मासिक परिहार स्थान अनुद्घातिक नाम का प्रायश्चित आए । जिसके लिए दुसरे उद्देशा के आरम्भ में कहे गए भाष्य में गुरुमासिक प्रायश्चित शब्द का प्रयोग किया है ।

उद्देशक-१-की मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-२

"निसीह" सूत्र के इस दुसरे उद्देशक में ५९ से ११७ उस तरहसे कुल मिलाके ५९ सूत्र है । इस हरएक सूत्र में बताए दोप का त्रिविध से सेवन करनेवाले 'उग्घातियम्' नाम का प्रायश्चित आता है ऐसा उद्देशक के अन्त में बताया है । दुसरे उद्देशक की शुरूआत में आई भाष्य गाथा मुताबिक उसे लहुमासं प्रायश्चित से पहचाना जाता है ।

[५९] जो साधु-साध्वी लकड़ी के दंडवाला पादप्रौछनक करे । अर्थात् निषद्यादि दो वस्त्र रहित ऐसे केवल लकड़े की दांडीवाला रजोहरण करे । वो खुद न करे, न करवाए, करनेवाले की अनुमोदना न करे ।

[६०-६६] जो साधु-साध्वी इस तरह निपद्यादि दो वस्त्र रहित का केवल लकड़ी की दंड़ीवाला पादप्रोछनक अर्थात् रजोहरण ग्रहण करे...धारण करे अर्थात् रखे...वितरण करे यानि कि दुसरों को दे दे;...परिभोग करे यानि कि उससे प्रमार्जन आदि कार्य करे...किसी विशेप कारण या हालात की कारण से ऐसा रजोहरण रखना पड़े तो भी देढ़ मास से ज्यादा वक्त रखे;...ताप देने के लिए खोलकर अलग रखे । इन सर्व दोष का खुद सेवन करे, अन्य से सेवन करवाए या सेवन करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६७] जो साधु-साध्वी अचित्त वस्तु साथ में या पास रखी चीज खुद सूँघे, दुसरो को सुँघाए या सूँघनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६८] जो साधु-साध्वी पगवटी यानि कि गमनागमन का मार्ग-कीचड़ आदि पार करने के लिए लकड़ी आदि से संक्रम, खाई आदि पार करने के लिए रस्सी का या अन्य वैसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलम्बन करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६९-७१] जो साधु-साध्वी पानी नीकालने की नीक या गटर...आहार, पात्रादि की स्थापना के लिए सीक्का और उसका ढक्कन...सूत का या डोर का पर्दा खुद करे, दुसरों के पास करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७२-७५] जो साधु-साध्वी सूई, कातर, नाखून छेदिका, कान खुतरणी, आदि की सुधारणा, धार नीकलना आदि खुद करे, दुमरों मे करवाए या अनुमोदना करे ।

[७६-७७] जो साधु-साध्वी थोड़ा लेकिन कठोर या असत्य वचन वोले, बुलवाए या बोलनेवाले की अनुमोदना करे (भाषा समिति का भंग होने से) वो प्रायश्चित् ।

[७८] जो साधु-साध्वी थोड़ा लेकिन अदत्त अर्थात् किसी चीज के स्वामी से नहीं दिया हुआ ग्रहण करे...करवाए या उसे लेनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७९] जो साधु-साध्वी थोड़ा-अल्प बूँद जितना अचित्त ऐसा ठंड़ा या गर्म पानी लेकर हाथ-पाँव-कान-आँख-दाँत-नाखून या मुँह एकवार या बार-बार धुए, धुलाए या धोनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[८०] जो साधु-साध्वी अखंड ऐसे चमड़े को धारण करे अर्थात् पास रखे या उपभोग करे (चमड़े के बने उपानह, उपकरण आदि रखने की कल्पना न करे), करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[८१-८२] जो साधु-साध्वी, प्रमाण से ज्यादा और अखंड वस्त्र धारण करे - उपभोग करे, अन्य से उपभोग करवाए या उसकी अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् । (ज्यादा वस्त्र हो या पूरा कपडा या अखंड लम्बा वस्त्र रखने से पडिलेहण आदि न हो शके । जीव विराधना मुमकीन बने इसलिए शास्त्रीय नाप मुताबिक वस्त्र रखे । लेकिन अखंड वस्त्र न रखे ।

[८३] जो साधु-साध्वी तुंबड़ा का, लकड़े का या मिट्टी का पात्र बनाए, उसका किसी हिस्सा या मुख बनाए, उसके विषम हिस्से को सीधा करे, विशेष में उसके किसी हिस्से का समारकाम करे अर्थात् इसमें से किसी परिकर्म खुद करे, दुसरों से करवाए या वैसा करनेवाले साधु-साध्वी की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ! [पहले तैयार हुए और कल्पे ऐसे पात्र निर्दोष भिक्षा मिले तो ही लेने । इस तरह के समारकाम से छ जीव निकाय विराधना आदि दोष मुमकीन है ।]

[८४] जो साधु-साध्वी दंड, दांड़ी, पाँव में लगे कीचड़ को ऊखेड़ने की शूली, वांस की शूली, खुद वनाए, उसके किसी विशेप आकार की रचना करे, आड़े-टेढ़े को सीधा करे। या सामान्य या विशेष से उसका किसी समारकाम करे - करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[८५-८९] जो साधु-साध्वी भाई-बहन आदि स्वजन से, स्वजन के सिवा पराये, परजन से...वसति, श्रावकसंघ आदि की मुखिया व्यक्ति से...शरीर आदि से बलवान से...वाचाल, दान का फल आदि दिखाकर कुछ पा शके वैसी व्यक्ति से गवेपित मतलब प्राप्त किया पात्र ग्रहण करे, रखे, धारण करे, अन्य से करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्। (स्वयं गवेपणा करके निर्दोष और कल्पे ऐसे पात्र धारण करना ।)

[९०-९४] जो साधु-साध्वी हंमेशा अग्रपिंड़ मतलब भोजन से पहले अलग किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया या विशेष ऐसा, एक ही घर से पूर्ण मतलब सबकुछ, बरतन, थाली आदि में से आधा या तीसरे-चौथे हिस्से का...दान के लिए नीकाले गए हिस्से का...छट्ठे हिस्से का पिंड मतलव आहार या भोजन ले यानि कि उपभोग करे, करवाए या उपभोग करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् । (ऐसा करने में निमंत्रणा, दुसरों को आहार में अंतराय, राग, आज्ञाभंग आदि दोप की संभवित् है ।)

[९५] जो साधु-साध्वी (बिना कारण मासकल्प आदि शास्त्रीय मर्यादा भंग करके) एक जगह हंमेशा निवास करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[९६] जो साधु-साध्वी (वस्त्र-पात्र-आहार आदि) दान ग्रहण करने से पहले और ग्रहण करने के बाद (वस्तु या दाता की) प्रशंसा करे, परिचय करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[९७] जो साधु-साध्वी फिर वो 'समाण' - गृद्धि रहित और मर्यादा मे स्थिर निवास रहा हो, 'वसमाण' नवकल्प विहार के पालन करने में रहे हो, वो एक गाँव से दुसरे गाँव विहार करनेवाले बचपन से पूर्व पहचानवाले ऐसे या जवानी के बाद परिचित वने ऐसे रागवाले कुल - घर में भिक्षा, चर्या से पहले जाकर अपने आगमन का निवेदन करके, फिर उन घरों में भिक्षा के लिए जाए । दुसरों को भेजे या भेजनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[९८] जो साधु-साध्वी अन्य तीर्थिक, गृहस्थ, 'परिहारिक' अर्थात् मूल-उत्तरगुणवाले तपस्वी या 'अपारिहारिक' अर्थात् मूल-उत्तरगुण में दोपवाले पासत्था के साथ गृहस्थ के कुल में भीक्षा लेने की बुद्धि से, भिक्षा लेने के लिए या भिक्षा लेकर प्रवेश करे या बाहर नीकले दुसरों को वैसी प्रेरणा दे या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[९९-१००] जो साधु-साध्वी अन्यतीर्थिक, गृहस्थ, पारिहारिक या अपारिहारिक के साथ (अपने उपाश्रय-वसति की हद) बाहर 'विचारभूमि' मल, मूत्र आदि के लिए जाने की जगह या 'विहारभूमि' स्वाध्याय के लिए की जगह में प्रवेश करे या वहाँ से बाहर नीकले, उक्त अन्य तीर्थिक आदि चार के साथ एक गाँव से दुसरे गाँव विचरण करे । यह काम दुसरों से करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१०१-१०२] जो साधु-साध्वी अनेक प्रकार का आहार अलग-अलग तरह के पानी पड़िगाहे यानि ग्रहण करे फिर मनोज्ञ, वर्ण, गंध, रस आदि युक्त आहार पानी खाए, पीए और अमनोज्ञ-वर्ग आदि आहार-पानी परठवे ।

[१०३] जो साधु-साध्वी मनोज्ञ-शुभ वर्ण, गंध आदि युक्त उत्तम तरह के अनेकविध आहार आदि लाकर इस्तेमाल करे, (खाए-पीए) फिर बचा हुआ आहार पास ही में रहे जिनके साथ मांडलि व्यवहार हो ऐसे, निरतिचार चारित्रवाले समनोज्ञ साधर्मिक (साधु-साध्वी) को बिना पूछे, न्यौता दिए बिना परठवे, परठवावे या परठवनावाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[१०४-१०५] जो साधु-साध्वी सागारिक मतलब सज्ञात्तर यानि कि वसति का अधिपति या स्थान दाता गृहस्थ, उसका लाया हुआ आहार आदि ग्रहण करे और इस्तेमाल करे यह काम खुद करे, करवाए या अनुमोदन करे तो प्रायश्चित् ।

[१०६] जो साधु-साध्वी सागारिक यानि कि सज्ञात्तर के कुल घर आदि की जानकारी के सिवा, पहले देखे हुए घर हो तो पूछकर तय करने के सिवा और न देखे हुए घर हो तब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस घर की गवेषणा - ढूँढे बिना इस तरह से जानने, पूछने या गवेषणा करने के बिना ही आहार ग्रहण करने के लिए वो कुल-घर में प्रवेश करे– करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[१०७] जो साधु-साध्वी श्रावक के परिचय रूप निश्रा का सहारा लेकर असन, पान खादिम, स्वादिम समान चार तरह के आहार में से किसी भी तरहका आहार, विशिष्ट वचन बोलकर याचना करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

यहाँ निश्रा यानि परिचय अर्थ किया । जिसमें पूर्व का या किसी रिश्ते का इस्तेमाल करके स्वजन की पहचान करवाके उसके द्वारा कुछ भी याचना करना ।

[१०८] जो साधु-साध्वी ऋतुबद्धकाल सम्बन्धी शय्या, संथारा (आदि) का पर्युषण के बाद यानि कि चातुर्मास के बाद शर्दी-गर्मी आदि) शेषकाल में उल्लंघन करे अर्थात् शेषकाल के लिए याचना की गई शय्या, संथारा, पाट पाटले आदि उसकी समय मर्यादा पूरी होने के बाद भी इस्तेमाल करे, करवाए या उसकी अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

यहाँ संवत्सरी से लेकर ७० दिन के कल्प को लेकर बताया है । यानि संवत्सरी पूर्वे विहार चालू हो लेकिन पर्युषण से ७० दिन की स्थिरता करनी होने से उससे पहले ग्रहण की शय्या संथारा परत करना ऐसा मतलब हो । लेकिन वर्तमानकाल की प्रणालि मुताबिक ऐसा अर्थ हो शके कि शेषकाल मतलब शर्दी-गर्मी में ग्रहण की शय्या आदि वर्षाऋतु से पहले उसके दाता को परत करना या पुनः इस्तेमाल के लिए परवानगी माँगना ।

[१०९] जो साधु-साध्वी वर्षाऋतु में उपभोग करने के लिए लाया गया शय्या, संथारा, वर्षाऋतु बीतने के बाद दश रात्रि तक उपभोग कर शके, लेकिन उस समय मर्यादा का उल्लंघन करे, करवाए या अनुमोदन करे तो प्रायश्चित् ।

[११०] जो साधु-साध्वी वर्षाकाल या शेषकाल के लिए याचना करके लाई हुई शय्या संथारा वर्षा से भीगा हुआ देखने-जानने के बाद उसे न खोले, प्रसारकर सूख जाए उस तरह से न रखें, न रखवाए या उस तरह से शय्यादि खुले न करनेवाले की अनुमोदना करे ।

[१११-११३] जो साधु-साध्वी प्रातिहारिक यानि कि श्रावक से वापस देने का कहकर लाया गया,...सागारिक यानि कि शय्यातर आदि गृहस्थ के पास से लाया हुआ शय्या-संथारा या दोनों तरह से शय्यादि दुसरी बार परवानगी लिए बिना, दुसरी जगह, उस वसति के बाहर खुद ले जाए, दुसरों को ले जाने के लिए प्रेरित करे या ले जानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

[११४-११६] जो साधु-साध्वी प्रातिहारिक यानि वापस देने लायक या शय्यातर आदि गृहस्थ से लाकर या दोनों तरह के शय्या-संथारा (आदि) जिस तरह से लाया हो उसी तरह से वापस न दे, ठीक किए बिना, वापस करे बिना, विहार करे, खो जाए या ढूँढे नहीं तो प्रायश्चित् ।

[११७] जो साधु-साध्वी अल्प या कम मात्रा में भी उपधिवस्त्र का पड़िलेहण न करे, न करवाए या न करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

यहाँ दुसरे उद्देशक में जो दोष बताए उसमें से किसी भी दोष खुद सेवन करे, करवाए या अनुमोदना करे तो उसे 'मासियं परिहारठाणं उग्घातियं' प्रायश्चित् आए जिसके लिए लघुमासिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित् शब्द भी योजित हुआ है ।

उद्देशक-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-३

"निसीह" सूत्र के इस तीसरे उद्देशक में ११८ से १९६ इस प्रकार कुल ७९ सूत्र है। जिसमें बताए हुए दोप में किसी भी दोप का त्रिविधे सेवन करनेवाले को 'उग्घातियं' नाम का प्रायश्चित् आता है जिसे लघुमासिक प्रायश्चित् रूप से पहचाना जाता है ।

[११८-१२९] जो साधु-साध्वी धर्मशाला, उपवन, गाथापति का कुल या तापस के निवास स्थान में रहे अन्यतीर्थिक या गृहस्थ ऐसे किसी एक पुरुष, कई पुरुप या एक स्त्री, कई स्त्रीयों के पास १. दीनता पूर्वक (ओ भाई ! ओ बहन मुजे कोई दे उस तरह से) २. कुतुहल से, ३. एक बार सामने से लाकर दे तब पहले 'ना' कहे, फिर उसके पीछे-पीछे जाकर या आगे-पीछे उसके पास खड़ा रहकर या बक-बक करके (जैसे कि ठीक है अब तुम ले आए हो तो, रख ले ऐसा बोलना) इन तीनों में से किसी भी तरह से अशन-पान-खादिम स्वादिम इन चार तरह के आहार में से कुछ भी याचना करे या माँगे, याचना करवाए या उस तरह से याचना करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१३०] जो साधु-साध्वी गृहस्थ कुल में अशन-पान आदि आहार ग्रहण करने की इच्छा से प्रवेश करे मतलब भिक्षा के लिए जाए तब गृहस्वामी निषेध करे तो भी दुसरी बार उसके कुल-घर में आज्ञा लिए बिना प्रवेश करे-करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१३१] जो साधु-साध्वी संखड़ी अर्थात् जहाँ कई लोग भोजन के लिए ईकट्ठे हुए हो यानि कि भोजन समारम्भ हो (छ काय जीव विराधना की विशेष संभावना होने से) उस जगह अशन, पान, खादिम, स्वादिम को लेने के लिए जाए, भिक्षा के लिए जाए, दुसरों को भेजे या जानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१३२] जो साधु-साध्वी गृहस्थकुल-घर में भिक्षा के लिए जाए तब तीन घर (कमरे) से ज्यादा दूर से लाए गए असन, पान, खादिम, स्वादिम दे (वहोरावे) तब जो कोई वो अशन आदि ग्रहण करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१३३-१३८] जो साधु-साध्वी अपने पाँव के (मैल निवारण या शोभा बँढाने के लिए) एक या बारबार प्रमार्जन करे, साफ करे, पाँव की मालिश करे, तेल, घी, मक्खन या चरबी से मर्दन करे, लोघ्र (नामका एक द्रव्य), कल्क (कई द्रव्य मिश्रित द्रव्य), चूर्ण (गन्धदार द्रव्य) वर्ण (अबील आदि द्रव्य) । कमल चूर्ण, उसके द्वारा मर्दन करे, अचित्त किए गए ठंड़े या गर्म पानी से प्रक्षालन करे उससे पहले किसी द्रव्य से लींपकर सूखाने के लिए फूँक मारे या रंग दे यह सब करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।।

[१३९-१४४] जो साधु-साध्वी अपनी काया- यानि कि शरीर को एक या ज्यादा बार प्रमार्जन करे, मालीश करे, मर्दन करे, प्रक्षालन करे, रंग दे (यह सब सूत्र १३३ से १३८ की तरह समज लेना) तो प्रायश्चित् ।

[१४५-१५०] जो साधु-साध्वी अपने व्रण जैसे कि कोढ़, दाद, खुजली, गंडमाल,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगने से या गिरने से होनेवाले झखम आदि का (सूत्र १३३ से १३८ में बताने के अनुसार) प्रमार्जन, मर्दन, प्रक्षालन, रंगना, मालीश आदि करे, करवाए या अनुमोदन करे ।

[१५१-१५६] जो साधु-साध्वी अपने शरीर में रहे गुमड़, फोल्ले, मसा, भगंदर आदि व्रण किसी तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा एक या कईं बार छेदन करे, छेदन करके खून नीकाले या विशुद्धि-सफाई करे, लहूँ या पानी नीकलने के बाद अचित ऐसे शीत या उष्ण जल से एक या कईं बार प्रक्षालन करे, उस तरह से प्रक्षालन करने के बाद एक या कईं बार उस पर लेप या मल्हम लगाए, उसके बाद तेल, घी, मक्खन या चरबी से एक या कई बार मर्दन करे, उसके बाद किसी भी तरह के धूप से वहाँ धूप करे या सुगंधी करे । इसमें से किसी भी दोष का सेवन करे, दुसरों से करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

[१५७] जो साधु-साध्वी अपनी गुदा में या नाभि में रहे क्षुद्र या छोटे जीव कृमि आदि को ऊँगली डालकर बाहर नीकाले, नीकलवाए या नीकालनेवाले की अनुमोदना करे ।

[१५८] जो साधु-साध्वी अपने बढ़े हुए नाखून के आग के हिस्से को काटे, शोभा बँढ़ाने के लिए संस्कार करे, करवाए या अनुमोदन करे तो प्रायश्चित् ।

[१५९-१६३] जो साधु-साध्वी अपने बढ़े हुए जाँघ के, गुह्य हिस्से के, रोमराजि के, बगल के, दाढ़ी-मूँछ आदि के बाल काटे, कटवाए, काटनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[१६४-१६६] जो साधु-साध्वी अपने दाँत एक बार या अनेकबार (नमक-क्षार आदि से) घिसे, धुए, मुँह के वायु से फूँक मारकर या रंगने के द्रव्य से रंग दे यह काम खुद करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१६७-१७२] जो साधु-साध्वी अपने होठ एक बार या बार-बार प्रमार्जन करे, धोए, परिमर्दन करे, तेल, घी, चरबी या मक्खन से मर्दन-मालीश करे, लोघ्र (नामक द्रव्य, कल्क (कई द्रव्यमिश्रित् द्रव्य विशेष), चूर्ण (गन्धदार द्रव्य) वर्ण (अबिल आदि द्रव्य) या पद्म चूर्ण से मर्दन करे, अचित्त ऐसे ठंड़े या गर्म पानी से धोए...रंग दे, यह कार्य करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१७३-१७४] जो साधु-साध्वी अपने लम्बे बढ़े हुए श्मश्रू-मूँछ के बाल, आँख की भँवर के बाल, काटे, शोभा बढ़ाने के लिए ठीक करे, दुसरों के पास ऐसा करवाए या ऐसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१७५-१८०] जो साधु-साध्वी अपनी आँख को एकबार या कईं बार (सूत्र १६७-से १७२ में होठ के बारे में बताया उस तरह) धुए, परिमर्दन करे, मालीश करे, मर्दन करे, प्रक्षालन करे, रंग दे, यह काम खुद करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१८१-१८२] जो साधु-साध्वी अपने लम्बे बढ़े भ्रमर के बाल, बगल के बाल कटवाए या शोभा बढ़ाने के लिए ठीक करे, दुसरों के पास वैसा करवाए या अनुमोदना करे।

[१८३] जो साधु-साध्वी अपने आँख, कान, दाँत, नाखून का मैल नीकाले, नीकलवाए या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

[१८४] जो साधु-साध्वी अपने शरीर का पसीना, मैल, पसीना और धूल से ढ़ग बने कचरे का थर, या लहू के भींगडे आदि समान किसी भी कचरे को नीकाले या विशुद्ध करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१८५] जो साधु-साध्वी एक गाँव से दुसरे गाँव विहार करते हुए अपने सिर को ढँके, आवरण से आच्छादित करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१८६] जो साधु-साध्वी शण, ऊनी, सूत या वैसी चीज में से वशीकरण का धागा बनाए, बनवाए या बनानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१८७-१९५] जो साधु-साध्वी घर के आँगन के पास, दरवाजे पर, अंतर द्वार पर, अग्रहिस्से में, आँगन में या मुत्र-विष्ठा निवारण स्थान में, मृतकगृह में, मुर्दा जलाने के बाद ईकट्ठी हुई भस्म की जगह, स्मशान के पास मृतक को थोड़ी देर रखी जाए उसी जगह, मुर्दा जलाने की जगह पर की गई डेरी के जगह, मृतक दहन स्थान पर या मृतक की हड्डिया जहाँ डाली जाती हो वहाँ, अंगार, क्षार, गात्र (रोगाक्रान्त पशु के - वो अवयव) तुस (नीभाड़ो) या भुसु सुलगाने की जगह पर, कीचड़ या नील-फूल हो उस जगह, नवनिर्मित्त ऐसा तबेला मिट्टी की खाण, या हल चलाई हुई भूमि में, उदुम्बर, न्यग्रोध या पीपल के पेड़ के फल को गिरने की जगह पर, ईख, कसूम्बा, या कपास के जंगल में, डाग (वनस्पति का नाम है), मूली, धनिया, जीरा, दमनक (वनस्पति) या मरुक (वनस्पति) रखने की जगह, अशोक, सप्तवर्ण, चंपक या आम के वन में, यह या ऐसे किसी भी तरह के पानवाले, पुष्प-फल-छांववाले पेड़ के समूह हो उस जगह में (उक्त सभी जगह में से किसी भी जगह) मल, मूत्र, परठवे, परठवाए या परठवनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१९६] जो साधु-साध्वी दिन में, रात में या विकाल-संध्या के वक्त मल-मूत्र स्थापन करके सूर्योदय से पहले परठवे, परठवाए या परठवनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

इस उद्देशक में कहे मुताबिक के किसी भी दोष त्रिविधे सेवन करे तो उसे मासिक परिहारस्थान उद्घातिक प्रायश्चित् आए जिसे लघुमासिक प्रायश्चित् भी कहते है ।

उद्देशक-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-४

"निसीह" सूत्र के इस चौथे उद्देशक में १९७ से ३१३ उस तरह से कुल मिलाके ११७ सूत्र है । जिसमें बतायें अनुसार किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को 'मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं' नाम का प्रायश्चित् आता है । जिसे लघुमासिक प्रायश्चित् भी कहते है।

[१९७-१९९] जो साधु-साध्वी राजा को वश करे, प्रशंसा करे, आकर्षित करे-करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[२००-२१४] जो साधु-साध्वी राजा के रक्षक की, नगर रक्षक की, निगम यानि कि व्यापार के स्थान के रक्षक को, देश रक्षक को, सर्व रक्षक को (इस पाँच में से किसी को भी) वश करे, प्रशंसा करे, आकर्षित करे, वैसा करवाए या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे ।

[२१५] जो साधु-साध्वी अखंड़ित या सचित्त औषधि (अर्थात् सचित् धान्य या सचीत्त बीज) खुद खाए, दुसरों को खीलाए या खानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[२१६] जो साधु-साध्वी आचार्य-उपाध्याय (किसी भी रत्नाधिक) को मालूम किए बिना (आज्ञा लिए सिवा) दहीं, दूध आदि विगइ खुद खाए खिलाए या खानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२१७] जो साधु-साध्वी स्थापना कुल को (जहाँ साधु निमित्त से अन्न-पान आदि की स्थापना की जाती है उस कुल को) जाने-पूछे-पूर्वे गवेषणा किए बिना आहार ग्रहण करने की इच्छा से उस कुल में प्रवेश करे, या करवाए, या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[२१८] जो साधु-साध्वी के उपाश्रय में अविधि से प्रवेश करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[२१९] जो साधु-साध्वी के आने के मार्ग में दंड़ी, लकड़ी, रजोहरण मुहपति या अन्य किसी भी उपकरण को रखे, रखवाए या रखनेवाले की अनुमोदना करे ।

[२२०-२२१] जो साधु-साध्वी नए या अविद्यमान क्लेश पेदा करे, खमाए हुए या उपशान्त हुए पुराने क्लेश को पुनः उद्दीकरण करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त।

[२२२] जो साधु-साध्वी मुँह फाड़कर यानि कि खुशखुशहाल हँसे, हँसाए या हँसनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[२२३-२३२] जो साधु (या साध्वी) पासत्था (ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की समीप रहे फिर भी उसकी आराधना न करे वो), ओसन्ना (अवसन्न या शिथिल)...कुशील, नीत्यक (नीच या अधम), संसक्त, (संबद्ध) इन पाँच में से किसी को भी अपने संघाडा के साधु (या साध्वी) देवें, दिलाए या देनेवाले की अनुमोदना करे, उसके संघाड़ा के साधु (या साध्वी) का स्वीकार करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[२३३] जो साधु-साध्वी सचित्त पानी से भीगे हुए हाथ, मिट्टी का पात्र, कड़छी या किसी भी धातु का पात्र (मतलब सचित्त, पानी-अप्काय के संसर्गवाले) अशन-पान, खादिम, स्वादिन उन चार में से किसी भी तरह का आहार ग्रहण करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[२३४] उपरोक्त सूत्र २३३ में बताने के अनुसार उस तरह कुल २१ भेद जानने चाहिए, वो इस प्रकार-स्निग्ध यानि कि कम मात्रा में भी सचित्त पानी का गीलापन हो, सचित्त ऐसी-रज, मिट्टी, तुषार, नमक, हरिताल, मन-शिल, पिली मिट्टी, गैरिक धातु, सफेद मिट्टी, हिंगलोक, अंजन, लोघ्रद्रव्य कुक्कुसद्रव्य, गोधूम आदि चूर्ण, कंद, मूल, शृंगबेर (अदरख) पुष्प, कोष्ठपुर (गन्धदार द्रव्य) संक्षेप में कहा जाए तो सचित्त अप्काय (पृथ्वीकाय या वनस्पतिकाय से संश्लिष्ट ऐसे हाथ या पात्र या कड़छी हो और उसके द्वारा किसी असन आदि चार में से किसी तरह का आहार दे, तब ग्रहण करे, करवाए या अनुमोदना तो प्रायश्चित् ।

[२३५-२४९] जो साधु-साध्वी ग्रामारक्षक को, देसारक्षक को, सीमारक्षक को, अरण्यारक्षक को, सर्वरक्षक को (इन पाँच या उसमें से किसी को) वश करे, खुशामत करे, आकर्षित करे, करवाए या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[२५०-३०२] जो किसी साधु-साध्वी आपस में यानि कि साधु-साधु के और साध्वी-साध्वी के बताए अनुसार कार्य करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

(यह सर्व कार्य का विवरण उद्देशक-३ के सूत्र १३३ से १८५ में आता है) उसी ५३ दोष की बात यहाँ समजना) जैसे कि जो कोइ साधु-साधु या साध्वी-साध्वी आपस में एक दूसरे के पाँव को एक बार या बार-बार प्रमार्जन करे साफ करे, (वहाँ से आरम्भ करके) जो कोइ साधु-साधु या साध्वी-साध्वी एक गाँव से दुसरे गाँव विचरते हुए एक दुसरे के सिर

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

को आवरण करे-ढँके (तब तक के ५३ सूत्र तीसरे उद्देशक में कहे अनुसार जानना ।)

[३०३-३०४] जो साधु-साध्वी मल, मूत्र त्याग करने की भूमि का - अन्तिम पोरिसि से (संध्या समय पहले) पड़िलेहण न करे, तीन भूमि यानि तीन मंडल तक या गिनती में तीन अलग-अलग भूमि का पड़िलेहण न करे, न करवाए या न करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३०५-३०६] जो साधु-साध्वी एक हाथ से कम मात्रावाली लम्बी, चौड़ी अचित्त भूमि में (और शायद) अविधि से (प्रमार्जन या प्रतिलेखन किए बिना, जीवाकुल भूमि मे) मल-मूत्र का त्याग करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे ।

[३०७-३०८] जो साधु-साध्वी मल-मूत्र का त्याग करने के बाद मलद्वार को साफ न करे, बांस या वैसी लकड़े की चीर, ऊँगली या धातु की शलाखा से मलद्वार साफ करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३०९-३१२] जो साधु-साध्वी मल-मूत्र का त्याग करने के बाद मलद्वार की शुचि न करे, केवल मलद्वार की ही शुद्धि करे, (हाथ या अन्य जगह पर लगे मल मूत्र की शुद्धि न करे) काफी दूर जाकर शुद्धि करे नाँव के आकार जैसी एक पसली जिसे दो हाथ ईकट्ठे करके, ऐसी तीन पसली से ज्यादा पानी से शुद्धि करे यह दोष खुद करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३१३] जो साधु-साध्वी अपरिहारिक हो यानि कि जिसे परिहार नाम का प्रायश्चित् नहीं आया ऐसे शुद्ध आचारवाले हो ऐसे साधु-साध्वी, परिहार नाम का प्रायश्चित् कर रहे साधु-साध्वी को कहे कि हे आर्य ! (हे आर्या !) चलो हम दोनो साथ अशन-पान-खादिम-स्वादिम ग्रहण करने के लिए जाए । ग्रहण करके अपनी-अपनी जगह आहार पान करेंगे, यदि वो ऐसा बोले, बुलवाए या बुलानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

इस प्रकार उद्देशक-४-में बताए अनुसार किसी भी एक या ज्यादा दोष खुद सेवन करे, दुसरों के पास सेवन करवाए या उन दोष का सेवन करनेवाले की अनुमोदना करे तो उसे मासिक परिहार स्थान उद्घातिक नाम का प्रायश्चित् आता है जिसे 'लघुमासिक' प्रायश्चित् कहते है ।

उद्देशक-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-५

"निसीह" सूत्र के इस उद्देशक में ३१४ से ३९२ इस तरह से कुल ७९ सूत्र है । जिसमें से किसी भी दोष का त्रिविध से सेवन करनेवाले को 'मासियं परिहाट्ठाणं-उग्घातियं नामका प्रायश्चित् आता है । जिसे "लघुमासिक प्रायश्चित कहते है ।

[३१४-३२४] जो साधु-साध्वी पेड़ की जड़-स्कंध के आसपास की सचित्त भूमि पर खड़े रहकर, एकबार या बार बार आसपास देखे, अवलोकन करे, खड़े रहे, शरीर प्रमाण शय्या करें, बैठे, पासा बदले, असन, पान, खादिम, स्वादिम रूप आहार करे, मल मूत्र का त्याग करे, स्वाध्याय करे, सूत्र अर्थ तदुभय रूप सज्झाय का उद्देशके करे, बारबार सज्झाय पठन या समुद्देश करे, सज्झाय के लिए अनुज्ञाप्रदान करे, सूत्रार्थरूप स्वाध्याय वांचना दे, आचार्य आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से दी गई स्वाध्याय, वांचना ग्रहण करे, स्वाध्याय की परावर्तना करे, इसमें से कोई भी कार्य खुद करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३२५-३२६] जो साधु-साध्वी अपनी संघाटिका यानि कि ओढ़ने का वस्त्र, जिसे कपड़ा कहते है वो - परतीर्थिक, गृहस्थ या श्रावक के पास सीलाई करवाए, उस कपड़े को दीर्घ सूत्री करे, मतलब शोभा आदि के लिए लम्बा धागा डलवाए, दुसरों को वैसा करने के लिए प्रेरित करे या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३२७] जो साधु-साध्वी नीम के, परवर के या बिली के पान को अचित्त किए हुए ठंड़े या गर्म पानी में धोकर पीसकर खाए, खिलाए या खानेवाले की अनुमोदना करे ।

[३२८-३३५] जो साधु-साध्वी प्रातिहाकि का (शय्यातर आदि के पास से वापस देने का कहकर लाया गया प्रातिहारिक), सागरिक (अन्य किसी गृहस्थ) का पाद प्रोंछनक अर्थात् रजोहरण, दंड, लकड़ी पाँव में लगा कीचड़ ऊखेड़ने की शलाखा विशेष या वांस की शलाखा, उसी रात को या अगली सुबह को वापस कर दूँगा ऐसा कहकर लाने के बाद निर्दिष्ट वक्त पर वापस न करे यानि कि शाम के बजाय सुबह दे या सुबह के बजाय शाम को दे, दिलाए या देनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३३६-३३८] जो साधु-साध्वी प्रातिहारिक (शय्यात्तर), सागरिक (अन्य किसी गृहस्थ, या दोनों की शय्या, संथारा वापस देने के बाद वो शय्या, संथारा दुसरी बार आज्ञा लिए बिना (याचना किए सिवा) इस्तेमाल करे यानि खुद उपभोग करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३३९] जो साधु-साध्वी शण-ऊनी, पोंड़ या अमिल के धागे बनाए । (किसी वस्त्र आदि के अन्तिम हिस्से में रहे धागे को लम्बा करे, शोभा बढ़ाने के लिए बुने, दुसरे के पास वैसा करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे ।

[३४०-३४८] जो साधु-साध्वी सचित्त, रंगीन, कईं रंग से आकर्षक, ऐसे सीसम की लकड़ी का, वांसा का या नेतर का बनाए, धारण करे, उपभोग करे, यह कार्य करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३४९-३५०] जो साधु-साध्वी नए बँसे हुए गाँव, नगर, खेड़, कब्बड़, मंड़ल, द्रोणमुख, पट्टण, आश्रम, घर, निगम, शहर, राजधानी या संनिवेश में, लोहा, ताम्र, जसत, सीसुं, चाँदी, सोना, रत्न की खान में, प्रवेश करके अशन-पान-खादिम-स्वादिम ग्रहण करे-करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

नए गाँव आदि में साधु-साध्वी प्रवेश करे तब लोग मंगलभूत माने भाव उल्लास बढ़े तो निमित्त आदि दोषयुक्त आहार तैयार करे, अमंगल माने वहाँ निवास करे तो अंतराय हो। और फिर नई बस्ती में सचित्त पृथ्वी, अप्काय, वनस्पतिकाय आदि विराधना की संभावना रहे, खान आदि सचित्त हो इसलिए संयम की और गिरने से आत्मविराधना मुमकीन हो ।

[३५१-३७४] जो साधु-साध्वी मुख, दाँत, होठ, नाक, बगल, हाथ, नाखून, पान, पुष्प, फल, बीज, हरीत वनस्पति से वीणा बनाए यानि कि वैसा आकार करे, मुख आदि से वीणा जैसे शब्द करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३७५-३७७] जो साधु-साध्वी औदेशिक (साधु के निमित्त से बनी) सप्राभृतिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(साधु के लिए समय मुताबिक परिवर्तन करके बनाई हुई), सपरिकर्म (लिंपण, गुंपण, रंगन आदि परिकर्म करके बनाई हुई) शय्या अर्थात् वसति या स्थानक में प्रवेश करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३७८] जो साधु-साध्वी 'संभोग प्रत्ययिक क्रिया नहीं है' यानि एक मांडली में साथ बैठकर आहार आदि क्रिया साथ में होती हो वो सांभोगिक क्रिया कहलाती है, ''जो सांभोगिक हो उसके साथ मांडली आदि व्यवहार न करना और असांभोगिक के साथ व्यवहार करना उसमें कोई दोष नहीं'' ऐसा बोले, बुलवाए या बोलनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[३७९-३८१] जो साधु-साध्वी अखंड़-दृढ़, लम्बे अरसे तक चले ऐसे टिकाऊ और इस्तेमाल में आ शके ऐसे तुंबड़े, लड़के के या मिट्टी के पात्रा को तोड़कर या टुकड़े कर दे, परठवे, वस्त्र, कंबल या पाद प्रोंछनक (रजोहरण) के टुकड़े करके परठवे, दांड़ा, दांड़ी वांस की शलाखा आदि तोड़कर टुकड़े करके परठवे, परठवाए या उसकी अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[३८२-३९२] जो साधु-साध्वी रजोहरण ३२ अंगुल मात्रा से ज्यादा धारण करे, उसकी दशी छोटी बनाए, बल्ले की तरह गोल बाँधे, अविधि से बाँधे, ओधारिया, निशेथीया रूप दो वस्त्र को एक ही डोर से बाँधे, तीन से ज्यादा बंध को बाँधे, अनिसृष्ट अर्थात् अनेक मालिक का रजोहरण होने के बाद भी उसमें से किसी एक मालिक देवें तो भी उसे धारण करे, अपने से (साड़े तीन हाथ से भी) दूर रखे, रजोहरण पर बैठे, उस पर सिर रखके सोए, उसपे सो कर बगल बदले । इसमें से कोई भी दोष करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

इस प्रकार इस उद्देशक-५-में बताए हुए दोष में से किसी दोष का खुद सेवन करे, दुसरों के पास करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो उसे - मासिक परिहार स्थान उद्घातिक नामका प्रायश्चित् आता है जिसे ''लघुमासिक प्रायश्चित्'' भी कहते है ।

उद्देशक-५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-६

''निसीह'' सूत्र के इस उद्देशक में ३९३ से ४६९ यानि कि कुल ७७ सूत्र है । जिसमें से किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को 'चाऊम्मासियं परिहारट्ठाणं अनुग्घातियं नाम का प्रायश्चित् आता है । जिसे ''गुरु चौमासी'' प्रायश्चित् कहते है ।

[३९३-४०२] जो साधु मैथुन सेवन की इच्छा से स्त्री को (साध्वी हो तो पुरुष को) विनती करे, हस्त कर्म करे मतलब हाथ से होनेवाली क्रियाए करे, जननेन्द्रिय का संचालन करे यावत् शुक्र (साध्वी हो तो रज) बाहर नीकाले । (उद्देशक-१ में सूत्र २ से १० तक वर्णन की हुई सभी क्रियाए यहाँ समज लेना) यह काम खुद करे, दुसरों से करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[४०३-४०५] जो साधु-मैथुन सेवन की इच्छा से स्त्री को (साध्वी-पुरुष को) वस्त्र रहित करे, वस्त्र रहित होने के लिए कहे-स्त्री (पुरुष) के साथ क्लेश झगड़े करे, क्रोधावेश से बोले, लेख यानि खत लिखे । यह काम करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[४०६-४१०] जो साधु मैथुन सेवन की इच्छा से स्त्री को (साध्वी-पुरुष को)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जननेन्द्रिय, गुह्य हिस्सा या छिद्र को औषधि विशेष से लेप करे, अचित्त ऐसे ठंड़े या गर्म पानी से एक बार या बार-बार प्रक्षालन करे, प्रक्षालन बाद एक या कईं बार किसी आलेपन विशेष से विलेपन करे, विलेपन के बाद तेल, घी, चरबी या मक्खन से अभ्यंगन या म्रक्षण करे, उसके बाद किसी गन्धदार द्रव्य से उसको धूप करे मतलब गन्धदार बनाए यह काम खुद करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदन करे तो प्रायश्चित् ।

[४११-४१५] जो साधु-साध्वी मैथुन की इच्छा से अखंड़ वस्त्र धारण करे यानि अपने पास रखे, अक्षत् (जो फटे हुए नहीं है), धोए हुए (सफेद-उज्ज्वल) या मलिन, रंगीन, रंगबेरंगी सुन्दर वस्त्र धारण करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[४१६-४६८] जो साधु-साध्वी मैथुन सेवन की इच्छा से एक बार या कईं बार अपने पाँव प्रमार्जन करे, करवाए या अनुमोदना करे (यह कार्य आरम्भ करके) एक गाँव से दुसरे गाँव जाते हुए अपने मस्तक को आच्छादन करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

(यहाँ ४१६ से ४६८ में कुल ५३ सूत्र है । उसका विवरण उद्देशक-३ के सूत्र १३३ से १८५ मुताबिक जान लाने । विशेष केवल इतना कि "पाँव प्रमार्जन से मस्तक आच्छादन" तक की सर्व क्रिया मैथुन सेवन की इच्छा से की गई हो तब "गुरु चौमासी" प्रायश्चित् आता है ऐसा जानना ।)

[४६९] जो साधु-साध्वी मैथुन सेवन की इच्छा से दुध, दहीं, मक्खन, घी, गुड़, मोरस, शक्कर या मिश्री या ऐसे अन्य किसी पौष्टिक आहार करे, करवाए या अनुमोदना करे।

इस प्रकार उद्देशक-६ में बताए अनुसार किसी भी एक या ज्यादा दोष का सेवन करे, करवाए या अनुमोदना करे तो वो साधु, साध्वी को चातुर्मासिक परिहारस्थान् अनुद्घातिक प्रायश्चित् आता है, जिसे "गुरु चौमासी" प्रायश्चित् नाम से भी पहचाना जाता है ।

उद्देशक-७

'निसीह' सूत्र के इस उद्देशक में ४७० से ५६० इस तरह कुल ९१ सूत्र है । जिसमें से किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले के 'चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अनुग्घातियं' नाम का प्रायश्चित् आता है । इस प्रायश्चित् का अपर नाम 'गुरु चौमासी' प्रायश्चित् है ।

[४७०-४८१] जो साधु (स्त्री के साथ) साध्वी (पुरुष के साथ) मैथुन सेवन की इच्छा से तृण, मुन (एक तरह का तृण), बेल, मदनपुष्प, मयुर आदि के पींच्छ, हाथी आदि के दाँत, शींग, शंख, हड्डियां, लकड़े, पान, फूल, फल, बीज हरित-वनस्पति की माला करे, लोहा, ताम्र, जसत्, सीसुं, रजत, सुवर्ण के किसी आकार विशेष, हार, अर्द्धहार, एकसरो हार, सोने के हाथी दाँत के रत्न का-कर्केतन के कड़ले, हाथ का आभरण, बाजुबँध, कुंड़ल, पट्टे, मुकुट, झुंमखे, सोने का सूत्र, मृगचर्म, ऊन का कंबल, कोयर देश का किसी वस्त्र विशेष या इस तीन में से किसी का आच्छादन, श्वेत, कृष्ण, नील, श्याम, महाश्याम उन चार में से किसी मृग के चमड़े का वस्त्र, ऊँट के चमड़े का वस्त्र या प्रावरण, शेर-चित्ता, बंदर के चमड़े का वस्त्र, श्लक्ष्ण या स्निग्ध कोमल वस्त्र, कपास वस्त्र पटल, चीनी वस्त्र, रेशमी वस्त्र, सोनेरी सोना जड़ित या सोने से चीतरामण किया हुआ वस्त्र, अलंकारयुक्त-अलंकार चित्रित या विविध अलंकार से भरा वस्त्र, संक्षेप में कहा जाए तो किसी भी तरह के हार, कड़े, आभूषण या वस्त्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनाए, रखे, पहने या उपभोग करे, दुसरों के पास यह सब कराए या ऐसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[४८२] जो साधु मैथुन की इच्छा से स्त्री की किसी इन्द्रिय, हृदयप्रदेश, उदर (नाभी युक्त) प्रदेश, स्तन का संचालन करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[४८३-५३५] जो साधु-साध्वी मैथुन की इच्छा से आपस के पाँव को एक वार या बार-बार प्रमार्जन करे-(इस सूत्र से आरम्भ करके) जो साधु-साध्वी एक गाँव से दुसरे गाँव जाते हुए मैथुन की इच्छा से एक दुजे के मस्तक को आवरण - आच्छादन करे ।

(यहाँ ४८३ से ५३५ ये ५३ सूत्र तीसरे उद्देशक में दिए सूत्र १३३ से १५४ के अनुसार है । इसलिए इस ५३- सूत्र का विवरण उद्देशक-३ अनुसार समज लेना । विशेष केवल इतना कि मैथुन की इच्छा से यह सर्व क्रिया ''आपस में की गई'' समजना ।)

[५३६-५४७] जो साधु मैथुन सेवन की इच्छा से किसी स्त्री को (साध्वी हो तो पुरुष को) सचित्त भूमि पर, जिसमें धुण नामके लकड़े को खानेवाले जीव विशेष का निवास हो, जीवाकुल पीठफलक-पट्टी हो, चींटी आदि जीवयुक्त स्थान, सचित्त बीजवाला स्थान, हरितकाययुक्त स्थान, सूक्ष्म हिमकणवाला स्थान, गर्दभ आकार कीटक का निवास हो, अनन्तकाय ऐसी फुग हो, गीली मिट्टी हो या जाली बनानेवाला खटमल, मकड़ा हो यानि कि धुण आदि रहते हो ऐसे स्थान में, धर्मशाला, बगीचा, गृहस्थ के घर या तापस-आश्रम में, अपनी गोदी में या बिस्तर में (संक्षेप में कहा जाए तो पृथ्वी-अप्-वनस्पति और त्रस काय की विराधना जहाँ मुमकीन है ऐसे उपर मुताबिक स्थान में) बिठाए या सुलाकर बगल बदले, अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप आहार करे, करवाए या यह क्रिया खुद करे, करवाए या अनुमोदना करे।

[५४८-५५०] जो साधु मैथुन की इच्छा से स्त्री की (साध्वी पुरुष की) किसी तरह की चिकित्सा करे, अमनोज्ञ ऐसे पुद्गल (अशुचिपुद्गल) शरीर में से बाहर नीकाले मतलब शरीर शुद्धि करे, मनोज्ञ पुद्गल शरीर पर फेंके यानि शरीर गन्धदार करे या शोभा बढ़ाए ऐसा वो खुद करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५५१-५५३] जो साधु (साध्वी) मैथुन सेवन की इच्छा से किसी पशु या पंछी के पाँव, पंख, पूँछ या सिर पकड़कर उसे हिलाए, संचालन करे, गुप्तांग मे लकड़ा, वांस की शलाखा, ऊँगली या धातु की शलाका का प्रवेश करवाके, हिलाए, संचालन करे, पशु-पंछी में स्त्री (या पुरुष) की कल्पना करके उसे आलिंगन करे, दृढ़ता से आलिंगन करे, सर्वत्र चुंबन करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५५४-५५९] जो साधु स्त्री के साथ (साध्वी-पुरुष के साथ) मैथुन सेवन की इच्छा से अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप चतुर्विध आहार, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण, सूत्रार्थ, (इन तीनो में से कोई भी) दे या ग्रहण करे, (खुद करे, अन्य से करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे) तो प्रायश्चित् ।

[५६०] जो साधु स्त्री के साथ (साध्वी पुरुष के साथ) मैथुन की इच्छा से किसी भी इन्द्रिय का आकार वनाए, तस्वीर बनाए या हाथ आदि से ऐसे काम की चेष्टा करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

इस प्रकार उद्देशक-७ में कहे अनुसार किसी भी एक या ज्यादा दोष का सेवन करे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करवाए या अनुमोदना करे तो वो साधु-साध्वी का ''चातुर्मासिक परिहार स्थान अनुद्घातिक'' नाम का प्रायश्चित् आता है जो ''गुरु चौमासी'' प्रायश्चित् नाम से जाना जाता है ।

उद्देशक-८

''निसीह'' सूत्र के इस उद्देशक में ५६१ से ५७९ इस प्रकार से कुल १९ सूत्र है। जिसमें से किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को ''चाउमासियं परिहारट्ठाणं अनुग्घातियं'' नाम का प्रायश्चित् आता है । जो 'गुरु चौमासी'' प्रायश्चित् भी कहा जाता है ।

[५६१-५६९] धर्मशाला, बगीचा, गृहस्थ के घर या तापस आश्रम में, उद्यान में, उद्यानगृह में, राजा के निर्गमन मार्ग में, निर्गमन मार्ग में रहे घर में, गाँव या शहर के किसी एक हिस्सा जिसे ''अट्टालिका'' कहते है वहाँ, ''अट्टालिका के किसी घर में, ''चरिका'' यानि कि किसी मार्ग विशेष, नगर द्वार में, नगर द्वार के अग्र हिस्से में, पानी में, पानी बहने के मार्ग में, पानी लाने के रास्ते में, पानी बहने के निकट प्रदेश के तट पर, जलाशय में, शून्य गृह, भग्नगृह, भग्नशाला या कोष्ठागार में, तृणशाला, तृणगृह, तुषाशाल, तृषगृह, भुसा-शाला या भुसागृह में, वाहनशाला, वाहनगृह, अश्वशाला या अश्वगृह में, हाटशाला-वखार, हाटगृह-दुकान परियाग शाला, परियागगृह, लोहादिशाला, लोहादिघर, गोशाला, गमाण, महाशाला या महागृह (इसमें से किसी भी स्थान में) किसी अकेले साधु अकेली स्त्री के साथ (अकेले साध्वी अकेले पुरुष के साथ) विचरे, स्वाध्याय करे, अशन आदि आहार करे, मल-मूत्र परठवे यानि स्थंड़िल भूमि जाए, निंदित-निष्ठुर-श्रमण को आचरने के योग्य नहीं ऐसा विकार-उत्पादक वार्तालाप करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५७०] जो साधु रात को या विकाल-संध्या के अवसर पर स्त्री समुदाय में या स्त्रीओ का संघट्ट हो रहा हो वहाँ या चारों दिशा में स्त्री हो तब अपरिमित (पाँच से ज्यादा सवाल के उतर दे या ज्यादा देर तक धर्मकथा करे) वक्त के लिए कथन (धर्मकथा आदि) करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५७१] जो साधु स्वगच्छ या परगच्छ सम्बन्धी साध्वी के साथ (साध्वी हो तो साधु के साथ) एक गाँव से दुसरे गाँव विचरते हुए, आगे जाने के बाद, पीछे चलते हुए जब उसका वियोग हो, तब उद्भ्रान्त मनवाले हो, फिक्र या शोक समुद्र में डूब जाए, ललाट पर हाथ रखकर बैठे, आर्त्तध्यान वाले हो और उस तरह से विहार करे या विहार में साथ चलते हुए स्वाध्याय करे, आहार करे, स्थंड़िलभूमि जाए, निंदित-निष्ठुर श्रमण को न करने लायक योग्य ऐसी विकारोत्पादक कथा करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५७२-५७४] जो साधु स्व परिचित्त या अपरिचित्त श्रावक या अन्य मतावलम्बी के साथ वसति में (उपाश्रय में) आधी या पूरी रात संवास करे यानि रहे, यह यहाँ है ऐसा मानकर बाहर जाए या बाहर से आए, या उसे रहने की मना न करे (तब वो गृहस्थ रात्रि भोजन, सचित्त संघट्टन, आरम्भ-समारम्भ करे वैसी संभावना होने से) प्रायश्चित् । (उसी तरह से साध्वीजी श्राविका या अन्य गृहस्थ स्त्री के साथ निवास करे, करवाए, अनुमोदना करे, उसे आश्रित करके बाहर आए-जाए, उस स्त्री को वहाँ रहने की मना न करे, न करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[५७५-५७९] जो साधु-साध्वी राजा, क्षत्रिय (ग्रामपति) या शुद्ध वंशवालों के राज्य आदि अभिषेक, गोष्ठी, पिंड़दान, इन्द्र, स्कन्द, रूद्र, मुकुन्द, भूत, जक्ष, नाग, स्तूप, चैत्य, रूक्ष, गिरि, दरी, अगड (हवाड़ा) तालाब, द्रह, नदी, सरोवर, सागर, खाण (आदि) महोत्सव या ऐसे अन्य तरह के अलग-अलग महामहोत्सव (संक्षेप में कहा जाए तो राजा आदि के कई तरह के महोत्सव) में जाकर अशन आदि चार प्रकार के आहार में से कुछ भी ग्रहण करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्, उसी तरह राजा आदि की भ्रमण शाला या भ्रमण गृह में घूमने जाए, अश्व, हस्ति, मंत्रणा, गुप्तकार्य, राझ या मैथुन की शाला में जाए और अशन आदि आहार ग्रहण करे, राजा आदि के यहां रखे गए दूध, दहीं, मक्खन, घी, तेल, गुड़, मोरस, शक्कर, मिश्री या ऐसे दुसरे किसी भी भोजन को ग्रहण करे, कौए आदि को फेंकने के खाने के बाद दुसरों को देने के - अनाथ को देने के - याचक को देने के - गरीबों को देने को भोजन को ग्रहण करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

इस तरह उद्देशक-८ में कहे हुए किसी भी दोष का खुद सेवन करे, अन्य से सेवन करवाए - वे दोष सेवन करनेवाले की अनुमोदना करे तो चातुर्मासिक परिहारस्थान अनुद्घातिक प्रायश्चित् आता है–जिसे ''गुरु चौमासी'' प्रायश्चित् भी कहते है ।

उद्देशक-९

''निसीह'' सूत्र के इस उद्देशक में ५८० से ६०७ यानि कि २८ सूत्र है । उसमें से किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को 'चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अनुग्घातियं' कि जो ''गुरू चौमासी'' के नाम से भी पहचाना जाता है वो प्रायश्चित् आता है ।

[५८०-५८४] जो साधु-साध्वी राजपिंड़ (राजा के वहाँ से अशन आदि) ग्रहण करे, खाए, राजा के अंतःपुर में जाए, अंतःपुर रक्षिका को ऐसा कहे कि 'हे आयुष्मति ! राजा अंतःपुर रक्षिका ! ' हमें राजा के अंतःपुर में गमन-आगमन करना कल्पता नहीं । तूं यह पात्र लेकर राजा के अंतःपुर में से अशन-पान-खादिम-स्वादिम नीकालकर ला और मुझे दे (इस तरह से अंतःपुर में से आहार मंगवाए), कोइ साधु-साध्वी शायद ऐसा न कहे, लेकिन अन्तःपुररक्षिका ऐसे बोले कि, ''हे आयुष्मान् श्रमण ! तुम्हें राजा के अंतःपुर में आवागमन कल्पता नहीं, तो तुम्हारा आहार ग्रहण करने का यह पात्र मुजे दो, मैं अंतःपुर में से अशन-आदि आहार तुम्हारे पास लाकर तुम्हें दू । ''यदि वो साधु-साध्वी उसका यह वचन स्वीकार करे, ऐसे कथन अनुसार किसी दोष का सेवन करे, करवाए या सेवन करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

[५८५] जो साधु-साध्वी, राजा, क्षत्रिय, शुद्धवंशीय क्रम से राज्य अभिषेक पानेवाला राजा आदि के द्वारपाल, पशु, नौकर, बली, क्रितक, अश्व, हाथी, मुसाफरी, दुर्भिक्ष, अकाल, भिक्षु, ग्लान, अतिवृष्टि पीड़ित, महमान इन सबके लिए तैयार किए गए या रखे गए भोजन को ग्रहण करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

[५८६] जो साधु-साध्वी राजा, क्षत्रिय, शुद्रवंशीय यह छह दोषो को जाने बिना, पुछे बिना, चार या पांच रात्रि गृहपति कुल में भिक्षार्थ हेतु प्रवेश या निष्क्रमण करे, वे स्थान है– कोष्ठागार, भाण्डागार, पाकशाला, खीरशाला, गंजशाला और रसोई गृह । तो प्रायश्चित् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[५८७-५८८] जो साधु-साध्वी राजा आदि के नगर प्रवेश या क्रीड़ा आदि महोत्सव के निर्गमन अवसर पर सर्वालंकार-विभूषित रानी आदि को देखने की इच्छा से एक कदम भी चलने के लिए केवल सोचे, सोच करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५८९] जो साधु-साध्वी राजा आदि के मृगया (शिकार), मछलियाँ पकड़ना, शरीर (दुसरा मतलब मुँग आदि की फली) खाने के लिए, जिस क्षेत्र में जाते हो तब रास्ते में खाने के लिए लिया गया आहार ग्रहण करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५९०] जो साधु-साध्वी राजा आदि के अन्य अशन आदि आहार में से किसी भी एक शरीर पुष्टिकारक, मनचाही चीज देखकर उसकी जो पर्षदा खड़ी न हुई हो (यानि कि पूरी न हुई हो), एक भी आदमी वहाँ से न गुजरा हो, सभी वहाँ से चले गए न हो उसके अशन आदि आहार ग्रहण करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्, दुसरी बात ये भी जानना कि राजा आदि कहाँ निवास करते है । उस संबंध से जो साधु-साध्वी (जहाँ राजा का निवास हो), उसके पास ही का घर, प्रदेश, पास की शुद्ध भूमि में विहार, स्वाध्याय, आहार, मल-मूत्र, परिष्ठापन, सत्पुरुष आचरण न करे वैसा कृत्य, अश्लिल कृत्य, साधु पुरुष को योग्य न हो वैसी कथा कहे, इसमें से किसी आचरण खुद करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[५९१-५९६] जो साधु-साध्वी राजा आदि को दुसरे राजा आदि पर विजय पाने के लिए जाता हो, वापस आता हो, वापस आने के वक्त अशन, पान, खादिम स्वादिम ग्रहण करने जाए-भेजे या जानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५९७] जो साधु-साध्वी राजा आदि के महाभिषेक के अवसर पर वहाँ प्रवेश करे या बाहर नीकले, वैसा दुसरों के पास करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५९८] राजा, ग्रामपति, शुद्धवंशीय, कुल परम्परा से अभिषेक पाए हुए (राजा आदि) के चंपा, मथुरा, वाराणसी, सावत्थी, साकेत, कांपिल्य, कौशाम्बी, मिथिला, हस्तिनापुर, राजगृही ये दस बड़ी राजधानी) कहलाती है । मानी जाती है । प्रसिद्ध है । वहाँ एक महिने में दो-तीन बार जो साधु-साध्वी जाए या वहाँ से बाहर नीकले, दुसरों को वैसा करने के लिए प्रेरित करे या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[५९९-६०७] जो साधु-साध्वी, राजा आदि के अशन आदि आहार कि जो दुसरों के निमित्त से जैसे कि, क्षत्रिय, राजा, खंड़िया राजा, राजसेवक, राजवंशज के लिए किया हो उसे ग्रहण करे, (उसी तरह से)..राजा आदि के नर्तक, कच्छुक, (रज्जुनर्तक), जलनर्तक, मल्ल, भाँड़, कथाकार, कुदक, यशोगाथक, खेलक, छत्रधारक, अश्व, हस्ति, पाड़ा, बैल, शेर, बकरे, मृग, कुत्ते, शुकर, सूवर, चीड़िया, मुर्घे, बंदर, तितर, वर्तक, लावक, चील्ल, हंस, मोर, तोता (आदि) को पोषने के लिए बनाया गया, अश्व या हस्ति पुरुषक अश्व या हस्ति के परिमार्जक, अश्व या हस्ति आरोहक सचिव आदि, पगचंपी करनेवाला, मालीश कर्ता, उद्वर्तक, मार्जनकर्ता, मंड़क, छत्रधारक, चामर धारक, आभरण भाँड़ के धारक, मंजुषा धारक, दीपिका धारक, धनुर्धारक, शस्त्रधारक, भालाधारक, अंकुशधारक, खसी किए गए अन्तःपुररक्षक, द्वारपाल, दंड़रक्षक, कुब्ज, किरातिय, वामन, वक्रकायी, बर्बर, बकुशिल, यावनिक, पल्हविक, इसिनिक, लासिक, लकुशिक, सिंहाली, पुलिन्दी, मुरन्ड़ी, पक्कणी, भिल्ल, पारसी (संक्षेप में कहा जाए तो किरात से लेकर पारस देश में पेदा होनेवाले यह सभी राजसेवक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर कहे अनुसार किसी के भी लिए तैयार किए गए अशन, पान, खादिम, स्वादिम को किसी साधु-साध्वी ग्रहण करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

इस प्रकार उद्देशक-९ में बताए अनुसार किसी कृत्य करे-करवाए-करनेवाले की अनुमोदना करे तो 'चातुर्मासिक परिहारस्थान अनुद्घातिक' प्रायश्चित् आता है । जिसे गुरु चौमासी प्रायश्चित् भी कहते है ।

उद्देशक-१०

''निसीह'' सूत्र के इस उदेशक में ६०८ से ६५४ इस तरह से ४७ सूत्र है । उसमें से किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को 'चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अनुग्घातियं प्रायश्चित् आता है ।

[६०८-६११] जो साधु-साध्वी आचार्य आदि रत्नाधिक को अति कठिन, रुखा, कर्कश, दोनों तरह के वचन बोले, बुलवाए, बोलनेवाले की अनुमोदना करे तो, अन्य किसी तरह से आशातना करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६१२-६१३] जो साधु-साध्वी अनन्तकाययुक्त आहार करे, आधा कर्म (साधु के लिए किया गया आहार) खाए, खिलाए, खानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६१४-११५] जो साधु-साध्वी वर्तमान या भावि के सम्बन्धी निमित्त कहे, कहलाए या कहनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६१६-६१७] जो साधु-साध्वी (दुसरों के) शिष्य (शिष्या) का अपहरण करे, उसकी बुद्धि में व्यामोह पेदा करे यानि भ्रमित करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६१८-६१९] जो साधु-आचार्य या उपाध्याय (साध्वी आचार्य, उपाध्याय या प्रवर्तिनी का अपहरण करे (अन्य समुदाय या गच्छ में ले जाए), उनकी बुद्धि में व्यामोह-भ्रमणा पेदा करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६२०] जो साधु-साध्वी बहिर्वासि (अन्य समुदाय या गच्छ में से आए हुए प्राघुर्णक) आए तब उनके आगमन की कारण जाने बिना तीन रात से ज्यादा अपनी वसति (उपाश्रय) में निवास दे, दिलाए या देनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६२१] जो साधु-साध्वी अन्य अनुपशान्त कषायी या उसके बारे में प्रायश्चित् न करनेवाले को उसके क्लेश शान्त करने के लिए या प्रायश्चित् करना या न करने के बारे में कुछ पूछकर या बिना पूछे जैसे कि उद्घातिक को अनुद्घातिक कहे...प्रायश्चित्त देवें, अनुद्घातिक को उद्घातिक कहे,...प्रायश्चित्त देवें तो प्रायश्चित् ।

[६२२-६२५] जो साधु-साध्वी प्रायश्चित् की विपरीत प्ररूपणा करे या विपरीत प्रायश्चित् दान करे जैसे की उद्घातिक को अनुद्घातिक कहे..देवे; अनुद्घातिक को उद्घातिक कहे...देवें तो प्रायश्चित् ।

[६२६-६३७] जो साधु-साध्वी, कोइ साधु-साध्वी उद्घातिक, अनुद्घातिक या उभय प्रकार से है । यानि कि वो उद्घातिक या अनुद्घातिक प्रायश्चित् वहन कर रहे है वो सुनने, जानने के बाद भी, उसका संकल्प और आशय सुनने-जानने के बाद भी उसके साथ आहार करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६३८-६४१] जो साधु-साध्वी सूर्य नीकलने के बाद और अस्त होने के पहले आहार-विहार आदि क्रिया करने के संकल्पवाला हो, धृति और बल से समर्थ हो, या न हो तो भी सूर्योदय या सूर्यास्त हुआ माने, संशयवाला बने, संशयित हो तब भोजन करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् और फिर यदि ऐसा माने कि सूर्य नीकला ही नहीं या अस्त हो गया है तब मुँह में - हाथ में या पात्र में जो अशन आदि विद्यमान हो उसका त्याग करे, मुख, हाथ, पात्रा की शुद्धि करे तो अशन आदि परठने के बाद भी विराधक नहीं लेकिन यदि आज्ञा उल्लंघन करके खाए-खिलाए या खानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६४२] जो साधु-साध्वी रात को या शाम को पानी या भोजन का ओड़कार आए यानि उबाल आए तब उसे मुँह से बाहर नीकालने की बजाय गले में उतार दे, नीगलने का कहे, नीगलनेवाले की अनुमोदना करे तो (रात्रि भोजन दोष लगने से) प्रायश्चित् ।

[६४३-६४६] जो साधु-साध्वी ग्लान-बिमार हो ऐसे सुने, जानने के बाद भी उस ग्लान की स्थिति की गवेषणा न करे, अन्य मार्ग या विपरीत मार्ग में चले जाए, वैयावच्च करने के लिए उद्यत होने के बाद भी ग्लान का योग्य आहार, अनुकूल वस्तु विशेष न मिले तब दुसरे साधु, साध्वी, आचार्य आदि को न कहे, खुद कोशीश करने के बाद भी अल्प या अपर्याप्त चीज मिले तब इतनी अल्प चीज से उस ग्लान को क्या होगा ''ऐसा पश्चाताप न करे, न करवाए या न करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६४७-६४८] जो साधु-साध्वी प्रथम प्रावृट्काल यानि कि आषाढ़-श्रावण बीच में..वर्षावास में निवास करने के बाद एक गाँव से दुसरे गाँव विहार करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६४९-६५०] जो साधु-साध्वी अपर्युषणा में पर्युषणा करे, पर्युषणा में अपर्युषणा करे, पर्युषणा में पर्युषणा न करे, (अर्थात् नियत दिन में संवत्सरी न करे) न करवाए, न करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६५१-६५३] जो साधु-साध्वी पर्युषण काल में (संवत्सरी प्रतिक्रमण के वक्त) गाय के रोम जितने भी बाल धारण करे, रखे, उस दिन थोड़ा भी आहार करे, (कुछ भी खाए-पीए), अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ पर्युषणा करे (पर्युषणाकरण सुनाए) करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६५४] जो साधु-साध्वी पहले समवसरण में यानि कि वर्षावास में (चातुर्मास में) पात्र या वस्त्र आदि ग्रहण करे-करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

इस प्रकार उद्देशक-१०-में कहे हुए कोई कृत्य करे, करवाए या अनुमोदना करे तो चातुर्मासिक परिहारस्थान अनुद्घातिक अर्थात् ''गुरु चौमासी प्रायश्चित्'' आता है ।

उद्देशक-१०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-११

''निसीह'' सूत्र के इस उद्देशक में ६५५ से ७४६ यानि ९२ सूत्र है । उसमें से किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करने से 'चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अनुग्घातियं प्रायश्चित् ।

[६५५-६६०] जो साधु-साध्वी लोहा, ताम्र, जसत्, सीसुं, कासुं, चाँदी, सोना,

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

जात्यरुपा, हीरे, मणि, मुक्ता, काँच, दाँत, शींग, चमड़ा, पत्थर (पानी रह शके ऐसे) मोटे वस्त्र, स्फटिक, शंख, वज्र (आदि) के पात्रा बनाए, धारण करे, उपभोग करे, लोहा आदि का पात्र बँधन करे (बनाए), धारण करे, उपभोग करे, अन्य से यह काम करवाए या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६६१-६६२] जो साधु-साध्वी अर्ध योजन से ज्यादा दूर पात्र ग्रहण करने की उम्मीद से जाए या विघ्नवाला मार्ग या अन्य किसी कारण से उतनी दूर से लाकर पात्र दे तब ग्रहण करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६६३-६६४] जो साधु-साध्वी धर्म की निंदा (अवर्णवाद) या अधर्म की प्रशंसा (गुणगान) करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[६६५-७१७] जो साधु-साध्वी अन्य तीर्थिक या गृहस्थ के पाँव को एक या अनेकबार प्रमार्जन करे, करवाए, अनुमोदना करे, (इस सूत्र से आरम्भ करके) एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हुए यानि कि विचरण करते हुए जो साधु-साध्वी अन्य तीर्थिक या गृहस्थ के मस्तक को आवरण करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

(यहाँ ६६५ से ७१७ कुल-५३ सूत्र है । जो उद्देशक-३-के सूत्र १३३ से १८५ अनुसार जान लेना, फर्क केवल इतना कि इस ५३ दोष का सेवन अन्य तीर्थिक या गृहस्थ को लेकर किया, करवाया या अनुमोदन किया हो ।)

[७१८-७२३] जो साधु-साध्वी खुद को, दुसरो को डराए, विस्मीत करे यानि आश्चर्य पमाडे, विपरीत रूप से दिखाए, या फिर जीव को अजीव या अजीव को जीव कहे, शाम को सुबह या सुबह को शाम कहे, इस दोष का खुद सेवन करे, दुसरों से करवाए या सेवन करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७२४] जो साधु-साध्वी जिनप्रणित चीज से विपरीत चीज की प्रशंसा करे, करवाए-अनुमोदना करे । जैसे कि सामने किसी अन्य धर्मी हो तो उसके धर्म की प्रशंसा करे आदि तो प्रायश्चित्त ।

[७२५] जो साधु-साध्वी दो विरुद्ध राज्य के बीच पुनः पुनः गमनागमन करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७२६-७३३] जो साधु-साध्वी दिन में भोजन करने की निंदा करे, रात्रि भोजन की प्रशंसा करे, दिन को लाया गया अशन-पान, खादिम-स्वादिम रूप आहार दुसरे दिन करे, दिन में लाया गया अशन-आदि रात को खाए, रात को (सूर्योदय से पहले) लाया गया अशन आदि सुबह में खाए, दिन में लाया गया अशन-आदि रात को खाए, आगाढ़ कारण बिना अशन-आदि आहार रात को संस्थापित करे यानि कि रख ले, इस तरह रखा गया अशन आदि आहार में से त्त्वचा-प्रमाण, भस्म प्रमाण या बिन्दु प्रमाण आहार खाए, इसमें से कोइ दोष खुद करे, अन्य से करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

[७३४] जो साधु-साध्वी, जहाँ भोजन में पहले माँस-मच्छी दी जाती हो फिर दुसरा भोजन दिया जाता हो, जहाँ माँस या मच्छी पकाए जाते हो वो स्थान, भोजन गृह में से जो लाया जाता हो या दुसरी किसी जगह ले जाते हो, विवाह आदि के लिए जो भोजन तैयार होता हो, मृत भोजन, या ऐसे तरीके का अन्य भोजन एक जगह से दूसरी जगह ले जा रहे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो, ऐसे भोजन की उम्मीद से या तृषा से यानि भोजन की अभिलाषा से उस रात को अन्यत्र निवास करे यानि कि शय्यातर की बजाय दुसरी जगह रात व्यतीत करे, करवाए या अनुमोदन करे तो प्रायश्चित् ।

[७३५] जो साधु-साध्वी नैवेध, पिंड़ यानि कि देव व्यंतर यक्ष आदि के लिए रखा गया भोजन खाए, खिलाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७३६-७३७] जो साधु-साध्वी स्वच्छंद-आचारी की प्रशंसा करे, वंदन नमस्कार करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७३८-७३९] जो साधु-साध्वी पहचानवाले (स्वजन आदि) और अनजान (स्वजन के सिवा) ऐसे अनुचित्त-दीक्षा की योग्यता न हो ऐसे उपासक (श्रावक) या अनुपासक (श्रावक से अन्य) को प्रवज्या-दीक्षा दे, उपस्थापना (वर्तमान काल में बड़ी दीक्षा) दे, दिलाए, देनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७४०] जो साधु-साध्वी अनुचित्त यानि कि असमर्थ के पास वैयावच्च-सेवा ले, दिलाए, लेनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७४१-७४४] जो साधु-अचेलक या सचेलक हो और अचेलक या सचेलक साथ निवास करे यानि स्थविर कल्पी अन्य सामाचारीवाले स्थविरकल्पी या जिनकल्पी साथ रहे और जो जिनकल्पी हो और स्थविरकल्पी या जिनकल्पी साथ रहे (अथवा अचेलक या अचेलक साधु या अचेलक साध्वी साथ निवास करे) करवाए-करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[७४५] जो साधु-साध्वी रात को स्थापित, पिपर, पिपर चूर्ण, सूँठ, सूँठचूर्ण, मिट्टी, नमक, सींधालु आदि चीज का आहार करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७४६] जो साधु-साध्वी पर्वत, उषरभूमि, नदी, गिरि आदि के शिखर या पेड़ की टोच पर गिरनेवाला पानी, आग में सीधे या कूदनेवाले, विषभक्षण, शस्त्रपात, फाँसी, विषय वश दुःख से तद्भव-उसी गति को पाने के मतलब से अन्तःशल्य, पेड़ की डाली से लटककर (गीधड़ आदि से भक्षण ऐसा) गृद्धस्पृष्ट मरण पानेवाले या ऐसे तरह के अन्य किसी भी बाल-मरण प्राप्त करनेवाले की प्रशंसा करे, करवाए या अनुमोदन करे ।

इस प्रकार उद्देशक-११-में बताए हुए कोइ भी कृत्य खुद करे, दुसरों से करवाए या ऐसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो चातुर्मासिक परिहार स्थान अनुद्घातिक प्रायश्चित् यानि "गुरु चौमासी" प्रायश्चित् आता है ।

उद्देशक-१२

"निसीह" सूत्र के इस उदेशक में ७४७ से ७८८ यानि कि कुल ४२ सूत्र है । उसमें से किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को 'चाउम्मासियं' परिहारट्ठाणं उग्घातियं नाम का प्रायश्चित् आता है जिसे लघु चौमासी प्रायश्चित् कहते है ।

[७४७-७४८] जो साधु-साध्वी करुणा बुद्धि से किसी भी त्रस जाति के जानवर को तृण, मुंज, काष्ठ, चर्म-नेतर, सूत या धागे के बँधन से बाँधे, बँधाए या अनुमोदन करे, बँधनमुक्त करे, करवाए या अनुमोदन करे तो प्रायश्चित् ।

[७४९] जो साधु-साध्वी बार-बार प्रत्याख्यान-नियम भंग करे, करवाए, अनुमोदना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करे तो प्रायश्चित् ।

[७५०] जो साधु-साध्वी प्रत्येककाय-सचित्त वनस्पति युक्त आहार करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७५१] जो साधु-साध्वी रोमयुक्त चमड़ा धारण करे अर्थात् पास रखे या उस पर बैठे, बिठाए, बैठनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७५२] जो साधु-साध्वी घास, तृण, शण, नेतर या दुसरों के वस्त्र से आच्छादित ऐसे पीठ पर बैठे, बिठाए, बैठनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७५३] जो साधु-साध्वी का (साध्वी साधुका) ओढ़ने का कपड़ा अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पास सीलवाए, दुसरों को सीने के लिए कहे, सीनेवाले की अनुमोदना करे ।

[७५४] जो साधु-साध्वी पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय या वनस्पति काय की अल्पमात्र भी विराधना करे, करवाए अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७५५] जो साधु-साध्वी सचित्त पेड़ पर चड़े, चड़ाए या चड़नेवाले की अनुमोदना करे।

[७५६-७५९] जो साधु-साध्वी गृहस्थ के बरतन में भोजन करे, उसके वस्त्र पहने, आसन आदि पर बैठे, चिकित्सा करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७६०-७६१] जो साधु-साध्वी सचित जल से धोने समान पूर्वकर्म करे या गृहस्थ या अन्यतीर्थिक से हंमेशा गीले रहनेवाले या गीले धारण, कड़छी, मापी आदि से दिए गए अशन, पान, खादिम, स्वादिम, ग्रहण करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[७६२-७७४] जो साधु-साध्वी चक्षुदर्शन् अर्थात् देखने की अभिलाषा से यहां कही गई दर्शनीय जगह देखने का सोचे या संकल्प करे, करवाए या अनुमोदना करे ।

लकड़े का कोतरकाम, तस्वीरे, वस्त्रकर्म, लेपनकर्म, दाँत की वस्तु वस्तु, मणि की चीज, पत्थरकाम, गुँथी-अंगूठी या कुछ भी भरके बनाई चीज, संयोजना से निर्मित् पत्ते निर्मित या कोरणी, गढ़, तख्ता, छोटे या बड़े जलाशय, नहेर, झील, वाव, छोटा या बड़ा तालाब, वावडी, सरोव, जल श्रेणी या एकदुजे में जानेवाली जलधारा, वाटिका, जंगल, बागीचा, वन, वनसमूह या पर्वतसमूह, गाँव, नगर, निगम, खेड़ा, कसबा, पल्ली, द्रोणमुख, पाटण, खाई, धान्य क्षेत्र या संनिवेस, गाँव, नगर यावत् संनिवेश का किसी महोत्सव, मेला विशेष, गाँव, नगर यावत् संनिवेश का घात या विनाश, गाँव, नगर यावत् संनिवेश का पथ या मार्ग, गाँव, नगर यावत् संनिवेश का दाह, अश्व, हाथी, ऊँट, गौ, पाड़ा या सूवर का शिक्षण या क्रिड़ास्थल, अश्व, हाथी, ऊँट, गौ, पाड़ा या सुवर के युद्ध, गौ, घोड़े या हाथी के बड़े समुदायवाले स्थान, अभिषेक, कथा, मान-उन्मान, प्रमाण, बड़े आहत् (ठुमके) नृत्य, गीत, वाजिंत्र, उसके तल-ताल, त्रुटित घन मृदंग आदि के शब्द सुनाई देते हो ऐसे स्थान, राष्ट्रविप्लव, राष्ट्र उपद्रव, आपस में अंतर्देषजनित उपद्रव वंश परम्परागत बैर से पेदा होनेवाला क्लेश, महायुद्ध, महासंग्राम, झगड़े, जोरो से बोलना आदि स्थान, कई तरह के महोत्सव, ईन्द्रमहोत्सव, स्त्री-पुरुष, स्थविर, युवान, किशोर आदि अलंकृत या निरलंकृत हो, गाते, बजाते, नाचते, हँसते, खेलते, मोह उत्पादक चेष्टा करते हो, विपुल अशन आदि का आपस में आदान-प्रदान होता हो, खाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खाया जाता हो ऐसे स्थल, इन सभी स्थान को देखने की इच्छा रखे ।

[७७५] जो साधु-साध्वी इहलौकिक या पारलौकिक, पहले देखे हुए या न देखे हुए, सुने हुए या न सुने हुए, जाने हुए या न जाने हुए ऐसे रूप के लिए आसक्त बने, रागवाले बने, गृद्धिवाले बने, अतिशय रक्त बने, किसी को आसक्त आदि करे, आसक्त आदि होनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७७६] जो साधु-साध्वी पहली पोरिसी में लाया गया अशन, पान, खादिम, स्वादिम अन्तिम पोरसी तक स्थापन करे, रखे यानि चौथी पोरिसी में उपभोग करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७७७] जो साधु-साध्वी अर्ध योजन यानि दो कोष दूर से लाया गया अशन, पान, खादिम, स्वादिम समान आहार करे यानि दो कोष की क्षेत्र मर्यादा का उल्लंघन करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७७८-७८५] जो साधु-साध्वी गोबर या विलेपन द्रव्य लाकर दुसरे दिन, दिन में लाकर रात को, रात को लाकर दिन में या रात को लाकर रात में, शरीर पर लगे घा, व्रण आदि एक या बार-बार लिंपन करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७८६-७८७] जो साधु-साध्वी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पास उपधि वहन करवाए और उसकी निश्रा में रहे (इन सबको) अशन-आदि आहार (दुसरों को कहकर) दिलाए, दुसरों को वैसा करने के लिए प्रेरित करे, वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायिश्चत् ।

[७८८] जो साधु-साध्वी गंगा, जमुना, सरयु, ऐरावती, मही उन पाँच महार्णव या महानदी महिने में दो या तीन बार उत्तरकर या तैरकर पार करे, करवाए या अनुमोदना करे ।

इस प्रकार उद्देशक-१२-में बताए मुताबिक किसी भी कृत्य खुद करे-दुसरों के पास करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो चातुर्मासिक परिहारस्थान उद्घातिक अर्थात् लघु चौमासी प्रायश्चित् आता है ।

उद्देशक-१३

"निसीह" सूत्र के इस उद्देशक में ७८९ से ८६२ यानि कि कुल ७४ सूत्र है । इसमें बताने के अनुसार किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को 'चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं प्रायश्चित् आता है ।

[७८९-७९५] जो साधु-साध्वी सचित्त, स्निग्ध यानि कि सचित जल से कुछ गीलापन, सचित्त रज, सचित्त मिट्टी, सूक्ष्म त्रस जीव से युक्त ऐसी पृथ्वी, शीला, या टेकरी पर खड़ा रहे, बैठे या सोए, ऐसा दुसरों के पास करवाए या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[७९६-७९९] जो साधु-साध्वी यहां बताए अनुसार स्थान पर बैठे, खड़े रहे, बैठे या स्वाध्याय करे । अन्य को वैसा करने के लिए प्रेरित करे या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

जहाँ धुणा का निवास हो, जहाँ धुणा रहते हो ऐसे या अंड़-प्राण, सचित्त, बीज सचित्त वनस्पति, हिम-सचित्त, जलयुक्त लकड़े हो, अनन्तकाय कीटक, मिट्टी, कीचड़, मकड़े

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की जाल युक्त स्थान हो, अच्छी तरह से बँधा न हो, ठीक न रखा हो, अस्थिर हो या चलायमान हो ऐसे स्तम्भ, घर, ऊपर की देहली, ऊखलभूमि, स्नानपीठ, तृण या पत्थर की भींत, शिला, मीट्टीपिण्ड, मंच, लकडे आदि के बने स्कंध, मंच, मांड़वी या माला, जीर्ण ऐसे छोटे या बड़े घर, इस सर्व स्थान पर बैठे, सोए-खड़ा रहे या स्वाध्याय करे ।

[८००-८०४] जो साधु-साध्वी अन्य तीर्थिक या गृहस्थ को शिल्पश्लोक, पासा, निमित्त या सामुदिक शास्त्र, काव्य-कला, भाटाइ-शीखलाए, सरोष, कठिन, दोनों तरह के वचन कहे, या अन्यतीर्थिक की आशातना करे, दुसरों के पास यह काम करवाए या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[८०५-८१७] जो साधु-साध्वी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ नीचे बताए अनुसार कार्य करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

कौतुककर्म, भूतिकर्म, देवआह्वान पूर्वक प्रश्न पूछने, पुनः प्रश्न करना, शुभाशुभ फल समान उत्तर कहना, प्रति उत्तर कहना, अतित, वर्तमान या आगामी काल सम्बन्धी निमित्त-ज्योतिष कथन करना, लक्षण ज्योतिष या स्वप्न फल कहना, विद्या-मंत्र या तंत्र प्रयोग की विधि बताना, मार्ग भूले हुए, मार्ग न जाननेवाले, अन्य मार्ग पर जाते हो उसे मार्ग पर लाए, टूँके रास्ते दिखाए, दोनों रास्ते दिखाए, पाषाण-रस या मिट्टी युक्त धातु दिखाए, निधि दिखाए तो प्रायश्चित् ।

[८१८-८२५] जो साधु-साध्वी पात्र, दर्पण, तलवार, मणी, सरोवर आदि का पानी, प्रवाही गुड़, तैल, मधु, घी, दारू या चरबी में अपना मुँह देखे, दुसरों को देखने के लिए कहे, मुँह देखनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[८३०-८४७] जो साधु-साध्वी पासत्था, अवसन्न, कुशील, नितीय, संसक्त, काथिक, प्राश्निक, मामक, सांप्रसारिक यानि कि गृहस्थ को वंदन करे, प्रशंसा करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

पासत्था-ज्ञान, दर्शन, चारित्र के निकट रहके भी उद्यम न करे । कुशील-निंदित कर्म करे, अवसन्न सामाचारी उलट-सूलट करे, संसक्त, चारित्र विराधना दोषयुक्त, अहाछंद, स्वच्छंद, नितिय, नित्यपिंड़ खानेवाला, काथिक-अशन आदि के लिए या प्रशंसा के लिए कथा करे, प्राश्निक-सावद्य प्रश्न करे, मामग-वस्त्र-पात्र आदि मेरा-मेरा करे, सांप्रसारिक-गृहस्थ ।

[८४८-८६२] जो साधु-साध्वी नीचे बताने के अनुसार भोजन करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

धात्रि, दूति, निमित्त, आजीविका, वनीपक, चिकित्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ, विद्या, मंत्र, योग, चूर्ण या अंर्तधान इसमें से किसी भी पिंड़ यानि भोजन खाए, खिलाए या खानेवाले की अनुमोदना करे ।

धात्री-गृहस्थ के बच्चे के साथ खेलकर गोचरी करे । दूती, गृहस्थ के संदेशा की आप-ले करे, निमित्त-शुभाशुभ कथन करे, आजीविक, जीवन निर्वाह के लिए जाति-कुल तारीख करे, वनीपक दीनतापूर्वक याचना करे, चिकित्सा-रोग आदि के लिए औषध दे, विद्या, स्त्री देवता अधिष्ठित साधना, मंत्र, पुरुष देवता अधिष्ठित साधना, योग-वशीकरण आदि प्रयोग, चूर्ण, कई चीज मिश्रित चूर्ण प्रयोग, इसमें से किसी दोष का सेवन करके आहार लाए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार उद्देशक-१२ में बताए अनुसार किसी भी कृत्य खुद करे, अन्य के पास करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो 'चातुर्मासिक परिहारस्थान प्रायश्चित् मतलब लघुचौमासी प्रायश्चित् आता है ।

उद्देशक-१४

''निसीह'' सूत्र के इस उद्देशक में ८६३ से ९०४ यानि कि कुल ४१ सूत्र है । उसमें कहे अनुसार किसी भी दोष का त्रिविध से सेवन करनेवाले को 'चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं नाम का प्रायश्चित् आता है ।

[८६३-८६६] जो साधु-साध्वी नीचे कहने के अनुसार पात्र खुद ग्रहण करे, दुसरों के पास ग्रहण करवाए या उस तरह से ग्रहण करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

खुद खरीद करे, करवाए या कोई खरीदकर लाए तो ले, उधार ले, दिलवाए, सामने से उधार दिया हुआ ग्रहण करे, पात्र एक दुजे से बदले, बदलाए, कोई बदला हुआ लाए तो रखे, छीनकर लाए, अनेक मालिक हो वैसा पात्र सबकी आज्ञा बिना ले, सामने से लाया गया पात्र स्वीकार करे ।

[८६७-८६९] जो साधु-साध्वी अधिक पात्र हो तो सामान्य से या विशेष से गणि को पूछे बिना या निमंत्रित किए बिना अपनी ईच्छा अनुसार दुसरों को वितरण करे, हाथ, पाँव, कान, नाक, होठ जिसके छेदन न हुए हो ऐसे विकलांग ऐसे क्षुल्लक आदि या कमजोर को न दे, न दिलाए या न देनेवाले की अनुमोदना करे ।

[८७०-८७१] जो साधु-साध्वी खंड़ित, निर्बल, लम्बे अरसे तक न टिक शके ऐसे, न रखने के योग्य पात्र को धारण करे, अखंड़ित, दृढ़, टिकाऊ और रखने में योग्य पात्र को धारण न करे, न करवाए, न करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[८७२-८७३] जो साधु-साध्वी शोभायमान या सुन्दर पात्र को अशोभनीय करे और अशोभन पात्र को शोभायमान या सुन्दर करे-करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[८७४-८८१] जो साधु-साध्वी मुझे नया पात्र नहीं मिलता ऐसा करके मिले हुए पात्र को या मेरा पात्र बदबूँवाला है ऐसा करके-सोचकर अचित्त ऐसे ठंड़े या गर्म पानी से एक या ज्यादा बार धोए, काफी दिन तक पानी में डूबोकर रखे, कल्क, लोध्र, चूर्ण, वर्ण आदि उद्वर्तन चूर्ण का लेप करे या काफी दिन तक लेपवाला करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[८८२-८९३] जो साधु-साध्वी सचित्त पृथ्वी पर पात्र को एक या बार बार तपाए या सूखाए, वहाँ से आरम्भ करके जो साधु-साध्वी, ठीक तरह से न बाँधे हुए, ठीक न किए हुए, अस्थिर या चलायमान ऐसे लकड़े के स्कन्ध, मंच, खटिया के आकार का मांची, मंड़प, मजला, जीर्ण ऐसा छोटा या बड़ा मकान उस पर पात्रा तपाए या सूखाए, दुसरों को सूखाने के लिए कहे उस तरह से सूखानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

इस ८८२ से ८९३ ये ११ सूत्र उद्देशक १३ के सूत्र ७८९ से ७९९ अनुसार है। इसलिए यह ११ सूत्र का विस्तार उद्देशक १३ के सूत्र अनुसार जान ले - समज लेना । फर्क इतना कि यहाँ उस जगह पर पात्र तपाए ऐसा समजना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[८९४-८९८] जो साधु-साध्वी पात्र में पड़े सचित्त पृथ्वि, अप् या तेऊकाय को, कंद, मूल, पात्र फल, पुष्प या बीज को खुद बाहर नीकाले, दुसरों से नीकलवाए, कोई नीकालकर सामने से दे उसका स्वीकार करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[८९९] जो साधु-साध्वी पात्र पर कोरणी करे-करवाए या कोतर काम किया गया पात्र कोई सामने से दे तो ग्रहण करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[९००-९०१] जो साधु-साध्वी जानेमाने या अनजान श्रावक या इस श्रावक के पास गाँव में या गाँव के रास्ते में, सभा में से खड़ा करके जोर-जोर से पात्र की याचना करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[९०२-९०३] जो साधु-साध्वी पात्र का लाभ होगा वैसी इच्छा से ऋतुबद्ध यानि शर्दी, गर्मी या मासकल्प या वर्षावास मतलब चातुर्मास निवास करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[९०४] इस प्रकार उद्देशक-१४ में कहने के अनुसार किसी भी दोष का खुद सेवन करे, दुसरों के पास सेवन करवाए या दोष सेवन करनेवाले की अनुमोदना करे तो चातुर्मासिक परिहारस्थान उद्घातिक नाम का प्रायश्चित् आता है जिसे लघु चौमासी प्रायश्चित् कहते है ।

उद्देशक-१५

"निसीह" सूत्र के इस उद्देशक में ९०५ से १०५८ इस तरह से कुल १५४ सूत्र है। जिसमें से किसी भी दोष का त्रिविध से सेवन करनेवाले को 'चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं नाम का प्रायश्चित् आता है ।

[९०५-९०८] जो साधु-साध्वी दुसरे साधु-साध्वी को आक्रोशयुक्त, कठिन, दोनों तरह के वचन कहे या अन्य किसी तरह की अति आशातना करे, करवाए-अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[९०९-९१६] जो साधु-साध्वी सचित्त आम खाए, या चूसे, सचित्त आम, उसकी पेशी, टुकड़े, छिलके के भीतर का हिस्सा खाए, या चूसे, सचित्त का संघट्टा होता हो वहाँ रहा आम का पेड़ या उसकी पेशी, टुकड़े, छिलके आदि खाए या चूसे, ऐसा खुद करे, दुसरों के पास करवाए या ऐसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[९१७-९७०] जो साधु-साध्वी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पास अपने पाँव एक या बार बार प्रमार्जन करे, दुसरों को प्रमार्जन करने के लिए प्रेरित करे, प्रमार्जन करनेवाले की अनुमोदना करे । (इस सूत्र से आरम्भ करके) जो साधु-साध्वी एक गाँव से दुसरे गाँव विचरनेवाले अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पास अपने सिर का आच्छादन करवाए, दुसरों को वैसा करने के लिए प्रेरित करे या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[उद्देशक-३ में सूत्र-१३३ से १८५ में यह सब वर्णन है । यानि ९१८ से ९७० सूत्र का विवरण इस प्रकार समझ लेना, केवल फर्क इतना है कि उद्देशक तीन में यह काम खुद करे ऐसा बताते है । इस उद्देशक में यह कार्य अन्य के पास करवाए ऐसा समजना ।]

[९७१-९७९] जो साधु-साध्वी धर्मशाला, बगीचा, गाथापति के घर या तापस के निवास आदि में मल-मूत्र का त्याग करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(उद्देशक-५-में सूत्र ५६१ से ५६९ में धर्मशाला से आरम्भ करके महागृह तक वर्णन किया है। इस प्रकार यहाँ इस नौ सूत्र में वर्णन किया है । इसलिए नौ सूत्र का वर्णन उद्देशा-५ अनुसार जान लेना-समज लेना । फर्क केवल इतना कि यहाँ धर्मशाला आदि स्थान में मल-मूत्र परठवे ऐसा समजना ।)

[९८०-९८१] जो साधु-साध्वी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को अशन-पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र-पात्र, कंबल, रजोहरण दे, दिलाए या देनेवाले की अनुमोदना करे ।

[९८२-१००१] जो साधु-साध्वी पासत्था को अशन आदि आहार, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण दे या उनके पास से ग्रहण करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् । उसी प्रकार ओसन्न, कुशील, नीतिय, संसक्त को आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण दे या उनके पास से ग्रहण करे तो प्रायश्चित् ।

[पासत्था से संसक्त तक के शब्द की समज, उद्देशक-१३ के सूत्र ८३० से ८४७ तक वर्णित की गई है । इस प्रकार जान-समज लेना]

[१००२] जो साधु-साध्वी किसी को हंमेशा पहनने के, स्नान के, विवाह के, राजसभा के वस्त्र के अलावा कुछ माँगने से प्राप्त होनेवाला या निमंत्रण से पाया गया वस्त्र कहाँ से आया या किस तरह तैयार हुआ ये जाने सिवा उसके बारे में पूछे बिना, उसकी गवेषणा किए बिना उन दोनों तरह के वस्त्र ग्रहण करे-करवाए, अनुमोदना करे ।

[१००३-१०५६] जो साधु-साध्वी विभूषा के निमित्त से यानि शोभा-खूबसूरती आदि बँढ़ाने की बुद्धि से अपने पाँव का एक या कई बार प्रमार्जन करे-करवाए अनुमोदना करे । (इस सूत्र से आरम्भ करके) एक गाँव से दुसरे गाँव जाते हुए अपने मस्तक का आच्छादन करे-करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[उद्देशक-३-के सूत्र-१३३ से १८५ में यह सभी विवरण किया है । उसी के अनुसार यहाँ सूत्र १००४ से १०५६ के लिए समझ लेना फर्क केवल इतना कि पाँव धोना आदि की क्रिया यहाँ इस उद्देशक में शोभा-खूबसूरती बढ़ाने के आशय से हुई हो तब प्रायश्चित् आता है ।

[१०५७-१०५८] जो साधु-साध्वी विभूषा निमित्त से यानि शोभा या खूबसूरती बढ़ाने के आशय से वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण या अन्य किसी उपकरण धारण करे, करवाए, अनुमोदना करे या धुए, धुलवाए, धोनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

यह उद्देशक-१५ में बताए अनुसार किसी भी दोष का खुद सेवन करे, दुसरों के पास सेवन करवाए या दोष सेवन करनेवाले की अनुमोदना करे तो उसे चातुर्मासिक परिहारस्थान उद्घातिक कि जिसका दुसरा नाम ''लघु चौमासी'' है वो प्रायश्चित् आता है ।

उद्देशक-१५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-१६

''निसीह'' सूत्र के इस उद्देशक में १०५९ से ११०८ यानि कि कुल-५० सूत्र है । ईसमें बताए अनुसार किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को 'चाउम्मासियं' ''परिहारट्ठाणं उग्घातियं'' नाम का प्रायश्चित् आता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१०५९-१०६१] जो साधु-साध्वी सागारिक यानि गृहस्थ जहाँ रहते हो वैसी वसति, सचित्त जल या अग्निवाली वसति में जाए या प्रवेश करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१०६२-१०६९] जो साधु-साध्वी सचित्त ऐसी ईख खाए, खिलाए या खिलानेवाले की अनुमोदना करे (इस सूत्र से आरम्भ करके सूत्र १०६९ तक के आँठ सूत्र । उद्देशक-१५ के सूत्र ९०९ से ९१६ के आँठ सूत्र अनुसार समजना । फर्क केवल इतना कि वहाँ आम के बारे मैं कहा है । उसकी जगह यहाँ 'ईख' शब्द का प्रयोग करना ।)

[१०७०] जो साधु-साध्वी अरण्य या जंगल में रहनेवाले या अटवी में यात्रा में जानेवाले के वहाँ से अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप आहार ग्रहण करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१०७१-१०७२] जो साधु-साध्वी विशुद्ध ज्ञान, दर्शन चारित्र आराधक को ज्ञान दर्शन चारित्र आराधक न कहे और ज्ञान, दर्शन चारित्र रहित या अल्प आराधक को विशुद्ध ज्ञान आदि धारक कहे, कहलाए या कहनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

[१०७३] जो साधु-साध्वी विशुद्ध या विशेष ज्ञान-दर्शन चारित्र आराधक गण में से अल्प या अविशुद्ध ज्ञान-दर्शन चारित्र गण में जाए, भेजे या जानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१०७४-१०८२] जो साधु-साध्वी व्युद्ग्राहीत या कदाग्रह वाले साधु (साध्वी) को अशन, पान, खादिम, स्वादिम समान आहार, वस्त्र, पात्र, कंबल या रजोहरण, वसति यानि कि उपाश्रय, सूत्र अर्थ आदि वांचना दे या, उसके पास से ग्रहण करे और उसकी वसति में प्रवेश करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

[१०८३-१०८४] जहाँ सुख-शान्ति से विचरण कर शके ऐसे क्षेत्र और आहार-उपधि-वसति आदि सुलभ हो ऐसे क्षेत्र प्राप्त होने के बाद भी विहार के आशय से या उम्मीद से जहाँ कई दिन-रात को पहुँच पाए वैसी अटवी या विकट मार्ग पसन्द करने के लिए जो साधु-साध्वी सोचे या विकट ऐसे चोर आने-जाने के, अनार्य-म्लेच्छ या अन्त्य जन से परिसेवन किए जानेवाले मार्ग बिहार के लिए सोचे या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१०८५-१०९०] जो साधु-साध्वी जुगुप्सित या निन्दित कुल में से अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप आहार-वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, वसति ग्रहण करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१०९१-१०९३] जो साधु-साध्वी अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप आहार भूमि पर, संथारा में, खींटी या सिक्के में स्थापन करे, रख दे, रखवाए या रखनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१०९४-१०९५] जो साधु-साध्वी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ बैठकर, या दो-तीन या चारो ओर से अन्यतीर्थिक आदि हो उसके बीच बैठकर आहार करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१०९६] जो साधु-साध्वी आचार्य-उपाध्याय (या रत्नाधिक) के शय्या-संथारा को पाँव से संघट्टा करे यानि कि उस पर लापरवाही से पाँव आए तब हाथ द्वारा उसे छू कर यानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने दोष की माँफी माँगे बिना चले जाए, दुसरों को वैसा करने के लिए प्रेरित करे या वैसा करनेवाले को साधु-साध्वी की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१०९७] जो साधु-साध्वी (शास्त्रोक्त) प्रमाण या गणन संख्या से ज्यादा उपधि रखे, रखवाए या रखनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१०९८-११०८] जो साधु-साध्वी सचित्त पृथ्वी पर...**आदि**..पर मल-मूत्र का त्याग करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

(संक्षेप में कहा जाए तो विराधना हो वैसी जगह में मल-मूत्र परठवे, ऐसा इस ११ सूत्र में बताते है । १३वे उद्देशक के सूत्र ७८९ से ७९९ इन ११ सूत्र में यह वर्णन किया है उस प्रकार समझ लेना फर्क केवल इतना कि उन हर एक जगह पर मल-मूत्र का त्याग करे ऐसे सम्बन्ध प्रत्येक दोष के साथ जुडना ।

इस प्रकार उद्देशक-१६-में बताए अनुसार के किसी भी दोष का खुद सेवन करे, दुसरों के पास सेवन करवाए या अनुमोदन करे तो चातुर्मासिक परिहार स्थान उद्घातिक यानि "लघु चौमासी" प्रायश्चित् आता है ।

उद्देशक-१७

"निसीह" सूत्र के इस उद्देशक में ११०९ से १२५९ यानि कि कुल १५१ सूत्र है। जिसमें बताए अनुसार किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को 'चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं' नाम का प्रायश्चित् आता है ।

[११०९-१११०] जो साधु-साध्वी कुतुहूलवृत्ति से किसी त्रस्त जानवर को तृण, घास, काष्ठ, चर्म, वेल, रस्सी या सूत से बाँधे या बँधे को छोड़ दे, छुड़वा दे, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१११-११२२] जो साधु-साध्वी कुतुहूलवृत्ति से हार, कड़े, आभूषण, वस्त्र आदि करवाए, अपने पास रखे या धारण करे यानि पहने । यह सब काम खुद करे-दुसरों से करवाए या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

(उद्देशक-७ के सूत्र ४७० से ४८१ उन १२ सूत्र में यह सब विस्तार से वर्णन किया है । वे सब बात यहाँ समज लेना, फर्क केवल इतना कि वहाँ यह सब काम मैथुन की इच्छा से बताए है उसके बजाय यहाँ कुतूहल वृत्ति से किए हुए जानना-समजना ।

[११२३-११७५] जो कोई साध्वी अन्य तीर्थिक या गृहस्थ के पास साधु के पाँव प्रक्षालन आदि शरीर परिकर्म करवाए, दुसरों को वैसा करने की प्रेरणा दे या वैसा करनेवाले की अनुमोदना करे वहाँ से आरम्भ करके एक गाँव से दुसरे गाँव विचरण करते हुए किसी साध्वी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को कहकर साधु के मस्तक को आच्छादन करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

(उपरोक्त ११२३ से ११७५ यानि कि कुल ५३ सूत्र और अब आगे कहलाएंगे वो ११७६ से १२२९ सूत्र हर एक में आनेवाले दोष की विशद् समज या अर्थ इससे पहले उद्देशक-३-के सूत्र १३३ से १८५ में बताए गए है । वो वहाँ से समज लेना । फर्क केवल इतना कि ११२३ से ११७५ सूत्र में किसी साध्वी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को कहकर साधु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के शरीर के इस प्रकार परिकर्म करवाए ऐसा समजना है और सूत्र ११७६ से १२२९ में किसी साधु इस प्रकार "साध्वी के शरीर का परीकर्म करवाए" ऐसा समजना ।

[११७६-१२२९] जो किसी साधु अन्य तीर्थिक या गृहस्थ को कहकर (ऊपर दी गई नोंध के मुताबिक) साध्वी के पाँव प्रक्षालन आदि शरीर-परिकर्म करवाए, दुसरों को ऐसा करने के लिए कहे या ऐसा करवानेवाले साधु की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१२३०-१२३१] जो किसी साधु समान सामाचारीवाले अपनी वसति में आए हुए साधु को या साध्वी समान सामाचारीवाले स्व वसति में आए साध्वी को, निवास यानि कि रहने की जगह होने के बाद भी स्थान यानि कि ठहरने के लिए जगह न दे, न दिलाए या न देनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१२३३-१२३४] जो साधु-साध्वी माले पर से (माला-ऊपर हो, भूमिगृह में हो या मँच पर से उतारा हुआ), बड़ी कोठी में से, मिट्टी आदि मल्हम से बँध किया ढँक्कन खोलकर लाया गया अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप आहार ग्रहण करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१२३५-१२३८] जो साधु-साध्वी सचित्त पृथ्वी, पानी, अग्नि या वनस्पति पर (या साथ में) प्रतिष्ठित किए हुए या रखे हुए अशन, पान, खादिम, स्वादिम समान आहार ग्रहण करे, करवाए, करनेवाले को अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१२३९] जो साधु-साध्वी अति उष्ण ऐसे अशन आदि आहार कि जो मुख से वायु से - सूर्प यानि किसी पात्र विशेष से हिलाकर, विंझणा या पंखे के द्वारा, घुमा-फिराकर, पत्ता-पत्ते का टुकड़ा, शाखा-शाखा का टुकड़ा-मोरपिंच्छ या मोरपिंच्छ का विंझन, वस्त्र या वस्त्र का टुकड़ा या हाथ से हवा फेंककर, फूंककर ठंड़े किए हो उसे दे (संक्षेप में कहा जाए तो अति उष्ण ऐसे अशन आदि उपर कहे गए किसी तरह ठंड़े किए गए हो वो लाकर कोई वहोरावे तब जो साधु-साध्वी) उसे ग्रहण करे-करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

[१२४०] जो साधु-साध्वी आँटा, पीष्टोदक, चावल, घड़ा, तल, तुष, जव, ठंड़ा किया गया लोहा या कांजी उसमें से किसी धोवाण या शुद्ध उष्ण पानी कि जो तत्काल धोया हुआ यानि कि तैयार किया गया हो, जिसमें से खट्टापन गया न हो, अपरिणत या पूरी तरह अचित न हुआ हो, पूरी तरह अचित नहीं लेकिन मिश्र हो कि जिसके वर्ण आदि स्वभाव बदला न हो ऐसा पानी ग्रहण करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१२४१] जो साधु (साध्वी) अपने शरीर लक्षण आदि को आचार्य पद के योग्य बताए यानि आचार्य पद के लिए योग्य ऐसे अपने शरीर आदि का वर्णन करके मैं भी आचार्य बनूँगा वैसा कहे, कहालाए या कहनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१२४२-१२४६] जो साधु-साध्वी वितत, तन, धन और झुसिर उस चार तरह के वांजित्र के शब्द को कान से सुनने की ईच्छा से मन में संकल्प करे, दुसरों को वैसा संकल्प करने के लिए प्रेरित करे या वैसा संकल्प करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

–भेरी, ढोल, ढोल जैसा वाद्य, मृदंग, (बारह वाद्य साथ बज रहे हो वैसा वाद्य) नंदि, झालर, वल्लरी, ड़मरु, पुरुषल नाम का वाद्य, सदुक नाम का वाद्य, प्रदेश, गोलुंकी, गोकल इसतरह के वितत शब्द करनेवाले वाद्य, सीतार, विपंची, तूण, वव्वीस, वीणातिक, तुंबवीणा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकोटक, रुसुक, ढँकुण या उस तरह के अन्य किसी भी तंतुवाद्य, ताल, काँसताल, लित्तिका, गोधिका, मकरिका, कच्छ्वी, महतिका, सनालिका या उस तरह के अन्य घन शब्द करनेवाले वाद्य, शंख, बाँसूरी, वेणु, खरमुखी, परिली चेचा या ऐसे अन्य तरह के झुषिर वाद्य । (यह सब सुनने की जो इच्छाप्रवृत्ति)

[१२४७-१२५८] जो साधु-साध्वी दुर्ग, खाई यावत् विपुल अशन आदि का आदान-प्रदान होता हो ऐसे स्थान के शब्द को कान से श्रवण करने की इच्छा या संकल्प प्रवृत्ति करे, करवाए, अनुमोदन करे तो प्रायश्चित् ।

(उद्देशक-१२ में सूत्र ७६३ से ७७४ उन बारह सूत्र में इन सभी तरह के स्थान की समज दी है । इस प्रकार समझ लेना । फर्क केवल इतना कि बारहवे उद्देशक में यह वर्णन चक्षु इन्द्रिय सम्बन्ध में था यहां उसे सुनने की इच्छा या संकल्पना दोष समान मानना ।

[१२५९] जो साधु-साध्वी इहलौकिक या पारलौकिक, पहले देखे या अनदेखे, सुने हुए या अनसुने, जाने हुए या अनजान, ऐसे शब्द के लिए सज्ज हो रागवाला हो, वृद्धिवाला हो या अति आसक्त होकर जो सज्ज हुआ है उसकी अनुमोदना करे ।

इस प्रकार उद्देशक-१७-में बताए गए किसी भी दोष का जो किसी साधु-साध्वी खुद सेवन करे, दुसरों से सेवन करवाए, ये दोप सेवन करनेवाले की अनुमोदना करे तो उसे चातुर्मासिक परिहारस्थान उद्घातिक नाम का प्रायश्चित् आता है जो 'लघु चौमासी' प्रायश्चित् नामसे भी पहचाना जाता है ।

उद्देशक-१८

"निसीह" सूत्र के इस उद्देशक में १२६० से १३३२ यानि कि कुल ७३ सूत्र है । जिसमें कहे गए किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को 'चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं' नाम का प्रायश्चित् आता है ।

[१२६०] जो साधु-साध्वी अति आवश्यक प्रयोजन बिना नौका-विहार करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१२६१-१२६४] जो साधु-साध्वी दाम देकर नाँव खरीद करे, उधार लेकर, परावर्तीत करके या छीनकर उस पर आरोहण करे यानि खरीदना आदि के द्वारा नौका विहार करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

(उद्देशक-१४ के सूत्र ८६३ से ८६६ में इन चार दोष का वर्णन किया है इस प्रकार समज लेना, फर्क इतना कि वहाँ पात्र के लिए खरीदना आदि दोष बताए है वो यहाँ नौका-नाँव के लिए समज लेने ।)

[१२६५-१२७१] जो साधु-साध्वी (नौका-विहार के लिए) नाव को स्थल में से यानि किनारे से पानी में, पानी में से किनारे पर मँगवाए, छिद्र आदि कारण से पानी से भरी नाँव में से पानी बाहर नीकाले, कीचड़ में फँसी नाव बाहर नीकाले, आधे रास्ते में दुसरा नाविक मुजे लेने आएगा वैसा कहकर यानि बड़ी नाँव में जाने के लिए छोटी नाँव में बैठे, उर्ध्व एक योजन या आधे योजन से ज्यादा लम्बे मार्ग को पार करनेवाली नौका में विहार करे-इन सभी दोप का सेवन करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१२७२] जो साधु-साध्वी, नाँव-नौका को अपनी ओर लाने की प्रेरणा करे, चलाने के लिए कहे या दुसरों से चलाई जाती नाँव को रस्सी या लकड़े से पानी से बाहर नीकाले ऐसा खुद करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१२७३] जो साधु-साध्वी नाँव को हलेसा, वांस की लकड़ी, के द्वारा खुद चलाए, दुसरों से चलवाए या चलानेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१२७४-१२७५] जो साधु-साध्वी नाँव में भरे पानी को नौका के सम्बन्धी पानी नीकालने के बरतन से आहारपात्र से या मात्रक-पात्र से बाहर नीकाले, नीकलवाए या अनुमोदना करे, नाँव में पड़े छिद्र में से आनेवाले पानी को, ऊपर चड़ते हुए पानी से डूबती हुई नाँव को वचाने के लिए हाथ, पाँव, पिपल के पत्ते, घास, मिट्टी, वस्त्र या वस्त्रखंड, से छिद्र बन्द करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१२७६-१२९१] जो साधु-साध्वी नौका-विहार करते वक्त नाँव में हो, पानी में हो, कीचड़ में हो या किनारे पर हो उस वक्त नाँव में रहे-पानी में रहे, कीचड़ में रहे या किनारे पर रहा किसी दाता असन आदि वहोरावे और यदि किसी साधु-साध्वी अशन, पान, खादिम, स्वादिम ग्रहण करे, करवाए या अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

यहाँ कुल १६ सूत्र द्वारा १६-भेद बताए है । जिस तरह नाँव में रहे साधु को नाँव में, जल में, कीचड़ में या किनारे पर रहे दाता अशन आदि दे तब ग्रहण करना उस तरह से पानी में रहे, कीचड़ में रहे, किनारे पर रहे साधु-साध्वी को पहले बताए गए उस चारों भेद से दाता दे और साधु-साध्वी ग्रहण करे ।)

[१२९२-१३३२] जो साधु-साध्वी वस्त्र खरीद करे, करवाए या खरीद करके आए हुए वस्त्र को ग्रहण करे, करवाए, अनुमोदना करे (इस सूत्र से आरम्भ करके) जो साधु-साध्वी यहाँ मुझे वस्त्र प्राप्त होगा वैसी बुद्धि से वर्षावास-चातुर्मास रहे, दुसरों को रहने के लिए कहे या रहनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित ।

[नोंध :–उद्देशक-१४-में कुल ४१ सूत्र है वहाँ पात्र के सम्बन्ध से जो विवरण किया गया है उस प्रकार उस ४१ सूत्र के लिए समज लो, फर्क केवल इतना कि यहाँ पात्र की जगह वस्त्र समजना]

इस प्रकार उद्देशक-१५-में बताए किसी भी दोष का जिसको साधु-साध्वी खुद सेवन करे, दुसरों के पास सेवन करवाए या उस दोष का सेवन करनेवाले की अनुमोदना करे तो उसे चातुर्मासिक परिहारस्थान् उद्घातिक नाम का प्रायश्चित् आता है, जिसे ''लघु चौमासी'' प्रायश्चित् भी कहते है ।

उद्देशक-१८ का मुनिदीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-१९

''निसीह'' सूत्र के इस उद्देशक में १३३३ से १३६९ यानि कि कुल ३७ सूत्र है । इसमें बताए गए किसी भी दोष का त्रिविधे सेवन करनेवाले को चाऊम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं नाम का प्रायश्चित् आता है ।

[१३३३-१३३६] जो साधु-साध्वी खरीदके, उधार ले के, विनिमय करके या छिनकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाए गए प्रासुक या निर्दोष ऐसे अनमोल औषध को ग्रहण करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

(नोंध :–उद्देशक-१४ से सूत्र ८६३ से ८६६ में इन चारों दोष का विशद् विवरण किया गया है । इस प्रकार समज लेना, फर्क केवल इतना कि वहाँ पात्र खरीदने के लिए यह दोष बताए है जो यहाँ औषध के लिए समजना ।)

[१३३७-१३३९] जो साधु-साध्वी प्रासुक या निर्दोष ऐसे अनमोल् औषध ग्लान के लिए भी तीन मात्रा से ज्यादा लाए, ऐसा औषध एक गाँव से दुसरे गाँव ले जाते हुए साथ रखे, ऐसा औपध खुद बनाए, बनवाए या कोई सामने से बनाकर दे तब ग्रहण करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्त ।

[१३४०] जो साधु-साध्वी चार संध्या-सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्याह्न और मध्यरात्रि के पहले और बाद का अर्ध-मुहूर्त्त काल इस वक्त स्वाध्याय करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१३४१-१३४२] जो साधु-साध्वी कालिक सूत्र की नौ से ज्यादा और दृष्टिवाद की २१ से ज्यादा पृच्छा यानि कि पृच्छनारूप स्वाध्याय को अस्वाध्याय या तो दिन और रात के पहले या अंतिम प्रहर सिवा के काल में करे, करवाए, अनुमोदना करे ।

[१३४३-१३४४] जो साधु-साध्वी इन्द्र, स्कन्द, यक्ष, भूत उन चार महामहोत्सव और उसके बाद की चार महा प्रतिपदा में यानि यैत्र, आषाढ, आसो और कार्तिक पूर्णिमा और उसके बाद आनेवाले एकम में स्वाध्याय करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे ।

[१३४५] जो साधु-साध्वी चार पोरिसि यानि दिन और रात्रि के पहले तथा अन्तिम प्रहर में (जो कालिक सूत्र का स्वाध्यायकाल हैं उसमें) स्वाध्याय न करे, न करने के लिए कहे या न करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१३४६-१३४७] जो साधु-साध्वी शास्त्र निर्दिष्ट या अपने शरीर के सम्बन्धी होनेवाले अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करे, करवाए, अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१३४८-१३४९] जो साधु-साध्वी नीचे दिए गए सूत्रार्थ की वांचना दिए बिना सीधे ही ऊपर के सूत्र को वांचना दे यानि शास्त्र निर्दिष्ट क्रम से सूत्र की वाचना न दे, नवबंभचेर यानि आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ अध्ययन की वांचना दिए बिना सीधे ही ऊपर के यानि कि छेदसूत्र या दृष्टिवाद की वांचना दे, दिलाए, देनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित्।

[१३५०-१३५५] जो साधु-साध्वी अविनित को, अपात्र या अयोग्य को और अव्यक्त यानि कि १६ साल का न हुआ हो उनको वाचना दे, दिलाए, अनुमोदना करे और विनित को, पात्र या योग्यतावाले को और व्यक्त यानि सोलह साल के ऊपर को वांचना न दे, न दिलाए, न देनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१३५६] जो साधु-साध्वी दो समान योग्यतावाले हो तब एक को शिक्षा और वांचना दे और एक को शिक्षा या वाचना न दे । ऐसा खुद करे, दुसरों से करवाए, ऐसे करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१३५७] जो साधु-साध्वी, आचार्य-उपाध्याय या रत्नाधिक से वाचना दिए बिना या उसकी संमति के बिना अपने आप ही अध्ययन करे, करने के लिए कहे या करनेवाले की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

[१३५८-१३६९] जो साधु-साध्वी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ, पासत्था, अवसन्न, कुशील, नीतिय या संसक्त को वाचना दे, दिलाए, देनेवाले की अनुमोदना करे या उनके पास से सूत्रार्थ पढ़े, स्वीकार करे, स्वीकार करने के लिए कहे, स्वीकार करनेवाले की अनुमोदना करे तो प्रायश्चित् ।

(नोंध :– पासत्था, अवसन्न, कुशील, नीतिय और संसक्त का अर्थ एवं, समज उद्देशक १३ के सूत्र ८३० से ८४९ में दी गई है वहाँ से समज लेना ।)

इस प्रकार उद्देशक-१९ में बताए किसी भी दोष का खुद सेवन करे, दुसरों से करवाए या ऐसा करनेवाले की अनुमोदना करे तो चातुर्मासिक परिहारस्थान, उद्घातिक प्रायश्चित् आता है जिसे 'लघुचौमासी' प्रायश्चित् भी कहते है ।

उद्देशक-२०

''निसीह'' सूत्र के इस उद्देसा में १३७० से १४२० ईस तरह से कुल ५१ सूत्र है। इस उद्देशक में प्रायश्चित् की विशुद्धि के लिए क्या प्रायश्चित् करना ? वो बताया है ।

[१३७०-१३७४] जो साधु-साध्वी एक मास का - एक महिने का निर्वर्तन योग्य परिहार स्थान यानि कि पाप या पापजनक सावद्य कर्मानुष्ठान का सेवन करके गुरु के पास अपना पाप प्रदर्शित करे यानि कि आलोचना करे तब माया, कपट किए बिना यानि कि निःशल्य आलोचना करे तो एक मास का ही प्रायश्चित् आता है लेकिन यदि माया-कपट से यानि कि शल्ययुक्त आलोचना की हो तो वो प्रायश्चित् दो मास का आता है ।

उसी तरह दो, तीन, चार, पाँच मास निर्वतन योग्य पापजनक सावद्य कर्मानुष्ठान का सेवन करने के बाद गुरु के समक्ष आलोचना करे तब कोई भी छल बिना आलोचना करे तो उतने ही मास का और शल्ययुक्त आलोचना करे तो १-१ अधिक मास का प्रायश्चित् आता है, जैसे कि दो मास के बाद निर्वतन पाए ऐसे, पाप की निष्कपट आलोचना दो मास का प्रायश्चित्, सशल्य आलोचना तीन मास का प्रायश्चित्, लेकिन छ मास से ज्यादा प्रायश्चित् कभी नहीं आता । सशल्य या निःशल्य आलोचना का महत्तम प्रायश्चित् छ मास समजना।

[१३७५-१३७९] जो साधु-साध्वी कईंबार (एक नहीं दो नहीं लेकिन तीन-तीन बार एक मास के बाद निर्वतन पाए ऐसा पाप-कर्मानुष्ठान सेवन करके गुरु के समक्ष आलोचना करे तब भी ऋजु भाव से आलोचना करे तो एक मास और कपट भाव से आलोचना करे तो दो मास का प्रायश्चित् आता है ।

उसी तरह से दो, तीन, चार, पाँच मास निर्वतन योग्य पाप के लिए निःशल्य आलोचना से उतना ही और सशल्य आलोचना से एक-एक मास ज्यादा प्रायश्चित् और छ मास के परिहारस्थान सेवन के लिए निःशल्य या सशल्य किसी भी आलोचना का प्रायश्चित् छ महिने का ही आता है ।

[१३८०-१३८१] जो साधु-साध्वी एक बार या कईं बार के लिए एक, दो, तीन, चार या पाँच मास से निर्वर्त्तन हो ऐसे पाप कर्म का सेवन करके उसी तरह के दुसरे पापकर्म (परिहारस्थान) का सेवन करे तो भी उसे उपर कहने के मुताबिक निःशल्य आलोचना करे तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उतना ही प्रायश्चित् और सशल्य आलोचना करे तो एक-एक मास ज्यादा प्रायश्चित् परंतु छ मास से ज्यादा प्रायश्चित् कभी नहीं आता ।

[१३८२-१३८३] जो साधु-साध्वी एक बार या कई बार चौमासी या सातिरेक चौमासी (यानि कि चौमासी से कुछ ज्यादा) पंचमासी या साधिक पंचमासी इस परिहार (यानि पाप) स्थान को दुसरे ऐसे तरह के पाप स्थान का सेवन करके या आलोचना करे तो शल्यरहित आलोचना में उतना ही प्रायश्चित् और शल्यसहित आलोचना में एक मास ज्यादा लेकिन छ मास से ज्यादा प्रायश्चित् नहीं आता ।

[१३८४-१३८७] जो साधु-साध्वी एक बार या कई बार चौमासी या साधिक चौमासी, पंचमासी या साधिक पंचमासी इस परिहार यानि पापस्थान में से अन्य किसी भी पाप स्थान का सेवन करके निष्कपट भाव से या कपट भाव से आलोचना करे तो क्या ? उसकी विधि बताते है–जैसे कि परिहारस्थान पाप का प्रायश्चित् तप कर रहे साधु की सहाय आदि के लिए पारिहारिक को अनुकूलवर्ती किसी साधु नियत किया जाए, उसे इस परिहार तपसी की वैयावच्च करने के लिए स्थापना करने के बाद भी किसी पाप-स्थान का सेवन करे और फिर कहे कि मैंने कुछ पाप किया है तब तमाम पहले सेवन किया गया प्रायश्चित् फिर से सेवन करना चाहिए ।

(यहाँ पाप स्थानक को पूर्व पश्चात् सेवन के विषय में चतुर्भंगी है ।) १. पहले सेवन किए गए पाप की पहले आलोचना की, २. पहले सेवन किए गए पाप की बाद में आलोचना कर, ३. बाद में सेवन किए पाप की पहले आलोचना करे, ४. बाद में सेवन किए गए पाप की बाद में आलोचना करे । (पाप आलोचना क्रम कहने के बाद परिहार सेवन, करनेवाले के भाव को आश्रित करके चतुर्भंगी बताता है ।) १. संकल्प काल और आलोचना के वक्त निष्कपट भाव, ३. संकल्पकाल में कपटभाव परंतु आलोचना लेते वक्त निष्कपट भाव, ४. संकल्पकाल और आलोचना दोनों वक्त कपट भाव हो ।

यहाँ संकल्प काल और आलोचना दोनों वक्त बिना छल से और जिसे क्रम में पाप का सेवन किया हो उस क्रम में आलोचना करनेवाले को अपने सारे अपराध इकट्ठे होकर उन्हें फिर से उसी प्रायश्चित् में स्थापन करना जिसमें पहले स्थापन किए गए हो यानि उस परिहार तपसी उन्हें दिए गए प्रायश्चित् को फिर से उसी क्रम में करने को कहे ।

[१३८८-१३९३] छ, पाँच, चार, तीन, दो, एक परिहार स्थान यानि पाप स्थान का प्रायश्चित् कर रहे साधु (साध्वी) के बीच यानि प्रायश्चित् वहन शुरु करने के बाद दो मास जिसका प्रायश्चित् आए ऐसे पाप स्थान का फिर से सेवन करे और यदि उस गुरु के पास उस पाप कर्म की आलोचना की जाए तो दो मास से अतिरिक्त दुसरी २० रात का प्रायश्चित् बढ़ता है । यानि कि दो महिने और २० रात का प्रायश्चित् आता है ।

एक से यावत् छ महिने का प्रायश्चित् वहन वक्त की आदि मध्य या अन्त में किसी प्रयोजन विशेष से, सामान्य या विशेष आशय और कारण से भी यदि पाप-आचरण हुआ हो तो भी अ-न्युनाधिक २ मास २० रात का ज्यादा प्रायश्चित् करना पड़ता है ।

[१३९४] दो महिने और वीस रात का परिहार स्थान प्रायश्चित् वहन कर रहे साधु को आरम्भ से - मध्य में या अन्त में फिरसे भी बीच में कभी-कभी दो मास तक प्रायश्चित् पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने योग्य पाप स्थान का प्रयोजन - वजह-हेतु सह सेवन किया जाए तो २० रात का ज्यादा प्रायश्चित् आता है मतलब कि पहले के दो महिने और २० रात के अलावा दुसरे दो महिने और २० रात का प्रायश्चित् आता है उसके बाद उसके जैसी ही गलती की हो तो अगले १० अहोरात्र का यानि कि कुल तीन मास का प्रायश्चित् आता है ।

[१३९५-१३९८] (ऊपर के सूत्र में तीन मास का प्रायश्चित् बताया) उसी मुताबिक फिर से २० रात्रि से १० रात्रि से क्रम से बढ़ते-बढ़ते चार मास, चार मास बीस दिन, पाँच मास यावत् छ मास तक प्रायश्चित् आता है लेकिन छह मास से ज्यादा प्रायश्चित् नहीं आता।

[१३९९-१४०५] छ मास प्रायश्चित् योग परिहार-पाप स्थान का सेवन से छ मास का प्रायश्चित् आता है वो प्रायश्चित् वहन करन के लिए ग्हे साधु बिच में मोह के उदय से दुसरा एकमासी प्रायश्चित् योग्य पाप सेवन करे फिर गुरु के पास आलोचना करे तब दुसरे १५ दिन का प्रायश्चित् दिया जाए यानि कि प्रयोजन-आशय से कारण से छ मास के आदि, मध्य या अन्त में गलती करनेवाले को न्यानुधिक ऐसा कुछ देढ़ मास का ज्यादा प्रायश्चित् आता है ।

उसी तरह पाँच, चार, तीन, दो, एक मास के प्रायश्चित् वहन करनेवाले को कुल देढ मास का ज्यादा प्रायश्चित् आता है वैसा समज लेना ।

[१४०६-१४१४] देढ़ मास प्रायश्चित् योग्य पाप सेवन के निवारण के लिए स्थापित साधु को वो प्रायश्चित् वहन करते वक्त यदि आदि-मध्य या अन्त में प्रयोजन-आशय या कारण से मासिक प्रायश्चित् योग्य पापकर्म का सेवन करे तो दुसरे पंद्रह दिन का प्रायश्चित् देना यानि कि दो मास का प्रायश्चित् होता है ।

उसी तरह से (ऊपर कहने के मुताबिक) दो मासवाले को ढ़ाई मास, ढाई मास वाले को तीन मास, यावत् साड़े पाँच मास वाले को छ मास का प्रायश्चित् परिपूर्ण करना होता है।

[१४१५-१४२०] ढ़ाई मास के प्रायश्चित् को योग्य पाप सेवन के निवारण के लिए स्थापित यानि कि उतने प्रायश्चित् का वहन कर रहे साधु को यदि किसी आशय या कारण से उसी प्रायश्चित् काल के बीच यदि दो मास प्रायश्चित् योग्य पाप का सेवन किया जाए तो ओर २० रात का आरोपण करना यानि ३ मास और पाँच रात का प्रायश्चित् आता है ।

३ मास पाँच रात मध्य से मासिक प्रायश्चित् योग्य गलतीवाले को १५ दिन का यानि कि ३ मास २० रात का प्रायश्चित् ।

३ मास २० रात मध्य से दो मासिक प्रायश्चित् योग्य गलतीवाले को ओर २० रात यानि ४ मास १० रात का प्रायश्चित् ।

४ मास १० रात मध्य से मासिक प्रायश्चित् योग्य गलतीवाले को ओर १५ रात का यानि कि पाँच मास में ५ रात कम प्रायश्चित्-पाँच मास में पाँच रात कम, मध्य से दो मासिक प्रायश्चित्, योग्य भूलवाले को ज्यादा २० रात यानि कि साड़े पाँच मास का प्रायश्चित् ।

साड़े पाँच मास के परिहार-तप में स्थापित साधु को बीच में आदि-मध्य या अन्त में प्रयोजन आशय या कारण से यदि मासिक प्रायश्चित् योग्य गलती करे तो ओर पाक्षिक प्रायश्चित् आरोपण करने से अन्युनाधिक ऐसे छ मास का प्रायश्चित् आता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार इस उद्देशक २० में प्रायश्चित् स्थान की आलोचना अनुसार प्रायश्चित् देनेका और उसके वहनकाल में स्थापित प्रस्थापित आरोपणा का स्पष्ट कथन किया है ।

उद्देशक-२०-की मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

३४	**निशीथ-छेदसूत्र-१-हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३५ बृहत्कल्प

छेदसूत्र-२- हिन्दी अनुवाद

उद्देशक-१

इस आगम सूत्र में कुल छ उद्देशक और २१५ सूत्र है । पद्य कोई नहीं । इस सूत्र में अनेक बार निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी शब्द इस्तेमाल किया गया है । जिसका लोकप्रसिद्ध अर्थ साधु-साध्वी होता है । हमने पहले से अन्तिम सूत्र पर्यन्त हरएक स्थान में साधु-साध्वी अर्थ स्वीकार करके अनुवाद किया गया है ।

[१] साधु-साध्वी को आम और केले कटे हुए न हो तो लेना नहीं कल्पता । (यहाँ अभिन्न शब्द का शब्द शस्त्र से अपरिणत ऐसा भी होता है । यानि किसी भी शस्त्र के द्वारा वो अचित्त किया हुआ होना चाहिए । केवल छेदन-भेदन से आम अचित न भी हुआ हो, ताल प्रलम्ब शब्द से तालफल की बजाय केला ऐसा मतलब चूर्णी-वृत्ति के सहारे से किया गया है, लेकिन वहाँ अभिन्न शब्द का अर्थ अपक्व ऐसा होता है, उपलक्षण से तो सारे फल का यहाँ ग्रहण करना समजना)

[२] साधु-साध्वी को शस्त्रपरिणत या भेदन की गई आम या केले लेना कल्पे ।

[३-५] साधु को अखंड़ या टुकड़े किए गए केला लेने की कल्पे लेकिन, साध्वी को न कल्पे साध्वी को टुकड़े किये गए केला ही ग्रहण करना कल्पता है । (अखंड़ केले का आकार लम्बा देखकर साध्वी के मन में विकार भाव पेदा हो शकता है । और उस केले से वो अनंगक्रीड़ा भी कर शकती है । वृत्तिकार बताते है कि केले के छोटे-छोटे टुकड़े होने चाहिए। बड़े टुकड़े भी नहीं चलते ।)

[६-९] गाँव, नगर, खेड़ा, कसबा, पाटण, खान, द्रोणमुख, निगम, आश्रम, संनिवेश यानि पड़ाव, पर्वतीय स्थान ग्वाले की पल्ली, परा, पुटभेदन और राजधानी इतने स्थान में चारो ओर वाड किला आदि हो बाहर घरो न हो तो भी साधुओ को शर्दी-गर्मी में एक महिना रहना कल्पे, बाहर आबादी हो तो एक महिना गाँव में और एक महिना गाँव के बाहर ऐसे दो मास भी रहना कल्पे, लेकिन गाँव आदि में रहे तब गाँव की भिक्षा कल्पे और गाँव आदि के बाहर वसति न हो तो शर्दी गर्मी में दो महिने रहना कल्पे...वसति हो तो दो महिना गाँव में और दो महिने गाँव के बाहर ऐसे चार महिने भी रहना पड़े केवल इतना कि गाँव आदि की भीतर रहे तब गाँव की भिक्षा और बाहर रहे तब बाहर की भिक्षा लेनी कल्पे ।

[१०-११] गांव यावत् राजधानी में जिस स्थान पर एकवाड, एकद्वार, एकप्रवेश, निर्गमन स्थान हो वहाँ समकाल साधु साध्वी को साथ रहना न कल्पे लेकिन अनेकवाड़, अनेकद्वार, अनेक प्रवेश निर्गमनं स्थान हो तो कल्पता है ।

वगडा यानि वाड, कोट, प्राकार ऐसा मतलब होता है । गाँव या घर की सुरक्षा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए उसके आसपास दिवाल, वाड आदि बनाए हो वो, द्वार यानि प्रवेश करने का या नीकलने का रास्ता, प्रवेश निर्गमन यानि आने-जाने की क्रिया ।

स्थंड़िल भूमि, भिक्षाचर्या या स्वाध्याय आदि के लिए आते-जाते बार-बार साधु-साध्वी के मिलन से एक-दुसरे से संसर्ग बढ़े रागभाव की वृद्धि हो । संयम की हानि हो, लोगों में संशय हो यह सम्भव है ।

[१२-१३] हाट या बाजार, गली या महोल्ले का अग्र हिस्सा, तीन गली या रास्ते इकट्ठे हो रहे हो वैसा त्रिक स्थान, चार मार्ग के समागम वाला चौराहा, छ रास्ते के मिलनवाला चत्वर स्थान, आबादी के एक या दोनों ओर बाजार हो ऐसा स्थान, वहाँ साध्वी का रहना न कल्पे, साधु का रहना कल्पे । (इस स्थान में साध्वी के ब्रह्मचर्य भंग की संभावना है इसलिए न कल्पे)

[१४-१५] बिना दरवाजे के खुले द्वारवाले उपाश्रय में साध्वी को रहना न कल्पे, साधु को रहना कल्पे, खुले दरवाजेवाले उपाश्रय में एक पर्दा बाहर लगाकर, एक भीतर लगाकर, भीतर की ओर धागेवाला या छिद्रवाला कपड़ा बाँधकर साध्वी का रहना कल्पे । (बाहर आते-जाते तरुण पुरुष, बारात आदि देखकर साध्वी के चित्त की चंचलता होनी संभवित है इसलिए न कल्पे ।)

[१६-१७] साध्वी को भीतर की ओर लेपवाला घटी मात्रक (मातृ करने का भाजन) रखना और इस्तेमाल करना कल्पे लेकिन, साधु को न कल्पे । (साध्वी बन्द वसति में होती है इसीलिए परठने को जरुरी है । साधु को खुली वसति में रहना होता है इसलिए मात्रक जरुरी नहीं होता ।)

[१८] साधु-साध्वी को वस्त्र की बनी हुई चिलिमिलिका (एक तरह की मच्छरदानी) रखना और इस्तेमाल करना कल्पे ।

[१९] साधु-साध्वी को जलाशय के किनारे खड़ा रहना, बैठना, सोना, अशन आदि आहार खाना, पीना, मल-मूत्र, श्लेष्म, नाक का मैल आदि का त्याग करना, स्वाध्याय, धर्म, जागरण करना या कायोत्सर्ग करना न कल्पे ।

[२०-२१] साधु-साध्वी को सचित्र उपाश्रय में रहना न कल्पे, चित्र रहित उपाश्रय में रहना कल्पे । (चित्र राग आदि उत्पत्ति का निमित्त बन शकता है ।

[२२-२४] साध्वी को सागारिक की निश्रा रहित उपाश्रय में रहना न कल्पे, लेकिन निश्रावाले उपाश्रय में रहना कल्पे, साधु का दोनों प्रकार से रहना कल्पे । (साधुवर्ग सशक्त, दृढ़चित् और निर्भय हो इसलिए कल्पे ।)

[२५] साधु-साध्वी को सागारिक उपाश्रय में रहना न कल्पे, अल्प सागरिक उपाश्रय में रहना कल्पे । (सागारिक यानि जहाँ आगार-गृहसम्बन्धी वस्तु, चित्र आदि रहे हो ।)

[२६-२९] साधु को स्त्री सागारिक उपाश्रय में रहना न कल्पे, साध्वीओ को कल्पे, साधुओ को पुरुष सागारिक उपाश्रय में रहना कल्पे, साध्वीओ को न कल्पे ।

[३०-३१] साधुओ को प्रतिबद्ध आबादी में रहना न कल्पे, साध्वीओं को कल्पे । (उपाश्रय की दिवाल या उपाश्रय का किसी हिस्सा गृहस्थ के घर के साथ जुड़ा हो तो वो प्रतिबद्ध कहलाता है ।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३२-३३] घर के बीच होकर जिस उपाश्रय में आने-जाने का मार्ग हो उस उपाश्रय में साधु का रहना न कल्पे, साध्वी का रहना कल्पे ।

[३४] साधु-साध्वी किसी के साथ कलह होने के बाद क्षमा याचना करके कलह को उपशान्त करे, प्रायश्चित् आदि से फिर से कलह न करने के लिए प्रतिबद्ध होकर खुद भी उपशान्त हो जाए उसके बाद जिसके साथ क्षमायाचना की हो उसकी इच्छा हो तो भी आदर-सन्मान, वंदन-सहवास, उपशमन करे और इच्छा न हो तो आदर आदि न करे, जो उपसमता है उसे आराधना है, जो उपशमक नहीं है उसे आराधना नहीं है, हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा ? क्योंकि श्रमण जीवन में उपशम ही श्रामण्यका सार है ।

[३५-३६] साधु-साध्वी को बारिस में विहार करना न कल्पे, शर्दी-गर्मी में विहार करना कल्पे ।

[३७] साधु-साध्वी की विरुद्ध-अराजक या विरोधी राज में जल्द या बार-बार आना-जाना या आवागमन न कल्पे । जो साधु-साध्वी इस प्रकार करे-करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे वो तीर्थंकर ओर राजा दोनों की आज्ञा का अतिक्रमण करता है और अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान प्रायश्चित् के योग्य होते है । ('वेरज्ज' शब्द के अर्थ कई है, बरसों से चला आता वैर, दो राज्य के बीच वैर हो, जहाँ पास के राज्य के गाँव आदि जला देनेवाला राजा हो, जिसके मंत्री सेनापति राजा विरुद्ध हो आदि ।

[३८-३९] गृहस्थ के घर में आहार के लिए आए या विचार (स्थंडिल) भूमि या स्वाध्याभूमि जाने के लिए बाहर नीकलनेवाले साधु को कोई वस्त्र, पात्र, कम्बल या रजोहरण के लिए पूछे तब वस्त्र आदि को आगार के साथ ग्रहण करे, लाए गए वस्त्र आदि को आचार्य के चरणों में रखकर दुसरी बार आज्ञा लेकर अपने पास रखना या उसका इस्तेमाल करना कल्पे।

[४०-४१] गृहस्थ के घर में आहार के लिए गए या विचार (स्थंड़िल) भूमि या स्वाध्याय भूमि जाने के लिए नीकले साध्वी को किसी वस्त्र आदि ग्रहण करने के लिए पूछे तो आगार रखकर वस्त्र आदि ग्रहण करे, लाए हुए वस्त्र आदि को प्रवर्तिनी के चरणों में रखकर पुनः आज्ञा लेकर उसे अपने पास रखना या इस्तेमाल करना कल्पे ।

[४२-४७] साधु-साध्वी को रात को या विकाल को (संध्याकाल) १. पूर्वप्रतिलेखित शय्या संस्तारक छोड़कर अशन, पान, खादिम, स्वादिम लेना न कल्पे, उसी तरह, २. चोरी करके या छिनकर ले गए वस्त्र का इस्तेमाल करके धोकर, रंगकर, वस्त्र पर की निशानी मिटाकर, फेरफार करके या सुवासित करके भी यदि कोई दे जाए तो ऐसे आहृत-चाहृत वस्त्र अलावा के वस्त्र, पात्र, कम्बल या रजोहरण लेना न कल्पे, ३-मार्गगमन करना न कल्पे, ४-संखड़ि में जाना या संखड़ी (बड़ा जीमणवार) के लिए अन्यत्र जाना न कल्पे ।

[४८-४९] रात को या संध्या के वक्त स्थंड़िल या स्वाध्याय भूमि जाने के लिए उपाश्रय के बाहर जाना-आना अकेले साधु या साध्वी को न कल्पे । साधु को एक या दो साधु के साथ और साध्वी को एक, दो, तीन साध्वी साथ हो तो बाहर जाना कल्पे ।

[५०] साधु-साध्वी को पूर्व में अंग, मगध, दक्खण में कोशाम्बी, पश्चिम में थूणा, उत्तर में कुणाल तक जाना कल्पे इतना ही आर्य क्षेत्र है उसके बाहर जाना न कल्पे । यदि ज्ञानदर्शनचारित्र वृद्धि की संभावना हो तो जा शके (इस प्रकार मैं तुम्हें कहता हूँ ।)

उद्देशक-१-का मुनिदीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्देशक-२

[५१-५३] उपाश्रय के आसपास या आँगन में चावल, गेहूँ, मुग, उड़द, तल, कलथी, जव या ज्वार का अलग-अलग ढ़ग हो वो ढ़ग आपस में सम्बन्धित हो, सभी धान्य ईकट्ठे हो या अलग हो तो जघन्य से गीले हाथ की रेखा सूख जाए और उत्कृष्ट सै पाँच दिन जितना वक्त भी साधु-साध्वी का वहाँ रहना न कल्पे, लेकिन यदि ऐसा जाने कि चावल आदि छूटे-फैले हुए अलग ढ़ग में या आपस में मिले नहीं है लेकिन ढ़ग या पुंज रूप भित्त के सहारे-कुंड़ में राख आदि से चिह्न किए गए, गोबर से लिपित, ढँके हुए है तो शर्दी-गर्मी में रहना कल्पे, यदि ऐसा जाने राशि-पुंज आदि के रूप में नहीं लेकिन कोठा या पानी में भरे, मंच या माला पर सुरक्षित, मिट्टी या गोबर लिंपित, बरतन से ढँके, निशानी किए गए या मुँह बन्द किए हो तो साधु-साध्वी को वर्षावास रहना भी कल्पे ।

[५४-५७] उपाश्रय के आँगन में मदिरा या मद्य के भरे घड़े रखे गए हो, अचित्त ऐसे ठंड़े या गर्म पानी के घड़े वहां भरे हो, वहाँ पूरी रात अग्नि सुलगता हो, जलता हो तो गीले हाथ की रेखा सूख जाए उतना काल रहना न कल्पे शायद गवेषणा करने के बावजूद भी दुसरा स्थान न मिले तो एक या दो रात्रि रहना कल्पे लेकिन यदि ज्यादा रहे तो जितने रात-दिन ज्यादा रहे उतना छेद या परिहार प्रायश्चित् आए ।

[५८-६०] उपाश्रय के आँगन में मावा, दूध, दहीं, मक्खन, घी, तेल, गुड़, मालपुआ, लड्डु, पूरी, शीखंड़, शिखरण रखे-फैले, ढ़ग के रूप में या छूटे पडे हो तो साधु-साध्वी को वहाँ हाथ के पर्व की रेखा सूख जाए उतना काल रहना न कल्पे, लेकिन यदि अच्छी तरह से ढ़गरूप से, दीवार की ओर कुंड़ बनाकर, निशानी या अंकित करके या ढ़ँके हुए हो तो शर्दी-गर्मी में रहना कल्पे, यदि ढ़ग या पुंज आदि रूप में नहीं लेकिन कोठा या कल्प में भरे, मंच या मालेपर सुरक्षित, कोड़ी या घड़े में रखे गए हो, जिसके मुँह मिट्टी या गोबर से लिप्त हो बरतन से ढ़ँके हो, निशानी या मुहर लगाई हो तो वहाँ वर्षावास करना भी कल्पे ।

[६१-६२] आगमन गृह, चारो ओर खुले घर, छत्त या पेड़ या अल्प आवृत्त आकाश के नीचे साध्वी का रहना न कल्पे, अपवाद से साधु को कल्पे ।

[६३] जिस उपाश्रय का स्वामी एक ही हो वो एक सागारिक पारिहारिक और जहाँ दो, तीन, चार, पाँच स्वामी हो तो वो सब सागारिक पारिहारिक है । (यदि ज्यादा सागारिक हो तो) वहाँ एक को कल्पक सागारिक की तरह स्थापना करके उसे पारिहारिक मानकर बाकी वो वहाँ से आहार आदि लेने जाना । (सागारिक यानि शय्यातर या वसति के स्वामी, पारिहारिक यानि जिसके अन्न पानी को परिहार त्याग करना है वो, कल्पाक यानि किसी एक को मुख्यरूप से स्थापित करना, निव्विसेज्ञ शय्यातर न गिनना वो) ।

[६४-६८] साधु-साध्वी को सागारिक पिंड़ यानि वसति दाता के घर का आहार, जो घर के बाहर न ले गए हो और शायद दुसरों के वहाँ बने आहार के साथ मिश्र हुआ हो या न हुआ हो - उसे लेना न कल्पे, यदि घर के बाहर वो पिंड़ ले गए हो लेकिन दुसरों के वहाँ बने आहार के साथ मिश्र न हुआ हो तो भी लेना न कल्पे, लेकिन यदि मिश्र आहार हो तो लेना कल्पे, यदि वो पिंड़ बाहर के आहार के साथ मिश्रित न हो वो उसे मिश्र करना न कल्पे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि उसे मिश्रित करे, करवाए, करनेवाले की अनुमोदना करे तो वो लौकिक और लोकोत्तर मर्यादा का अतिक्रमण करते हुए अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहार तप समान प्रायश्चित् के भागी होते है ।

[६९-७०] यदि दुसरे घर से आए हुए आहार को सागारिकने अपने घर में ग्रहण किया हो और उसे दे तो साधु-साध्वी को लेना न कल्पे, उसका स्वीकार न किया हो और फिर दे तो कल्पे ।

[७१-७२] सागरिक के घर से दुसरे घर में ले गए आहार का यदि गृहस्वामी ने स्वीकार न किया हो और कोई दे तो साधु को लेना न कल्पे, यदि गृहस्वामी ने स्वीकार कर लिया हो और फिर कोई दे तो लेना कल्पे ।

[७३-७४] (सागारिक एवं अन्य लोगों के लिए संयुक्त निष्पन्न भोजन में से) सागारिक का हिस्सा निश्चित्-पृथक निर्धारित अलग न नीकाला हो और उसमें से कोई दे तो साधु-साध्वी को लेना न कल्पे, लेकिन यदि सागारिक का हिस्सा अलग किया गया हो और कोई दे तब लेना कल्पे ।

[७५-७८] सागारिक को अपने पूज्यपुरुष या महेमान को आश्रित करके जो आहार-वस्त्र कम्बल आदि उपकरण बनाए हो या देने के लिए रखे हो वो पूज्यजन या अतिथि को देने के बाद जो कुछ बचा हो वो सागारिक को परत करने के लायक हो या न हो, बचे हुए हिस्से में से सागारिक या उसके परिवारजन कुछ दे तो साधु-साध्वी को लेना न कल्पे, वो पूज्य पुरुष या अतिथि दे तो भी लेना न कल्पे ।

[७९] साधु-साध्वी को पाँच तरह के वस्त्र रखना या इस्तेमाल करना कल्पे । जांगमिक-गमनागमन करते भेड़-बकरी आदि के बाल में से बने, भांगिक अलसी आदि के छिलके से बने, सानक शण के बने, पीतक-कपास के बने, तिरिड़पट्ट-तिरिड़वृक्ष के वल्कल से बने वस्त्र।

[८०] साधु-साध्वी को पाँच तरह के रजोहरण रखना या इस्तेमाल करना कल्पे । ऊनी, ऊँट के बाल का, शण का, वच्चक नाम के घास का, मुँज घास फूटकर उसका कर्कश हिस्सा दूर करके बनाया हुआ।

उद्देशक-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-३

[८१-८२] साधु को साध्वी के और साध्वी को साधु के उपाश्रय में रहना, बैठना, सोना, निद्रा लेना, सो जाना, अशन आदि आहार करना, मल-मूत्र, कफ-नाक के मैल का त्याग करना, स्वाध्याय, ध्यान या कार्योत्सर्ग करना न कल्पे ।

[८३-८४] साध्वी को (शयन-आसन के लिए) रोमवाला चमड़ा लेना न कल्पे, साधु को कल्पे, लेकिन वो इस्तेमाल किया गया या नया न हो, वापस करने का हो, केवल एक रात के लिए लाया गया हो लेकिन कई रात के लिए उपयोग न करना हो तो कल्पे।

[८५-८८] साधु-साध्वी को अखंड़ चमडा, वस्त्र या पूरा कपड़ा पास रखना या उपयोग करना न कल्पे, लेकिन चर्मखंड़, टुकड़े किए गए कपड़े में से नाप के अनुसार फाडकर रखे हुए वस्त्र रखना और उपभोग करना कल्पे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[८९-९०] साधु को अवग्रहानंतक (गुप्तांग आवरक वस्त्र और अवग्रह पट्टक) अवग्रहानंतक आवरण वस्त्र रखना या इस्तेमाल करना न कल्पे, साध्वी को कल्पे ।

[९१] गृहस्थ के घर आहार लेने गए हुए साध्वी को यदि वस्त्र की आवश्यकता हो तो यह वस्त्र मैं अपने लिए लेती हूँ ऐसा स्वनिश्रा से वस्त्र लेना न कल्पे । लेकिन प्रवर्तिनी की निश्रा में लेना कल्पे (यानि प्रवर्तिनी आज्ञा न दे तो वस्त्र परत करना) । यदि प्रवर्तिनी विद्यमान न हो तो वहाँ विद्यमान ऐसे आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर, गणावच्छेदक या जो गीतार्थ हो उसकी निश्रा में वस्त्र लेना कल्पे ।

[९२-९३] पहली बार प्रवजित होनेवाले साधु को रजोहरण गुच्छा, पात्र और तीन अखंड़ वस्त्र, (साध्वी को चार अखंड़ वस्त्र) अपने साथ ले जाकर प्रवजित होना कल्पे, यदि पहले प्रवजित हुए हो तो न कल्पे लेकिन यथा परिगृहित वस्त्र लेकर आत्मभाव से प्रवजित होना कल्पे । (यहाँ दीक्षा-बड़ी दीक्षा के अनुसंधान से समजना)

[९४] साधु-साध्वी को प्रथम समवसरण यानि वर्षावास में वस्त्र ग्रहण करना न कल्पे, लेकिन दुसरे समवसरण यानि वर्षावास-चातुर्मास के बाद कल्पे ।

[९५-९९] साधु-साध्वी को चारित्र-पर्याय के क्रम में वस्त्र शय्या-संथारा ग्रहण करना और वंदन करना कल्पे ।

[९८-१००] साधु-साध्वी को गृहस्थ के घर में या दो घर के बीच खड़ा रहना, बैठना, खड़े-खड़े कार्योत्सर्ग करना, चार-पाँच गाथा का उच्चारण, पदच्छेद, सूत्रार्थकथन, फलकथन करना, पाँच महाव्रत के उच्चारण, आदि करना न कल्पे । (शायद किसी उत्कट जिज्ञासावाले हो तो) केवल एक दृष्टांत, एक प्रश्नोत्तर, एक गाथा या एक श्लोक का एक स्थान पर स्थिर रहकर उच्चारण आदि करना कल्पे ।

[१०१-१०२] साधु-साध्वी को सागारिक के शय्या-संस्तारक जो ग्रहण किए हो वो काम पूरा होने पर "अविकरण" (जिस तरह से लिया हो उसी तरह परत न करना) रखकर गमन करना न कल्पे, "विकरण" (उसी रूप में परत) करके गमन करना कल्पे ।

[१०३] साधु-साध्वी को प्रातिहारिक (परत करने को योग्य) या सागारिक (शय्यातर) के शय्यासंथारा यदि गुम हो जाए तो उसे ढूँढना चाहिए, यदि मिल जाए तो जिसका हो उसे परत करना चाहिए, यदि न मिले तो फिर से आज्ञा लेकर दुसरा शय्या-संथारा ग्रहण करके इस्तेमाल करना चाहिए ।

[१०४] जिस दिन श्रमण-साधु, शय्या-संथारा छोड़कर विहार करे उसी दिन से या तब दुसरे श्रमण-साधु आ जाए तो पूर्व गृहित आज्ञा सें शय्या संथारा ग्रहण कर शकते है । क्योंकि अवग्रह गीले हाथ की रेखा सूख जाए तब तक होता है ।

[१०५] यदि उस उपाश्रय में साधु-साध्वी जरुरी अचित्त चीज भूल गए या छोड़ गए हो (नए आनेवाले साधु-साध्वी) पूर्वगृहीत आज्ञा से ग्रहण कर शकते है क्योंकि अवग्रह गीले हाथ की रेखा सूख जाए तब तक होता है ।

[१०६-१०७] जो घर इस्तेमाल में न लिया जा रहा हो , अनेक स्वामी में से किसी एक स्वामी ने खुद के आधिन न किया हो, किसी व्यक्ति के द्वारा परिगृहित न हो या किसी यक्ष-देव आदि ने वहाँ निवास किया हो उस घर का पहला जो मालिक हो उसकी आज्ञा लेकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ (साधु-साध्वी) रह शकते है, (उससे विपरीत) यदि वो घर काम में लिया जाता हो, एक स्वामी हो, अन्य से परिगृहित हो तो भिक्षुभाव से आए हुए दुसरे साधु को दुसरी बार आज्ञा लेनी चाहिए । क्योंकि अवग्रह गीले हाथ की रेखा सूख जाए तब तक है ।

[१०८] घर-दीवार किला और नगर मध्य का मार्ग, खाई, रास्ता या झाड़ी के पास स्थान ग्रहण करना हो तो उसके स्वामी और राजा की पूर्व अनुज्ञा है । यानि साधु-साध्वी आज्ञा लिए बिना वहाँ रह शकते है ।

[१०९] गाँव यावत् पाटनगर के बाहर शत्रुसेना दल देखकर साधु-साध्वी को उसी दिन से वापस आना कल्पे लेकिन बाहर रहना न कल्पे, जो साधु-साध्वी बाहर रात्रि रहे, रहने का कहे रहनेवाले की अनुमोदना करे तो जिनाज्ञा और राजाज्ञा का उल्लंघन करते हुए अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहार स्थान प्रायश्चित् को प्राप्त करते है ।

[११०] गाँव यावत् संनिवेश में पाँच कोश का अवग्रह ग्रहण करना कल्पे । भिक्षा आदि के लिए ढ़ाई कोश जाने के - ढ़ाई कोश आने का कल्पे ।

उद्देशक-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-४

[१११] अनुद्घातिक प्रायश्चित् पात्र इन तीनों बताए है–हस्तकर्म करनेवाले, मैथुन सेवन करनेवाले, रात्रि भोजन करनेवाले । (अनुद्घातिक जिस दोष की गुरु प्रायश्चित् से कठिनता से शुद्धि हो शकती है । वो)

[११२] पारांचिक प्रायश्चित् पात्र तीन बताए है–दुष्ट, प्रमत्त, परस्पर मैथुनसेवी । (पारांचिक-प्रायश्चित् के दश भेद में से सबसे कठिन प्रायश्चित्, दुष्ट-कषाय से और विषय से अधम बने, प्रमत्त, मद्य-विषय, कषाय, विकथा, निद्रा से प्रमादाधीन हुए)

[११३] अनवस्थाप्य प्रायश्चित् पात्र यह तीन बताए है । साधर्मिक चीज की चोरी करनेवाले, अन्यधर्मी की चीज की चोरी करनेवाले, हाथ से ताड़न करनेवाले ।

[११४-११५] जात नपुंसक, कामवासना दमन में असमर्थ, पुरुषत्वहीन कायर पुरुष इन तीन तरह के पुरुष को प्रवज्या देना, मुंड़ित करना, शिक्षा देने के लिए, उपस्थापना करने के लिए, एक मांड़ली में आहार करने के लिए या हंमेशा साथ रखने के लिए योग्य नहीं। यानि इन तीनों में से किसी को प्रवजित करने के आदि कार्य करना न कल्पे ।

[११६] अविनीत, घी आदि विगई में आसक्त, अनुपशान्त क्रोधी, इन तीन को वाचना देना न कल्पे, विनित, विगई में अनासक्त, उपशान्त क्रोधवाले को कल्पे ।

[११७-११८] दुष्ट-तत्त्वोपदेष्टा प्रति द्वेष रखनेवाले, मूल-गुणदोष से अनभिज्ञ, व्युद्ग्राहित, अंधश्रद्धावाला दुराग्रही यह तीन दुर्बोध्य बताए है । अदुष्ट, अमुढ़, अव्युद्ग्राहित् यह तीन सुबोध्य बताए है ।

[११९-१२०] ग्लान साध्वी हो तो उसके पिता, भाई या पुत्र और ग्लान साधु हो तो उसकी माता, बहन या पुत्री वो साधु या साध्वी गिर रहे हो तो हाथ का सहारा दे, गिर गए हो तो खड़े करे, अपने आप खड़ा होना-बैठने के लिए असमर्थ हो तो सहारा दे तब वो साधु-साध्वी विजातीय व्यक्ति के स्पर्श की (पूर्वानुभूत मैथुन की स्मृति से) अनुमोदना करे तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान आता है ।

[१२१-१२२] साधु-साध्वी ने अशन आदि आहार प्रथम पोरिसी यानि कि प्रहर में ग्रहण किया है और अन्तिम पोरिसि तक का काल या दो कोश की हद से ज्यादा दूर के क्षेत्र तक अपने पास रखे या इस काल और क्षेत्र हद का उल्लंघन तक वो आहार रह जाए तो वो आहार खुद न खाए, अन्य साधु-साध्वी को न दे, लेकिन एकान्त में सर्वथा अचित्त स्थान पर परठवे । यदि ऐसा न करते हुए खुद खाए या दुसरे साधु-साध्वी को दे तो लघुचौमासी प्रायश्चित् के भागी होते है ।

[१२३] आहार के लिए गृहस्थ के गृह समुदाय में प्रवेश करके निर्ग्रन्थ को उद्गम उत्पादन और एषणा दोष में से किसी एक दोषयुक्त अनेषणीय अन्न-पान ग्रहण कर लिया हो तो वो आहार उसी वक्त "उपस्थापना न की गई हो ऐसे" शिष्य को दे देना या एषणीय आहार देने के बाद देना कल्पे । यदि कोई अनुपस्थापित शिष्य न हो तो वो अनेषणीय आहार खुद न खाए, दुसरों को न दे, लेकिन एकान्त ऐसे अचित्त स्थान में प्रतिलेखन-प्रमार्जन करके परठना चाहिए ।

[१२४] जो अशन आदि आहार कल्पस्थित (अचेलक आदि दश तरह के कल्प में स्थित प्रथम चरम जिन शासन के साधु) के लिए बनाया हो तो अकल्पस्थित (अचेलक आदि कल्प में स्थित नहीं है ऐसे मध्य के बाईस जिनशासन के साधु) को कल्पे ।

[१२५] यदि कोई भिक्षु स्वगण में से नीकलकर अन्य गण का स्वीकार करना चाहे तो आचार्य उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणि, गणधर या गणावच्छेदक को पूछे बिना अन्य गण का स्वीकार करना न कल्पे लेकिन आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछकर अन्य गण का स्वीकार कल्पे । यदि वो आज्ञा दे तो अन्य गण का स्वीकार कल्पे । और यदि आज्ञा न दे तो अन्य गण का स्वीकार करना न कल्पे ।

[१२६] यदि गणावच्छेदक स्वगण में से नीकलकर अन्य गण का स्वीकार करना चाहे तो पहले अपना पद छोड़कर अन्य गण का स्वीकार करना कल्पे, आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछे बिना अन्य गण का स्वीकार करना न कल्पे लेकिन यदि पूछकर आज्ञा दे तो कल्पे और आज्ञा न दे तो न कल्पे ।

[१२७] यदि आचार्य या उपाध्याय शायद अपने गण में से नीकलकर दुसरे गण में जाना चाहे तो उनको अपना पद त्याग करके दुसरे गण में जाना कल्पे । (जिन्हें अपना पद भार सौंपा हो ऐसे) आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछे बिना अन्य गण का स्वीकार करना न कल्पे पूछने के बाद आज्ञा मिले तो अन्यगण में जाना कल्पे और आज्ञा न मिले तो जाना न कल्पे।

[१२८-१३०] यदि कोई साधु-गणावच्छेदक, आचार्य या उपाध्याय अपने गण से नीकलकर दुसरे गण के साथ मांड़ली व्यवहार करना चाहे तो यदि पद स्थान पर हो तो अपने पद का त्याग करना और सभी आचार्य यावत् गणावच्छेदक की आज्ञा लिए बिना न कल्पे यदि आज्ञा मांगे और आचार्य आदि से उन्हें आज्ञा मिले तो अन्य गण के साथ मांड़ली व्यवहार कल्पे, यदि आज्ञा न मिले तो न कल्पे-अन्य गण में उत्कृष्ट धार्मिक शिक्षा आदि प्राप्त न होने से न कल्पे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१३१-१३३] यदि कोई साधु, गणावच्छेदक, आचार्य या उपाध्याय दुसरे गण के आचार्य या उपाध्याय का गुरु भाव से स्वीकार करना चाहे तो जो पदस्थ है उन्हें अपने पद का त्याग करना और भिक्षु आदि सबको आचार्य यावत् गणावच्छेदक की आज्ञा लेनी चाहिए। यदि आज्ञा मांगे लेकिन आज्ञा न मिले तो अन्य आचार्य उपाध्याय का गुरु भाव से स्वीकार न कल्पे । यदि आज्ञा दे तो कल्पे । स्वगण के आचार्य-उपाध्याय को कारण बताए बिना अन्य आचार्य-उपाध्याय का गुरुभाव से स्वीकार करना न कल्पे लेकिन कारण बताकर कल्पे।

[१३४] यदि कोई साधु रात को या विकाल संध्या के वक्त मर जाए तो उस मृत भिक्षु के शरीर को किसी वैयावच्च करनेवाले साधु एकान्त में सर्वथा अचित्त प्रदेश से परठने के लिए चाहे तब यदि वहाँ उपयोग में आ शके वैसा गृहस्थ का अचित्त उपकरण हो तो वो उपकरण गृहस्थ का ही है ऐसा मानकर ग्रहण करे । उससे उस मृत भिक्षु के शरीर को एकान्त में सर्वथा अचित्त प्रदेश में परठवे । उसके बाद उस उपकरण को यथास्थान रख दो।

[१३५] यदि कोई साधु कलह करके उस कलह को उपशान्त न करे तो उसे गृहस्थ के घर में भक्त-पान के लिए प्रदेश-निष्क्रमण करना स्वाध्याय, भूमि या मल-मूत्र त्याग भूमि में प्रवेश करना, एक गाँव से दूसरे गाँव जाना, एक गण से दुसरे गण में जाना, वर्षावास रहना न कल्पे जहाँ वो अपने बहुश्रुत या बहु आगमज्ञ आचार्य या उपाध्याय को देखे वहाँ उनके पास आलोचना-प्रतिक्रमण, निंदा-गर्हा करे, पाप से निवृत्त हो, पाप फल से शुद्ध हो, पुनः पापकर्म न करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो, यथायोग्य तपकर्म प्रायश्चित् स्वीकार करे, लेकिन वो प्रायश्चित् श्रुतानुसार दिया गया हो तो उसे ग्रहण करना लेकिन श्रुतानुसार न दिया हो तो ग्रहण न करना । यदि वो कलह करनेवाला श्रुतानुसार प्रस्थापित प्रायश्चित् स्वीकार न करे तो उसे गण से बाहर नीकाल देना ।

[१३६] जिस दिन परिहारतप स्वीकार किया हो उस दिन परिहार कल्प में रहनेवाले भिक्षु को एक घर से विपुल सुपाच्य आहार दिलाना आचार्य-उपाध्याय को कल्पे उसके बाद उसे अशन आदि आहार एक बार या बार-बार देना न कल्पे । लेकिन उसे खड़ा करना, बिठाना, बगल बदलना, उसके मल-मूत्र, कफ परठना, मल-मूत्र लिप्त उपकरण को शुद्ध करना आदि में से किसी एक तरह की वैयावच्च करना कल्पे । यदि आचार्य उपाध्याय ऐसा जाने कि यह ग्लान, भूखे, प्यासे तपस्वी दुबले और थककर गमनागमन रहित मार्ग में मूर्छित होकर गिर जाएंगे तो उसे अशन आदि आहार एक बार या बार-बार देना कल्पे ।

[१३७-१३८] गंगा, जमुना, सरयू, कोशिका, मही यह पाँच महा नदी समुद्रगामिनी है, प्रधान है, प्रसिद्ध है । यह नदियाँ एक महिने में एक या दो बार उतरना या नाँव से पार करना साधु-साध्वी को न कल्पे, शायद ऐसा मालूम हो कि कुणाला नगरी के पास ऐरावती नदी एक पाँव पानी में और एक पाँव भूमि पर रखकर पार की जा शकते है तो एक महिने में दो या तीन बार भी पार करना कल्पे यदि वो मुमकीन न हो तो एक महिने में दो या तीन बार उतरना या नाँव में पार करना न कल्पे ।

[१३९-१४२] जो उपाश्रय सूखा घास और घास के ढ़ग, चावल आदि का भूँसा और उसके ढ़ग, पाँच वर्णीय लील-फूल, अंड़, बीज, कीचड़, मकड़ी की जाल रहित हो लेकिन उपाश्रय की छत की ऊँचाई कान से भी नीची हो तो ऐसे उपाश्रय में साधु-साध्वी को शर्दी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्मी में रहना न कल्पे, लेकिन कान से ऊँची छत हो तो कल्पे, यदि खड़ी हुई व्यक्ति सीधे दो हाथ ऊपर करे तब उस हाथ की ऊँचाई से ज्यादा छत नीची हो तो उस उपाश्रय में वर्षा में रहना न कल्पे, यदि छत ऊँची हो तो कल्पे ।

उद्देशक-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-५

[१४३-१४६] किसी देव या देवी स्त्रीरूप की विकुवर्णाकर साधु को और किसी देवी या देव पुरुष रूप विकुर्वकर साध्वी को आलींगन करे और वो साधु या साध्वी स्पर्श का अनुमोदन करे तो मैथुन सेवन के दोष का हिस्सेदार होता है । और अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहार स्थान प्रायश्चित् का भागी बनता है ।

[१४७] जो किसी साधु कलह करे और उस कलह को उपशान्त किए बिना दुसरे गण में संमिलित होकर रहना चाहे तो उसे पाँच अहोरात्र का पर्याय छेद करना कल्पे और उस भिक्षु को सर्वथा शान्त-प्रशान्त करके पुनः उसी गण में वापस भेजना योग्य है । या गण की संमति के मुताबिक करना योग्य है ।

[१४८-१५१] जो साधु सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पहले भिक्षा चर्या करने के प्रतिज्ञावाले हो वो समर्थ, स्वस्थ और हंमेशा प्रतिपूर्ण आहार करते हो या असमर्थ अस्वस्थ और हंमेशा प्रतिपूर्ण आहार न करते हो तो ऐसे दोनों को सूर्योदय सूर्यास्त हुआ कि नहीं ऐसा शक हो या भरोसां हो तो भी सूर्योदय के पहले या सूर्यास्त के बाद जो आहार मुँह में, हाथ में या पात्र में हो वो परठवे और मुख आदि की शुद्धि कर ले तो जिनाज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता । यदि वो आहार खुद करे या दुसरे साधु को दे तो उसे रात्रि भोज सेवन का दोष और अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान प्रायश्चित् आता है ।

[१५२] यदि कोई साधु-साध्वी को रात्रि के या संध्या के वक्त पानी और भोजन सहित ऊबाल आए । तो उसे थूँककर वस्त्र आदि से मुँह साफ कर ले तो जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं होता । लेकिन यदि उछाला या उद्गाल को नीगल जाए तो रात्रि भोजन सेवन का दोष लगे और अनुद्घातिक-चातुर्मासिक परिहार स्थान प्रायश्चित् का हिस्सेदार बने ।

[१५३-१५४] कोई साधु-साध्वी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करे और पात्र में दो इन्द्रिय आदि जीव या सचित रज पड़ी हुई देखे तो जब तक उसे नीकालना या शोधन करना मुमकीन हो तो नीकाले या शोधन करे, यदि नीकालना या शोधन करना मुमकीन न हो तो वो आहार खुद न खाए, दुसरों को न दे, लेकिन किसी एकान्त अचित पृथ्वी का पड़िलेहण या प्रमार्जन करके वहाँ परठवे, उसी तरह पात्र में उष्ण आहार हो और उसके ऊपर पानी, पानी के कण या बूँद गिरे तो उस आहार का उपभोग करे लेकिन पूर्वगृहीत आहार ठंडा हो और उस पर पानी, पानी के कण बूँद गिरे तो वो आहार खुद न खाए, दुसरों को न दे लेकिन एकान्त अचित्त पृथ्वी का पड़िलेहण प्रमार्जन करके वहाँ परठवे ।

[१५५-१५६] कोई साध्वी रात के या सन्ध्या के वक्त मल-मूत्र का परित्याग करे या शुद्धि करे उस वक्त किसी पशु के पांख के द्वारा साध्वी की किसी एक इन्द्रिय को छू ले, या साध्वी के किसी छिद्र में प्रवेश पा ले और वो स्पर्श या प्रवेश सुखद है (आनन्ददायक है)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसी प्रशंसा करे तो उसे हस्तकर्म का दोष लगता है और वो अनुद्घातिक मासिक प्रायश्चित् की हिस्सेदार होती है ।

[१५७-१६१] साध्वी का अकेले–१. रहना, २. आहार के लिए गृहस्थ के घर आना-जाना, ३. मल-मूत्र त्याज्य या स्वाध्याय भूमि आना-जाना, ४. एक गाँव से दूसरे गाँव विचरण करना, ५. वर्षावास रहना ना कल्पे ।

[१६२-१६४] साध्वी का नग्न होना, पात्र रहित (कर-पात्री) होना, वस्त्ररहित होकर कार्योत्सर्ग करना न कल्पे ।

[१६५-१६६] साध्वी की गाँव यावत् संनिवेश के बाहर हाथ ऊपर करके, सूर्य के सामने मुँह करके एक पाँव पर खड़े रहकर आतापना लेना न कल्पे, लेकिन उपाश्रय में कपड़े पहनी हुई दशा में दोनों हाथ लम्बे करके पाँव समतोल रखकर खड़े होकर आतापना लेना कल्पे।

[१६७-१७८] साध्वी को इतनी बातें न कल्पे–१. ज्यादा देर कार्योत्सर्ग में खड़ा रहना, २. भिक्षुप्रतिमा धारण करना, ३. उत्कुटुक आसन पर बैठना, ४. दोनों पाँव पीछे के हिस्से को छू ले, गौ की तरह, दोनों पीछे के हिस्से के सहारे बैठकर एक पाँव हाथी की सूँड़ की तरह ऊपर करके, पद्मासन में, अर्ध पद्मासन में पाँच तरीके से बैठना, ५. वीरासन में बैठना ६. दंड़ासन में बैठना, ६. लंगड़ासन में बैठना, ७. अधोमुखी होकर रहना, ८. उत्तरासन में रहना, ९. आम्रकुब्जिकासन में रहना, ९. एक बगल में सोने का अभिग्रह करना, १०. गुप्तांग ढ़ँकने के लिए चार अंगूल चौड़ी पट्टी जिसे 'आकुंचन पट्टक'' कहते है वो रखना या पहनना (यह दश बाते साध्वी को न कल्पे ।)

[१७९] साधु को आकुंचन पट्टक रखना या पहनना कल्पे ।

[१८०-१८१] साध्वी को ''सावश्रय'' आसन में खड़े रहना या बैठना न कल्पे लेकिन साधु को कल्पे (सावश्रय यानि जिसके पीछे सहारा लेने के लिए लकड़ा आदि का तकिया लगा हो वैसी कुर्सी आदि)

[१८२-१८३] साध्वी को सविषाणपीठ (बैठने की खटिया, चोकी आदि) या फलक पर खड़े रहना, बैठना न कल्पे...साधु को कल्पे ।

[१८४-१८५] साध्वी को गोल नालचेवाला तुंबड़ा रखना या इस्तेमाल करना न कल्पे, साधु को कल्पे ।

[१८६-१८७] साध्वी को गोल (दंड़ी की) पात्र केसरिका (पात्रा पूजने की पुंजणी) रखनी या इस्तेमाल करना न कल्पे, साधु को कल्पे ।

[१८८-१८९] साध्वी को लकड़े की (गोल) दंडीवाला पादपौंछन रखना या इस्तेमाल करना न कल्पे, साधु को कल्पे ।

[१९०] साधु-साध्वी उग्र बिमारी या आतंक बिना एक दुसरे का मूत्र पीना या मूत्र से एक दुसरे की शुद्धि करना न कल्पे ।

[१९१-१९३] साधु-साध्वी को परिवासित (यानि रातमें रखा हुआ या कालातिक्रान्त ऐसे–१. तल जितना या चपटी जितना भी आहार करना और बूँद जितना भी पानी पीना, २. उग्र बिमारी या आतंक बिना अपने शरीर पर थोडा या ज्यादा लेप लगना, ३. बिमारी या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आतंक, सिवा तेल, घी, मक्खन या चरबी लगाना या घिसना वो सब काम न कल्पे ।

[१९४] परिहारकल्प स्थित (परिहार तप करते) साधु यदि वैयावच्च के लिए कहीं बाहर जाए और वहाँ परिहारतप का भंग हो जाए, वो बात स्थविर अपने ज्ञान से या दुसरों के पास सुनकर जाने तो उसे अल्प प्रायश्चित् देना चाहिए ।

[१९५] साधु-साध्वी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करे और वहाँ किसी एक तरह का पुलाक भक्त यानि कि असार आहार ग्रहण करे, यदि वो गृहीत आहार से उस साधु-साध्वी का निर्वाह हो जाए तो उसी आहार से अहोरात्र पसार करे लेकिन दुसरी बार आहार ग्रहण करने के लिए गृहस्थ के घर में उसका प्रवेश करना न कल्पे । लेकिन यदि उसका निर्वाह न हो शके तो आहार के लिए दुसरी बार भी गृहस्थ के घर जाना कल्पे-इस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

उद्देशक-६

[१९६] साधु-साध्वी को यह छ वचन बोलने न कल्पे, जैसे कि असत्य मिथ्याभाषण, दुसरों की अवहेलना करती बोली, रोषपूर्ण वचन, कर्कश कठोर वचन, गृहस्थ सम्बन्धी जैसे कि पिता-पुत्र आदि शब्द और कलह शान्त होने के बाद भी फिर से बोलना ।

[१९७] कल्प के छ प्रस्तार बताए है । यानि साध्वाचार के प्रायश्चित् के छ विशेष प्रकार बताए है । प्राणातिपात-मृषावाद-अदत्तादान-ब्रह्मचर्यभंग-पुरुष न होना या दास या दासिपुत्र होना–इन छ में से कोई आक्षेप करे . जब किसी एक साधु-साध्वी पर ऐसा आरोप लगाए तब पहली व्यक्ति को पूछा जाए कि तुमने इस दोष का सेवन किया है यदि वो कहे कि मैंने वो गलती नहीं की तो आरोप लगानेवाले को कहा जाए कि तुम्हारी बात का सबूत दो । यदि आरोप लगानेवाला सबूत दे तो दोष का सेवन करनेवाला प्रायश्चित् का भागी बने, यदि सबूत न दे शके तो आरोप लगानेवाला प्रायश्चित् के भागी बने ।

[१९८-२०१] साधु के पाँव के तलवे में तीक्ष्ण या सूक्ष्म काँटा-लकड़ा या पत्थर की कण लग जाए, आँख में सूक्ष्म जन्तु, बीज या रज गिरे और उसे खुद साधु या सहवर्ती साधु नीकालने के लिए या ढूँढ़ने के लिए समर्थ न हो तब साध्वी उसे नीकाले या ढूँढ़े तो जिनाज्ञा का उल्लंघन नही होता उसी तरह ऐसी मुसीबत साध्वी को हो तब साध्वी उसे नीकालने या ढूँढ़ने के लिए समर्थ न हो तो साधु उसे नीकाले तो जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं होता ।

[२०२-२०९] दुर्ग, विषमभूमि या पर्वत पर से सरकती या गिरती, दलदल, कीचड़, शेवाल या पानी में गिरती या डूबती नौका पर चड़ती या उतरती, विक्षिप्त चित्तवाली हो (तब पानी में अग्नि में या ऊपर से गिरनेवाली) ऐसी साध्वी को यदि कोई साधु पकड़ ले या सहारा देकर बचाए तो जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं होता, उसी तरह प्रलाप करती या अशान्त चित्तवाली, भूत-प्रेत आदि से पीड़ित, उन्मादवाली या पागल किसी तरह के उपसर्ग की कारण से गिरनेवाली या भटकती साध्वी को पकड़नेवाले या सहारा देनदेवाले साधु जिनाज्ञा न उल्लंघ न नहीं करता।

[२१०-२१३] कलह के वक्त रोकने के लिए, कठिन प्रायश्चित् की कारण से चलचित्त हुए, अन्नजल त्यागी संथारा स्वीकार किया हो और अन्य परिचारिका साध्वी की कमी हुई हो, गृहस्थ जीवन के परिवार की आर्थिक भींस की कारण से विचलित मनोदशा की कारण से धन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोलुप बन गइ हो तब इन सभी हालात में उस साध्वी को साधु ग्रहण करे, रोके, दूर ले जाए या सांत्वन आदि दे तो जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं होता ।

[२१४] कल्प यानि साधु-साध्वी की आचारमर्यादा के छ परिमन्थ अर्थात् घातक कहलाए है । इस प्रकार कौकुत्च्य यानि कुचेष्टा या भांड़ चेष्टा संयम की घातक है, मौखर्य-वाचाल लेकिन सत्य वचन की घातक है, तिंतिनक-यह लोभी है आदि बबड़ाट एषणा समिति का घातक है, चक्षु की लोलुपता ईर्या समिति की घातक है, इच्छा लोलुपता अपरिग्रहपन की घातक है और लोभ या वृद्धि से नियाणा करना मोक्षमार्ग-समकित के घातक है । क्योंकि भगवंत ने सभी जगह अनिदानकरण की ही प्रशंसा की है ।

[२१५] कल्पदशा (साधु-साध्वी की आचार मर्यादा) छ तरह की होती है । वो इस प्रकार सामायिक चारित्रवाले की छेदोपस्थापना रूप, परिहार विशुद्धि तप स्वीकार करनेवाले की, पारिहारिक तप पूरे करनेवाले की, जिनकल्प की और स्थविर कल्प की ऐसे छ तरह की आचार मर्यादा है । (विस्तार से समजने के लिए भाष्य और वृत्ति देखो) इस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

३५	बृहत्कल्प-छेदसूत्र-२-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३६ व्यवहार

छेदसूत्र-३- हिन्दी अनुवाद

उद्देशक-१

[१] जो साधु-साध्वी एक मास का प्रायश्चित् स्थान अंगीकार करके, सेवन करके, आलोचन करके तब यदि माया रहित आलोचना करे तो एक मास का प्रायश्चित् ।

[२-५] यदि साधु-साध्वी दो, तीन, चार, या पाँच मास का प्रायश्चित् स्थानक सेवन करके कपट रहित आलोवे तो उतने ही मास का प्रायश्चित् दे, यदि कपट सहित आलोवे तो हर एक में एक-एक मास का ज्यादा प्रायश्चित् यानि तीन, चार, पाँच, छ मास का प्रायश्चित्। पाँच मास से ज्यादा प्रायश्चित् स्थानक सेवन करनेवाले को माया रहित या माया सहित सेवन करे तो भी छ मास का ही प्रायश्चित्, क्योंकि छ मास के ऊपर प्रायश्चित् नहीं है ।

[६-१०] जो साधु-साध्वी बार-बार दोष सेवन करके एक, दो, दीन, चार या पाँच मास का प्रायश्चित् स्थानक सेवन करके आलोचना करते हुए माया रहित आलोवे तो उतने ही मास का प्रायश्चित् आता है, मायापूर्वक आलोवे तो एक-एक अधिक मास का प्रायश्चित् आए यानि एक मासवाले को दो मास, दो मासवाले को तीन मास, यावत् पाँच मासवाले को छ मास प्रायश्चित् । पाँच मास से ज्यादा समय का प्रायश्चित् स्थान सेवन करके कपट सहित या रहित आलोचना करे तो भी छ मास का प्रायश्चित् आता है क्योंकि छ मास से ज्यादा प्रायश्चित् नहीं है । जिस तीर्थंकर के शासन में जितना उत्कृष्ट तप हो उससे ज्यादा प्रायश्चित् नहीं आता।

[११-१२] जो साधु-साध्वी एक बार दोष सेवन करके या ज्यादा बार दोष सेवन करके एक, दो, तीन, चार या पाँच मास का उतने पूर्वोक्त प्रायश्चित् स्थानक में से अन्य किसी भी प्रायश्चित् स्थान सेवन करके यदि माया रहित आलोचना करे तो उसे उतने ही मास का प्रायश्चित् आता है और मायापूर्वक आलोचना करे तो एक मास अधिक यानि दो, तीन, चार, पाँच, छ मास का प्रायश्चित् आता है पाँच मास से अधिक "पाप सेवन" करनेवाले को माया रहित या सहित आलेवो तो भी छ मास का ही प्रायश्चित् आता है ।

[१३-१४] जो साधु-साध्वी एक बार या बार-बार चार मास का या उससे ज्यादा, पाँच मास का या उससे ज्यादा पहले कहने के मुताबिक प्रायश्चित् स्थानक में से किसी भी प्रायश्चित् स्थानक का सेवन करके माया रहित आलोचना करे तो उतना ही प्रायश्चित् आता है लेकिन माया पूर्वक आलोचना करे तो क्रमिक पाँच मास उससे कुछ ज्यादा और छ मास का प्रायश्चित् आता है लेकिन माया सहित या रहित आलोचना का छ मास से अधिक प्रायश्चित् नहीं आता ।

[१५-१८] जो साधु-साध्वी एक बार या बार-बार चार मास का, साधिक चार मास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का, पाँच मास का, साधिक पाँच मास का प्रायश्चित् स्थानक में से अनोखा (दुसरा किसी भी) पाप स्थानक सेवन करके आलोचना करते हुए माया रहित या मायापूर्वक आलोचते हुए सकल संघ के सन्मुख परिहार तप की स्थापना करे, स्थापना करने उसकी वैयावच्च करवाए । यदि सम्पूर्ण प्रायश्चित् लगाए तो उसे वहीं परिहार तप में रख देना । वो कई दोष लगाए उसमें जो प्रथम दोष लगा हो वो पहले आलोवे पहला दोष बाद में आलोवे, बाद के दोष पहले आलोवे, बाद के दोष बाद में आलोवे तो चार भेद मानना । सभी अपराध की आलोचना करेंगे ऐसा संकल्प करते वक्त माया रहित आलोचना करने की सोचे और आलोचना भी माया रहित करे, माया सहित सोचकर माया रहित आलोवे, माया रहित सोचकर माया सहित आलोवे माया सहित सोचे और माया सहित आलोवे ऐसे चार भदे जानना ।

इस तरह आलोचना करके फिर सभी अपने किए हुए कर्म समान पाप को इकट्ठे करके प्रायश्चित् दे । उस तरह प्रायश्चित् तप के लिए स्थापन किए साधु को तप पूर्ण होने से बाहर नीकलने से पहले फिर से किसी दोष का सेवन करे तो उस साधु को पूरी तरह से उस परिहार तप में फिर से रखना चाहिए ।

[१९] बहुत प्रायश्चित् वाले - बहुत प्रायश्चित् न आए हो ऐसे साधु इकट्ठे रहना या बैठना चाहे, चिन्तवन करे लेकिन स्थविर साधु को पूछे बिना न कल्पे । स्थविर को पूछकर ही कल्पे । यदि स्थविर आज्ञा दे कि तुम इकट्ठे विचरो तो इकट्ठे रहना या बैठना कल्पे, यदि स्थविर इकट्ठे विचरने की अनुमति न दे तो वैसा करना न कल्पे, यदि स्थविर की आज्ञा बिना दोनों इकट्ठे रहे, बैठे या वैसा करने का चिन्तवन करे तो उस साधु को उतने दिन का छेद या परिहार तप प्रायश्चित् आता है ।

[२०-२२] परिहार तप में रहे साधु बाहर स्थविर की वैयावच्च के लिए जाए तब स्थविर उस साधु को परिहार तप याद करवाए, याद न दिलाए या पहले याद हो लेकिन जाते वक्त याद करवाना रह जाए तो साधु को एक रात का अभिग्रह करके रहना कल्पे और फिर जिस दिशा में दुसरे साधर्मिक साधु साध्वी विचरते हो उस दिशा में जाए लेकिन वहाँ विहार आदि निमित्त से रहना न कल्पे लेकिन बिमारी आदि की कारण से रहना कल्पे वो कारण पूरी होने पर दुसरे कहे कि अहो आर्य ! एक या दो रात रहे तो वो वैयावच्च के लिए जानेवाले परिहार तपसी को एक या दो रात रहना कल्पे । लेकिन यदि एक या दो रात से ज्यादा रहे तो जितना ज्यादा रहे उतने दिन का छेद या परिहार तप प्रायश्चित् आता है ।

[२३-२५] यदि कोई साधु, गणावच्छेदक, आचार्य या उपाध्याय गण को छोड़कर एकलविहारी प्रतिमा (अभिग्रहविशेष) अंगीकार करके विचरे (बीच में किसी दोष लगाए) फिर से वो ही गण (गच्छ) को अंगीकार करके विचरना चाहे तो उन साधु, गणावच्छेदक, आचार्य या उपाध्याय को फिर से आलोचना करवाए, पड़िकमावे, उसे छेद या परिहार तप प्रायश्चित् के लिए स्थापना करे ।

[२६-३०] जो साधु (गच्छ) गण छोड़कर पासत्थारूप से, स्वच्छंदरूप से, कुशीलरूप से, आसन्नरूप से, संसक्तरूप से विचरण करे और वो फिर से उसी (गच्छ) गण को अंगीकार करके विचरण करना चाहे तो उसमें थोड़ा भी चारित्र हो तो उसे आलोचना करवाए, पड़िकमाए, छेद या परिहार तप में स्थापना करे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३१-३२] जो साधु गण (गच्छ) को छोड़कर (कारणविशेष) पर पाखंड़ी रूप से विचरे फिर उसी गण (गच्छ) को अंगीकार करके विहरना चाहे तो उस साधु को चारित्र छेद या परिहार तप प्रायश्चित् की किसी प्रत्यक्ष कारण नहीं दिखती, केवल उसे आलोचना देना, लेकिन जो साधु गच्छ छोड़कर गृहस्थ पर्याय धारण करे वो फिर उसी गच्छ में आना चाहे तो उसे छेद या परिहार तप प्रायश्चित् नहीं है । उसे मूल से ही फिर से दीक्षा में स्थापन करना चाहिए।

[३३-३५] जो साधु अन्य किसी अकृत्य स्थान (न करने लायक स्थान) सेवन करके आलोचना करना चाहे तो जहाँ खुद के आचार्य उपाध्याय हो वहाँ जाकर उनसे विशुद्धि करवाना कल्पे । फिर से वैसा करने के लिए तत्पर होना और योग्य तप रूप कर्म द्वारा प्रायश्चित् ग्रहण करना । यदि अपने आचार्य उपाध्याय पास में न मिले तो जो गुणग्राही गम्भीर साधर्मिक साधु बहुश्रुत, प्रायश्चित् दाता, आगम ज्ञाता ऐसे सांभोगिक एक मांडलीवाले साधु हो उनके पास दोष का सेवन करके साधु आलोचन आदि करके शुद्ध हो, अब यदि एक मांडलीवाले ऐसे साधर्मिक साधु न मिले तो ऐसे ही अन्य गच्छ के सांभोगिक, वो भी न मिले तो ऐसे ही वेशधारी साधु, वो भी न मिले वो ऐसे ही श्रावक कि जिन्होंने पहले साधुपन रखा है और बहुश्रुत-आगम ज्ञाता है लेकिन हाल में श्रावक है, वो भी न मिले तो समभावी गृहस्थज्ञाता और वो भी न मिले तो बाहर नगर, निगम, राजधानी, खेड़ा, कसबा, मंडप, पाटण, द्रोणमुख, आश्रम या संनिवेश के लिए पूर्व या उत्तर दिशा के सामने मुख करके दो हाथ जुड़कर मस्तक झुकाकर, मस्तक से अंजलि देकर वो दोष सेवन करके साधु इस प्रकार बोले कि जिस तरह मेरा अपराध है, ''मैं अपराधी हूँ' ऐसे तीन बार बोले फिर अरिहंत और सिद्ध की मौजुदगी में आलोचना करे, प्रतिक्रमण, विशुद्धि करे फिर वो पाप न करने के लिए सावध हो और फिर अपने दोष के मुताबिक योग्य तपकर्म रूप प्रायश्चित् ग्रहण करे । (संक्षेप में कहा जाए तो अपने आचार्य-उपाध्याय, वो न मिले तो बहुश्रुत-बहुआगमज्ञाता ऐसे सांभोगिक साधु,-फिर अन्य मांड़लीवाले सांभोगिक, फिर वेशधारी साधु, फिर दीक्षा छोड़ दी हो और वर्तमान में श्रावक हो वो, - फिर सम्यक्दृष्टि गृहस्थ, फिर अपने आप ईस तरह आलोचना करके शुद्ध बने ।) इस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

उद्देशक-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-२

[३६-३७] एक सामाचारी वाले और साधु के साथ विचरते हो तब उसमें से एक अकृत्य स्थानक को यानि दोष सेवन करे फिर आलोचना करे तब उसे प्रायश्चित् स्थान में स्थापित करना और दुसरे को वैयावच्च करना, लेकिन यदि दोनों अकृत्य स्थानक का सेवन करे तो एक की वडील की तरह स्थापना करके दुसरे को परिहार तप में रखना, उसका तप पूरा होने पर से वडील की तरह स्थापित करके और पहले को परिहार तप में स्थापित करना ।

[३८-३९] एक समाचारी वाले कईं साधु साथ में विचरते हो और उसमें से एक दोष का सेवन करे, फिर आलोचना करे तो उसे परिहार तप के लिए स्थापित करना और दुसरे उसकी वैयावच्च करे, यदि सभी साधु ने दोष का सेवन किया हो तो एक को वडीलरूप में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैयावच्च के लिए स्थापित करे और अन्य परिहार तप करे । वो पूरा होने पर वैयावच्च करनेवाले साधु परिहार तप करे और जिन्होंने तप पूरा किया है उनमें से कोइ उसकी वैयावच्च करे ।

[४०] परिहार तप सेवन करके साधु बिमार हो जाए, दुसरे किसी दोष-स्थान का सेवन करके आलोचना करे तब यदि वो परिहार तप कर शके तो उन्हें तप में रखे और दुसरों को उसकी वैयावच्च करना, यदि वो तप वहनकर शके ऐसे न हो तो अनुपरिहारी उसकी वैयावच्च करे, लेकिन यदि वो समर्थ होने के बावजुद अनुपरिहारी से वैयावच्च करवाए तो उसे सम्पूर्ण प्रायश्चित् में रख दो ।

[४१] परिहार कल्पस्थित साधु बिमार हो जाए तब उसको गणावच्छेदक निर्यामणा करना न कल्पे, अग्लान होवे तो उसकी वैयावच्च जब तक वो रोग मुक्त होवे तब तक करनी चाहिए, बाद में उसे 'यथालघुसक' नामक व्यवहार में स्थापित करे ।

[४२] 'अनवस्थाप्य' साधु के लिए उपरोक्त कथन ही जानना ।

[४३] 'पारंचित' साधु के लिए भी उपरोक्त कथन ही जानना ।

[४४-५२] व्यग्रचित्त या चित्तभ्रम होनेवाला, हर्ष के अतिरेक से पागल होनेवाला, भूत-प्रेत आदि वलगाडवाले, उन्मादवाले, उपसर्ग से ग्लान बने, क्रोध-कलह से बिमार, काफी प्रायश्चित् आने से भयभ्रान्त बने, अनसन करके व्यग्रचित्त बने, धन के लोभ से चित्तभ्रम होकर बिमार बने किसी भी साधु गणावच्छेदक के पास आए तो उसे बाहर नीकालना न कल्पे । लेकिन नीरोगी साधु को वो बिमारी से मुक्त न हो तब तक उसकी वैयावच्च करनी चाहिए । वो रोगमुक्त हो उसके बाद ही उसे प्रायश्चित् में स्थापित करना चाहिए ।

[५३-५८] अनवस्थाप्य या पारंचित प्रायश्चित् को वहन कर रहे साधु को गृहस्थ वेश दिए बिना गणावच्छेदक को पुनः संयम में स्थापित करना न कल्पे, गृहस्थ का (या उसके जैसे) निशानीवाला करके स्थापित करना कल्पे, लेकिन यदि उसके गण को (गच्छ या श्रमणसंघ को) प्रतीति हो यानि कि योग्य लगे तो गणावच्छेदक को वो दोनों तरह के साधु को गृहस्थवेश देकर या दिए बिना संयममें स्थापित करे ।

[५९] समान समाचारीवाले दो साधु साथ में विचरते हो, उसमें से किसी एक अन्य किसी को आरोप लगाने को अकृत्य (दोष) स्थान का सेवन करे, फिर आलोचना करे कि मैंने अमुक साधु को आरोप लगाने के लिए दोष स्थानक सेवन किया है । तब (आचार्य) दुसरे साधु को पूछे कि हे आर्य ! तुमने कुछ दोष का सेवन किया है या नहीं ? यदि वो कहे कि दोष का सेवन किया है तो उसे प्रायश्चित् दे और ऐसा कहे कि मैने दोष सेवन नहीं किया तो प्रायश्चित् न दे । जो प्रमाणभूत कहे इस प्रकार (आचार्य) व्यवहार करे । अब यहाँ शिष्य पूछता है कि हे भगवन्त ऐसा क्यों कहा ? तब उत्तर दे कि यह "सच्ची प्रतिज्ञा व्यवहार" है। यानि कि अपड़िसेवी को अपड़ीसेवी और पड़िसेवी को पड़िसेवी करना ।

[६०] जो साधु अपने गच्छ से नीकलकर मोह के उदय से असंयम सेवन के लिए निमित्त से जाए । राह में चलते हुए उसके साथ भेजे गए साधु उसे उपशान्त करे तब शुभ कर्म के उदय से असंयम स्थान सेवन किए बिना फिर उसी गच्छ में आना चाहे तब उसने असंयम स्थान सेवन किया या नहीं ऐसी चर्चा स्थविर में हो तब साथ गए साधु को पूछे, हे आर्य ! वो दोष का प्रतिसेवी है या अप्रतिसेवी ? यदि वो कहे कि उसने दोष का सेवन नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया तो प्रायश्चित् न दे । यदि वो कहे कि दोष सेवन किया है तो प्रायश्चित् दे । वो साधु जिस प्रकार बोले इस प्रकार निश्चय ग्रहण करना । शिष्य पूछता है कि हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा ? तब गुरु उत्तर देते है कि, 'सद्धी प्रतिज्ञा व्यवहार' इस प्रकार है ।

[६१] एकपक्षी यानि कि एक गच्छवर्ती साधुओ को आचार्य उपाध्याय कालधर्म पाए तब गण की प्रतीति के लिए यदि पदवी के योग्य कोई न मिले तो ईत्वर यानि कि अल्पकाल के लिए दुसरों को उस पदवी के लिए स्थापन करना ।

[६२] कईं पड़िहारी (प्रायश्चित् सेवन करनेवाले) और कईं अपड़िहारी यानि कि दोष रहित साधु इकट्ठे बँसना चाहे तो वैयावच्च आदि की कारण से एक, दो, तीन, चार, पाँच या छह मास साथ रहे तो साथ आहार करे या न करे, उसके बाद एक मास साथ में आहार करे। (वृत्तिगत विशेष) स्पष्टीकरण इस यह है कि जो पड़िहारी की वैयावच्च करते है ऐसे अपड़िहारी साथ आहार करे लेकिन जो वैयावच्च नहीं करते वो साथ में आहार न करे । वैयावच्चवाले भी तप पुरा हो तब तक ही सहभोजी रहे, या ज्यादा से एक मास साथ रहे ।

[६३] परिहार कल्पस्थिति में रहे (यानि प्रायश्चित् वहन करनेवाले) साधु को (अपने आप) अशन, पान, खादिम, स्वादिम देना या दिलाना न कल्पे । यदि स्थविर आज्ञा दे कि हे आर्य ! तुम यह आहार उस परिहारी को देना या दिलाना तो देना कल्पे यदि स्थविर की आज्ञा हो तो परिहारी साधु को विगई लेना कल्पे ।

[६४] परिवार कल्पस्थित साधु स्थविर की वैयावच्च करते हो तब (अपने आहार अपने पात्र में और स्थविर का आहार स्थविर के पात्र में ऐसे अलग-अलग लाए) पड़िहारी अपना आहार लाकर बाहर स्थविर की वैयावच्च के लिए फिर से जाते है तब (यदि) स्थविर कहे कि हे आर्य ! तुम्हारे पात्र में हमारे आहार-पानी भी साथ लाना । हम वो आहार करेंगे पानी पीएंगे तो पड़िहारी के साथ आहार पानी लाना कल्पे । अपड़िहारी को पड़िहारी के पात्र में लाए गए अशन आदि खाना या पीना न कल्पे लेकिन अपने पात्र में, हमारे भाजन या कमढ़ग-एक पात्र विशेष या मुट्ठी या हाथ पर लेकर खाना या पीना कल्पे । इस प्रकार का कल्प अपरिहारी का परिहारी के लिए जानना ।

[६५] परिहार कल्प स्थित साधु स्थविर के पात्र लेकर बाहर स्थविर की वैयावच्च के लिए जाते देखकर स्थविर उस साधु को ऐसा कहे कि हे आर्य ! तुम्हारा आहार भी साथ में उसी पात्र में लाना और तुम भी उसे खाना और पानी पीना तो इस प्रकार लाना कल्पे लेकिन वहाँ परिहारी को अपरिहारी स्थविर के पात्र में अशन आदि आहार खाना या पीना न कल्पे लेकिन वो परिहारी साधु अपना पात्र या भाजन या कमंड़ल (एक पात्र विशेष) या मुट्ठी या हाथ में लेकर खाना या पीना कल्पे । इस प्रकार अपरिहारी के लिए परिहारी का कल्प आचार जानना-इस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

उद्देशक-३

[६६] साधु गच्छ नायकपन धारण करना चाहे तो हे भगवंत ! यदि वो साधु आयारो-निसीह आदि सूत्र संग्रह रहित है तो गच्छनायकपन धारण कर शके ? यदि ऐसा न हो तो गच्छ नायकपन धारण करना न कल्पे लेकिन यदि वो आयारो निसीह आदि सूत्र संग्रह सहित और शिष्य आदि परिवारवाला हो तो गच्छ नायकपन धारण कर शके ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६७] जो कोई साधु गच्छ नायकपन धारण करना चाहे उसे स्थविर को पूछे बिना गच्छ नायकपन धारण करना न कल्पे स्थविर को पूछकर गच्छ नायकपन धारण करना कल्पे स्थविर आज्ञा दे तो कल्पे और आज्ञा न दे तो न कल्पे । जितने दिन वो आज्ञा रहित गच्छ नायकपन धारे तो उतने दिन का छेद या तप का प्रायश्चित् आता है ।

[६८-६९] तीन साल का पर्याय हो ऐसे श्रमण-निर्ग्रन्थ हो और फिर जो आचार-संयम, प्रवचन-गच्छ की सार संभालादिक संग्रह और पाणेसणादि उपग्रह के लिए कुशल हो, जिसका आचार खंडीत नहीं हुआ, भेदन नहीं हुआ, सबल दोष नहीं लगा, संक्लिष्ट आचार युक्त चित्तवाला नहीं, बहुश्रुत, कई आगम के ज्ञाता, जघन्य से आचार प्रकल्प-निसीह सूत्रार्थ के धारक है ऐसे साधु को उपाध्याय पद देना कल्पे—लेकिन जो उक्त आचार आदि में कुशल नहीं है, और फिर अक्षत् आचार आदि नहीं है ऐसे श्रमण-निर्ग्रथ का तीन साल का दीक्षापर्याय हो तो भी पदवी देना न कल्पे ।

[७०-७१] पाँच साल के पर्यायवाले श्रमण-निर्ग्रन्थ यदि आचार-संयम, प्रवचन-गच्छ की सर्व फिक्र की प्रज्ञा— उपधि आदि के उपग्रह में कुशल हो, जिसका आचार छेदन-भेदन न हो क्रोधादिक से जिसका चारित्र मलिन नहीं और फिर जो बहुसूत्री आगमाज्ञाता है और जघन्य से दसा-कप्प-व्यवहार सूत्र के धारक है उन्हें यह पद देना न कल्पे ।

[७२-७३] आठ साल के पर्यायवाले श्रमण-निर्ग्रन्थ में ऊपर के सर्व गुण और जघन्य से ठाणं, समवाओ के ज्ञाता हो उसे आचार्य से गणावच्छेदक पर्यन्त की पदवी देना कल्पे, लेकिन जिनमें उक्त गुण नहीं है उसे आचार्य-आदि पदवी देना न कल्पे ।

[७४] निरुद्धवास पर्याय - (एक बार दीक्षा लेने के बाद जिसका पर्याय छेद हुआ है ऐसे) श्रमण निर्ग्रन्थ को उसी दिन आचार्य-उपाध्याय पदवी देना कल्पे, हे भगवंत ! ऐसा क्यों कहा ? उस स्थविर साधु को पूर्व के तथारूप कुल है । जैसे कि प्रतीतिकारक, दान देने में धीर, भरोसेमंद, गुणवंत, साधु बार-बार वहोरने पधारे उसमें खुशी हो और दान देने में दोष न लगाए ऐसे, घर में सबको दान देने की अनुज्ञा है, सभी समरूप से दान देनेवाले है और फिर उस कुल की प्रतीति करके-धृति करके यावत् समरूप दान करके जो निरुद्ध पर्यायवाले श्रमण निर्ग्रन्थ से दीक्षा ली उन्हे आचार्य-उपाध्याय रूप से उसी दिन भी स्थापन करना कल्पे।

[७५] निरुद्ध वास पर्याय - पहले दीक्षा ली हो उसे छोड़कर पुनः दीक्षा लिए कुछ साल हुए हो ऐसे श्रमण-निर्ग्रन्थ को आचार्य-उपाध्याय कालधर्म पाए तब पदवी देना कल्पे। यदि वो बहुसूत्री न हो तो भी समुचयरूप से वो आचारप्रकल्प-निसीह के कुछ अध्ययन पढ़े है और बाकी के पढ़ूँगा ऐसा चिन्तवन करते है वो यदि पढ़े तो उसे आचार्य उपाध्याय की पदवी देना कल्पे लेकिन पढ़ूँगा ऐसा कहकर न पढ़े तो उसे पदवी देना न कल्पे ।

[७६-७७] वो साधु जो दीक्षा में छोटे है । तरुण है । ऐसे साधु की आचार्य-उपाध्याय काल कर गए हो उनके बिना रहना न कल्पे, पहले आचार्य और फिर उपाध्याय की स्थापना करके रहना कल्पे । ऐसा क्यों कहा ? वो साधु नए है-तरुण है इसलिए उसे आचार्य-उपाध्याय यादि के संग बिना रहना न कल्पे यदि साध्वी नव दीक्षित और तरुण हो तो उसे आचार्य-उपाध्याय प्रवर्तिनी कालधर्म पाए तब उनके बिना रहना न कल्पे लेकिन पहले आचार्य फिर उपाध्याय- फिर प्रवर्तिनी ऐसे स्थापना करके तीनों के संग में रहना कल्पे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[७८-८०] जो साधु गच्छ को छोड़कर जाए, फिर मैथुन सेवन करे, सेवन करके फिर दीक्षा ले तो उसे दीक्षा लेने के बाद तीन साल तक आचार्य से गणावच्छेदक तक का पदवी देना या धारण करना न कल्पे । तीन साल बीतने के बाद चौथे साल स्थिर हो, उपशान्त हो, क्लेष से निवर्ते, विषय से निवर्ते ऐसे साधु को आचार्य से गणावच्छेदक तक की छह पदवी देना या धारण करना कल्पे, लेकिन यदि गणावच्छेदक गणावच्छेदक की पदवी छोडे बिना मैथुनधर्म का सेवन करे तो जावज्जीव के लिए उसे आचार्य से गणावच्छेदक में से एक भी पदवी देना या धारण करना न कल्पे, लेकिन यदि वो गणावच्छेदक की पदवी छोडकर मैथुन सेवन करे तो तीन साल तक उसे पदवी देना न कल्पे, तीन साल बीतने के बाद चौथे साल वो स्थिर, उपशान्त, विषय, कषाय से निवर्तन किया हो तो आचार्य यावत् गणावच्छेदक की पदवी देना या धारण करना कल्पे ।

[८१-८२] आचार्य-उपाध्याय उनका पद छोड़े बिना मैथुन सेवन करे वो जावज्जीव के लिए उसे आचार्य यावत् गणावच्छेदक के छह पदवी देना या धारण करना न कल्पे, लेकिन यदि वो पदवी छोड़कर जाए, फिर मैथुन धर्म सेवन करे तो उसे तीन साल तक आचार्य पदवी देना या धारण करना न कल्पे लेकिन चौथा साल बैठे तब यदि वो स्थिर, उपशान्त, कषाय-विषय रहित हुआ हो तो उसे आचार्य आदि पदवी देना या धारण करना कल्पे ।

[८३-८७] यदि कोई साधु गच्छ में से नीकलकर विषय सेवन के लिए द्रव्यलिंग छोड़ देने के लिए देशान्तर जाए मैथुन सेवन करके फिर से दीक्षा ले । तीन साल तक उसे आचार्य आदि छ पदवी देना या धारण करना न कल्पे, तीन साल पूरा होने से चौथा साल बैठे तब यदि वो साधु स्थिर-उपशान्त-विषय-कषाय से निवर्तित हो तो उन्हे पदवी देना-धारण करना कल्पे, यदि गणावच्छेदक, आचार्य या उपाध्याय अपनी पदवी छोडे बिना द्रव्यलिंग छोड़कर असंयमी हो जाए तो जावज्जीव आचार्य-उपाध्याय पदवी देना या धारण करना न कल्पे, यदि पदवी छोडकर जाए और पुनःदीक्षा ग्रहण करे तो तीन साल पदवी देना न कल्पे आदि सर्वे पूर्ववत् जानना ।

[८८-९४] साधु जो किसी एक या ज्यादा, गणावच्छेदक, आचार्य, उपाध्याय या सभी बहुश्रुत हो, कई आगम के ज्ञाता हो । कई गाढ़-आगाढ़ की कारण से माया-कपट सहित झूठ बोले, असत्य भाखे उस पापी जीव को जावज्जीव के लिए आचार्य-उपाध्याय-प्रवर्तक, स्थविर गणि या गणावच्छेदक की पदवी देना या धारण करना न कल्पे ।

उद्देशक-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-४

[९५-९६] आचार्य-उपाध्याय को गर्मी या शीतकाल में अकेले विचरना न कल्पे, खुद के सहित दो का साथ विचरना कल्पे ।

[९७-९८] गणावच्छेदक को खुद के सहित दो लोगों को गर्मी या शीतकाल में विचरना न कल्पे, खुद के सहित तीन को विचरना कल्पे ।

[९९-१००] आचार्य-उपाध्याय को खुद के सहित दो को वर्षावास रहना न कल्पे, तीन को कल्पे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१०१-१०२] गणावच्छेदक को खुद के सहित तीन को वर्षावास रहना न कल्पे, चार को कल्पे ।

[१०३-१०४] वे गाँव, नगर, निगम, राजधानी, खेड़ा, कसबो, मंड़प, पाटण, द्रोणमुख, आश्रम, संवाह सन्निवेश के लिए अनेक आचार्य, उपाध्याय खुद के साथ दो, अनेक गणावच्छेदक को खुद के साथ तीन को आपस में गर्मी या शीत कालमें में विचरना कल्पे और अनेक आचार्य-उपाध्याय को खुद के साथ तीन और अनेक गणावच्छेदक को खुद के साथ चार को अन्योन्य निश्रा में वर्षावास रहना कल्पे ।

[१०५-१०६] एक गाँव से दुसरे गाँव विचरते, या चातुर्मास रहे साधु जो आचार्य आदि को आगे करके विचरते हो वो आचार्य आदि शायद काल करे तो अन्य किसी को अंगीकार करके उस पदवी पर स्थापित करके विचरना कल्पे । यदि किसी को कल्पाक-वडील रूप से स्थापन करने के उचित न हो और खुद आचार प्रकल्प-निसीह पढ़े हुए न हो तो उसको एक रात्री की प्रतिज्ञा अंगीकार करना, जिन दिशा में दुसरे साधर्मिक-एक मांडलीवाले साधु विचरते हो वो दिशा ग्रहण करना । जो कि उसे विहार निमित्त से वहाँ रहना न कल्पे लेकिन बिमारी आदि की कारण से वहाँ बँसना कल्पे, उसके बाद कोई साधु ऐसा कहे कि हे आर्य ! एक या दो रात यहाँ रहो, तो एक, दो रात वहाँ रहे यदि उससे ज्यादा रहे तो उसे उतनी रात का छेद या तप प्रायश्चित् आता है ।

[१०७-१०८] आचार्य-उपाध्याय बिमारी उत्पन्न हो तब या वेश छोडकर जाए तब दुसरों को ऐसा कहे कि हे आर्य ! मैं काल करु तब इसे आचार्य की पदवी देना । वे यदि आचार्य पदवी देने के योग्य हो तो उसे पदवी देना । योग्य न हो तो न देना । यदि कोई दुसरे वो पदवी देने के लिए योग्य हो तो उसे देना, यदि कोई वो पदवी के लिए योग्य न हो तो पहले कहा उसे ही पदवी देना । पदवी देने के बाद कोइ साधु ऐसा कहे कि हे आर्य ! तेरी यह पदवी दोषयुक्त है । इसलिए छोड दो । ऐसा कहने से वो साधु पद छोड दे तो उसे दीक्षा का छेद या तप का प्रायश्चित् नहीं होता । यदि पद छोडने योग्य हो और पदवी न छोडे तो उन सबको और पदवीधर को दीक्षा का छेद या परिहारतप प्रायश्चित् आता है ।

[१०९-११०] आचार्य-उपाध्याय जो नव दीक्षित छेदोपस्थापनीय (वड़ी दीक्षा) को उचित हुआ है ऐसा जानने के बाद भी या विस्मरण होने से उसके वडील चार या पाँच रात से ज्यादा उस नव दीक्षित को उपस्थापना न करे तो आचार्य आदि को प्रायश्चित् आता है। यदि उसके साथ पिता आदि किसी वडील ने दीक्षा ली हो और पाँच, दस या पंद्रह रात के बाद दोनों को साथ में उपस्थापन करे तो किसी छेद या परिहार प्रायश्चित् नहीं आता । लेकिन यदि वडील की उपस्थापना न करनी हो फिर भी नवदीक्षित की उपस्थापना न करे तो जितने दिन उपस्थापना न करे उतने दिन का छेद या परिहार तप प्रायश्चित् आता है ।

[१११] आचार्य-उपाध्याय स्मरण रखे या भूल जाए या नवदीक्षित साधु को (नियत वक्त के बाद) भी दशरात्रि जाने के बाद भी उपस्थापना (वड़ी दीक्षा) हुई नहीं । नियत सूत्रार्थ प्राप्त उस साधु के किसी वडील हो और उसे वडील रखने के लिए वो पढे नहीं तब तक साधु को उपस्थापना न करे तो कोई प्रायश्चित् नहीं आता लेकिन यदि किसी ऐसी कारण बिना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपस्थापना न करे तो ऐसा करनेवाले आचार्य आदि को एक साल तक आचार्य पदवी देना न कल्पे ।

[११२] जो साधु गच्छ को छोड़कर ज्ञान आदि कारण से अन्य गच्छ अपनाकर विचरे तब कोई साधर्मिक साधु देखकर पूछे कि हे आर्य ! किस गच्छ को अंगीकार करके विचरते हो ? तब उस गच्छ के सभी रत्नाधिक साधु के नाम दे । यदि रत्नाधिक पूछे कि किसकी निश्रा में विचरते हो ? तो वो सब बहुश्रुत के नाम दे और कहे कि जिस तरह भगवंत कहेंगे उस तरह उनकी आज्ञा के मुताबिक रहेंगे ।

[११३] बहुत साधर्मिक एक मांड़लीवाले साधु ईकट्ठे विचरना चाहे तो स्थविर को पूछे बिना वैसे विचरना या रहना न कल्पे । स्थविर को पूछे तब भी यदि वो आज्ञा दे तो इकट्ठे विचरना-रहना कल्पे यदि आज्ञा न दे तो न कल्पे । यदि आज्ञा के बिना विचरे तो जितने दिन आज्ञा बिना बिचरे उतने दिन का छेद या परिहार तप प्रायश्चित् आता है ।

[११४] आज्ञा बिना चलने के लिए प्रवृत्त साधु चार-पांच रात्रि विचरकर स्थविर को देखे तब उनकी आज्ञा बिना जो विचरण किया उसकी आलोचना करे, प्रतिक्रमण करे, पूर्व की आज्ञा लेकर रहे लेकिन हाथ की रेखा सूख जाए उतना काल भी आज्ञा बिना न रहे ।

[११५] कोइ साधु आज्ञा बिना अन्य गच्छ में जाने के लिए प्रवर्ते, चार या पाँच रात्रि के अलावा आज्ञा बिना रहे फिर स्थविर को देखकर फिर से आलोवे, फिर से प्रतिक्रमण करे, आज्ञा बिना जितने दिन रहे उतने दिन का छेद या परिहार तप प्रायश्चित् आता है । साधु के संयम भाव को टिकाए रखने के लिए दुसरी बार स्थविर की आज्ञा माँगकर रहे । उस साधु को ऐसा कहना कल्पे कि हे भगवंत् ! मुजे दुसरे गच्छ में रहने की आज्ञा दो तो रहूँ । आज्ञा बिना तो दुसरे गच्छ में हाथ की रेखा सूख जाए उतना काल भी रहना न कल्पे, आज्ञा के बाद ही वो काया से स्पर्श करे यानि प्रवृत्ति करे ।

[११६] अन्य गच्छ में जाने के लिए प्रवृत्त होकर निवर्तेल साधु चार या पाँच रात दुसरे गच्छ में रहे फिर स्थविर को देखकर सत्यरूप से आलोचना-प्रतिक्रमण करे आज्ञा लेकर पूर्व की आज्ञा में रहे लेकिन आज्ञा बिना पलभर भी न रहे ।

[११७] आज्ञा बिना चलने से निवृत्त होनेवाले साधु चार या पाँच रात गच्छ में रहे फिर स्थविर को देखकर फिर से आलोचना करे - प्रतिक्रमण करे - जितनी रात आज्ञा बिना रहे उतनी रात का छेद या परिहार तप प्रायश्चित् स्थविर उसे दे । साधु संयम के भाव से दुसरी बार स्थविर की आज्ञा लेकर अन्य गच्छ में रहे आदि पूर्ववत् ।

[११८-११९] दो साधर्मिक साधु इकट्ठे होकर विचरे । उसमें एक शिष्य है और एक रत्नाधिक है । शिष्य को पढ़े हुए साधु का परिवार बड़ा है, रत्नाधिक को ऐसा परिवार छोटा है । वो शिष्य रत्नाधिक के पास आकर उन्हें भिक्षा लाकर दे और विनयादिक सर्व कार्य करे, अब यदि रत्नाधिक का परिवार बड़ा हो और शिष्य का छोटा हो तो रत्नाधिक इच्छा होने पर शिष्य को अंगीकार करे, इच्छा न हो तो अंगीकार न करे, इच्छा हो तो आहार-पानी देकर वैयावच्च करे, इच्छा न हो तो न करे ।

[१२०-१२२] दो साधु, गणावच्छेदक, आचार्य या उपाध्याय बड़ो को आपस में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंदन आदि करे बिना रहना न कल्पे, लेकिन अन्योन्य एक-एक को वडीलरूप से अपनाकर विचरना कल्पे ।

[१२३-१२६] कुछ साधु, गणावच्छेदक, आचार्य या यह सब इकट्ठे होकर विचरे उनको अन्योन्य एक एक को वडील किए बिना विचरण न कल्पे । लेकिन छोटों को बड़ो को वडील की तरह स्थापित करके-वंदन करके विचरना कल्पे-ऐसा मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

उद्देशक-४-का मुनिदीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-५

[१२७-१२८] प्रवर्तिनी साध्वी को गर्मी और शीतकाल में खुद के साथ दो साध्वी का विचरना न कल्पे, तीन हो तो कल्पे ।

[१२९-१३०] गणावच्छेदणी साध्वी का शेष काल में खुद के साथ तीन को विचरना न कल्पे, चार को कल्पे ।

[१३१-१३४] वर्षावास यानि चौभासी रहना खुद के सहित प्रवर्तिनी को तीन साध्वी को और गणावच्छेदणी साध्वी को चार साध्वी को न कल्पे, लेकिन कुल चार साध्वी हो तो प्रवर्तिनी को आर पाँच साध्वी हो तो गणावच्छेदणी को कल्पे ।

[१३५-१३६] वो गाँव यावत् संनिवेश के लिए कई प्रवर्तिनी को खुद के सहित तीन को, कई गणावच्छेदणी को खुद के सहित चार को शेषकाल में अन्योन्य एक एक की निश्रा में विचरना कल्पे, वर्षावास रहना हो तो कई प्रवर्तिनी हो तो खुद के साथ चार को और कई गणावच्छेदणी हो तो पाँच की अन्योन्य निश्रा में रहना कल्पे ।

[१३७-१३८] एक गाँव से दुसरे गाँव विचरते हुए या वर्षावास में रहे साध्वी जिन्हें आगे करके विचरते हो तो बड़े साध्वी शायद काल करे तो उस समुदाय में रहे दुसरे किसी उचित साध्वी को वडील स्थापित करके उसकी आज्ञा में रहे, यदि वडील की तरह वैसे कोई उचित न मिले और अन्य साध्वी आचार-प्रकल्प से अज्ञान हो तो एक रात का अभिग्रह लेकर, जिन दिशा में उनकी मांड़ली की अन्य साध्वी हो वहाँ जाना कल्पे जो कि वहाँ विहार निमित्त से रहना न कल्पे लेकिन बिमारी आदि की कारण से रहना कल्पे । कारण पूरी होने पर यदि किसी दुसरे साध्वी कहे कि हे आर्या ! एक या दो रात्रि यहाँ रहो तो रहना कल्पे, उसके अलावा जितनी रात रहे उतना छेद या परिहार तक आता है ।

[१३९-१४०] प्रवर्तिनी साध्वी बिमारी आदि कारण से या मोह के उदय से चारित्र छोड़कर (मैथुन अर्थे) देशान्तर जाए तब अन्य को ऐसा कहे कि मैं काल करूँ तब या मेरे बाद मेरी पदवी इस साध्वी को देना । यदि वो उचित लगे तो पदवी दे, उचित न लगे तो न दे । उसे समुदाय में अन्य कोई योग्य लगे तो उसे पदवी दे, यदि कोई उचित न लगे तो पहले कहे गए अनुसार पदवी दे । ऐसा करने के बाद कोई साध्वी ऐसा कहे कि हे आर्या ! तुम्हारा यह पदवी दोषयुक्त है इसलिए उसे छोड दो तब वो साध्वी यदि पद छोडने के लिए प्रवृत्त न हो तो जितने दिन उनकी पदवी रहे उतने दिन का सबको छेद या तप प्रायश्चित् आता है ।

[१४१-१४२] दीक्षा आश्रित करके नए या तरुण साधु..या साध्वी हो उसे आचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकल्प - निसीह अध्ययन भूल जाए तो उसे पूछो कि हे आर्य ! किस कारण से तुम आचार प्रकल्प अध्ययन भूल गए बिमारी से या प्रमाद से ? यदि वो ऐसा कहे कि बिमारी से नहीं लेकिन प्रमाद से भूल गए तो उसे जावज्जीव के लिए पदवी मत देना यदि ऐसा कहे कि बिमारी से भूल गए प्रमाद से नहीं तो फिर से पाठ दो और पदवी भी दो लेकिन यदि वो पढ़ूँगा ऐसा कहकर पढ़ाई न करे या पहले का याद न करे तो उसे पदवी देना न कल्पे ।

[१४३-१४४] स्थविर साधु उम्र होने से आचार प्रकल्प अध्ययन भूल जाए तब यदि फिर से अध्ययन याद करे तो उसे आचार्य आदि छ पदवी देना या धारण करना कल्पे । यदि उसे याद न आए तो पदवी देना-धारण करना न कल्पे, वो स्थविर यदि शक्ति हो तो बैठे-बैठे आचार प्रकल्प याद करे और शक्ति न हो तो सोते-सोते या बैठकर भी याद करे ।

[१४५-१४६] यदि साधु-साध्वी सांभोगिक हो (गोचरी-शय्यादि उपधि आपस में लेने-देने की छूट हो वैसे एक मांडलीवाले सांभोगिक कहलाते है ।) उन्हें कोई दोष लगे तो अन्योन्य आलोचना करना कल्पे, यदि वहाँ कोई उचित आलोचना दाता हो तो उनके पास से आलोचना करना कल्पे । यदि वहाँ कोई उचित न हो तो आपस में आलोचना करना कल्पे, लेकिन वो सांभोगिक साधु आलोचना करने के बाद एक दुसरे की वैयावच्च करना न कल्पे । यदि वहाँ कोई दुसरा साधु हो तो उनसे वैयावच्च करवाए । यदि न हो तो बिमारी आदि की कारण से आपस में वैयावच्च करवाए ।

[१४७] साधु या साध्वी को रात में या संध्या के वक्त लम्बा साँप डँस ले तब साधु स्त्री के पास या साध्वी पुरुष से दवाई करवाए ऐसा अपवाद मार्ग में स्थविर कल्पी को कल्पे । ऐसे अपवाद का सेवन करनेवाला स्थविर कल्पी को परिहार तप प्रायश्चित् भी नहीं आता । यह स्थविर कल्प का आचार कहा । जिन कल्पी को इस तरह अपवाद मार्ग का सेवन न कल्पे, यह आचार जिनकल्पी का बताया ।

उद्देशक-५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-६

[१४८] जो किसी साधु अपने रिश्तेदार के घर जाना चाहे तो स्थविर को पूछे बिना जाना न कल्पे, पूछने के बाद भी यदि जो स्थविर आज्ञा दे तो कल्पे और आज्ञा न दे तो न कल्पे । यदि आज्ञा बिना जाए तो जितने दिन रहे उतना छेद या तप प्रायश्चित् आता है । अल्पसूत्री या आगम के अल्पज्ञाता को अकेले ही अपने रिश्तेदार के वहाँ जाना न कल्पे । दुसरे बहुश्रुत या कई आगम के ज्ञाता के साथ रिश्तेदार के वहाँ जाना कल्पे । यदि पहले चावल हुए हो लेकिन दाल न हुई हो तो चावल लेना कल्पे लेकिन दाल लेना न कल्पे । यदि पहले दाल हुई हो और जाने के बाद चावल बने तो दाल लेना कल्पे । लेकिन चावल लेना न कल्पे दोनों पहले से ऊतारे गए हो तो दोनों लेना कल्पे और एक भी चीज न हुई हो तो कुछ भी लेना न कल्पे यानि साधु के जाने से पहले जो कुछ तैयार हो वो सब कल्पे और जाने के बाद तैयार हो ऐसा कोई भी आहार न कल्पे ।

[१४९] आचार्य-उपाध्याय को गण के विषय में पाँच अतिशय बताए है । उपाश्रय में पाँव घिसकर पुंजे या विशेष प्रमार्जे तो जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं होता, उपाश्रय में मल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूत्र का त्याग करे, शुद्धि करे, वैयावच्च करनेका सामर्थ्य हो तो इच्छा हो तो वैयावच्च करे, इच्छा न हो तो वैयावच्च न करे, उपाश्रय में एक-दो रात्रि निवास करे या उपाश्रय के बाहर एक-दो रात्रि निवास करे तो जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं होता ।

[१५०] गणावच्छेदक के गण के लिए दो अतिशय बताए है । गणावच्छेदक उपाश्रय में या उपाश्रय के बाहर एक या दो रात निवास करे तो जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं होता ।

[१५१] वो गाँव, नगर, राजधानी यावत् संनिवेश के लिए, एक ही आँगन, एक ही द्वार-प्रवेश , निर्गमन का एक ही मार्ग हो वहाँ कई अतिथि साधु को (श्रुत के अज्ञान को) इकट्ठे होकर रहना न कल्पे । यदि वहाँ आचार प्रकल्प के ज्ञात साधु हो तो रहना कल्पे लेकिन यदि न हो तो वहाँ जितने दिन रहे उतने दिन का तप या छेद प्रायश्चित् आता है ।

[१५२] वो गाँव यावत् संनिवेश के लिए अलग वाड हो, दरवाजे और आने-जाने के मार्ग भी अलग हो वहाँ कई अगीतार्थ साधु को और श्रुत अज्ञानी को इकट्ठे होकर रहना न कल्पे । यदि वहाँ कोई एक आचार प्रकल्प-निसीह आदि को जाननेवाले हो तो उनके साथ तीन रात में आकर साथ रहना कल्पे । ऐसा करते-करते किसी छेद या परिहार तप प्रायश्चित् नहीं आता । लेकिन यदि आचार प्रकल्पधर कोई साधु वहाँ न हो तो जो साधु तीन रात वहाँ निवास करे तो उन सबको जितने दिन रहे उतने दिन का तप या छेद प्रायश्चित् आता है ।

[१५३-१५४] वो गाँव यावत् संनिवेश के लिए कई वाड-दरवाजा आने-जाने का मार्ग हो वहाँ बहुश्रुत या कई आगम के ज्ञाता का अकेले रहना न कल्पे, यदि उन्हें न कल्पे तो अल्पश्रुतधर या अल्प आगमज्ञाता को किस तरह कल्पे ? यानि न कल्पे, लेकिन एक ही वाड, एक दरवाजा, आने जाने का एक ही मार्ग हो वहाँ बहुश्रुत - आगमज्ञाता साधु एकाकीपन से रहना कल्पे । वहाँ ऊभयकाल श्रमण भाव में जागृत रहकर अप्रमादी होकर सावधान होकर विचरे ।

[१५५] जिस जगह कई स्त्री-पुरुष मोह के उदय से मैथुन कर्म प्रारम्भ कर रहे तो वो देखकर श्रमण-दुसरे किसी अचित्त छिद्र में शुक्र पुद्गल नीकाले या हस्तकर्म भाव से सेवन करे तो एक मास का गुरु प्रायश्चित् आता है । लेकिन यदि हस्तकर्म की बजाय मैथुन भाव से सेवन करे तो गुरु चौमासी प्रायश्चित् आता है ।

[१५६-१५९] साधु या साध्वी को दुसरे गण से आए हुए, स्वगण में रहे साध्वी या जो खंड़ित-शबल भेदित या संक्लिष्ट आचारवाले है । और फिर जिस साध्वी ने उस पाप स्थान की आलोचना, प्रतिक्रमण, निंदा, गर्हा, निर्मलता, विशुद्धि नहीं की, न करने के लिए तत्पर नहीं हो । दोष के अनुसार उचित प्रायश्चित् नहीं किया । ऐसे साध्वी को सातां पूछना, संवास करना, सूत्रादि वांचना देनी, एक मांडली भोजन लेना, थोड़े वक्त के बाद जावज्जीव का पदवी देना या धारण करना न कल्पे, लेकिन यदि उस पाप स्थानक की आलोचना, प्रतिक्रमण आदि करके फिर से वो पाप सेवन न करने के लिए बेचैन हो, उचित प्रायश्चित् ग्रहण करे, तो उसे एक मंड़ली में स्थापित करने यावत् पदवी देना कल्पे ।

उद्देशक-६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्देशक-७

[१६०-१६२] जो साधु-साध्वी सांभोगिक है यानि एक समाचारी वाले है वहाँ साधु को पूछे बिना साध्वी खंड़ित, सबल, भेदित या संक्लिष्ट आचारवाले किसी अन्य गण के साध्वी को उसे पापस्थानक की आलोचना प्रतिक्रमण, प्रायश्चित् आदि किए बिना उनकी शाता पूछना, वांचना देना, एक मंडलीवाले के साथ भोजन करना, साथ रहना, थोड़े वक्त या हंमेशा के लिए किसी पदवी देना आदि कुछ न कल्पे, यदि वो आलोचना आदि सब करे तो गुरु की आज्ञा के बाद उनकी साता पूछना यावत् पदवी देना या धारण करना कल्पे, इस तरह के साध्वी को भी यदि वो साध्वी को साथ रखना स्व समुदाय के साध्वी न चाहे तो उनके गच्छ में वापस जाना चाहिए ।

[१६३] यदि कोई साधु-साध्वी समान समाचारीवाले है उनमें से किसी साधु को परोक्ष तरह या दुसरे स्थानक में प्रत्यक्ष बताए बिना विसंभोगी यानि मांड़ली बाहर करना न कल्पे । उसी स्थानक में प्रत्यक्ष उनके सन्मुख कहकर विसंभोगी करना कल्पे । सन्मुख हो तब कहे कि हे आर्य ! इस कुछ कारण से अब तुम्हारे साथ सांभोगिक व्यवहार न करूँ । ऐसा कहकर विसंभोगी करना । यदि वो अपने पाप कार्य का पश्चाताप करे तो उसे विसंभोगी करना न कल्पे । लेकिन यदि पश्चाताप न करे तो उसे मुँह पर कहकर विसंभोगी करे ।

[१६४] यदि कोई साधु-साध्वी समान समाचारीवाले है उनमें से किसी साध्वी को दुसरे साध्वी ने प्रत्यक्ष संभोगीपन में से विसंभोगीपन यानि कि मांड़ली व्यवहार बंध करना न कल्पे । परोक्ष तरह अन्य के द्वारा कहकर विसंभोगीपन करना कल्पे । अपने आचार्य-उपाध्याय को ऐसा कहे कि कुछ कारण से अमुक साध्वी के साथ मांड़ली व्यवहार बन्ध किया है । अब यदि वो साध्वी पश्चाताप करे तो बताकर व्यवहार बन्ध कर देना न कल्पे । यदि वो पश्चाताप न करे तो विसंभोगी करना कल्पे ।

[१६५-१६८] साधु या साध्वी को अपने खुद के हित के लिए किसीको दीक्षा देना, मुँड़ करना, आचार शीखलाना, शीष्यत्त्व देना, उपस्थापन करना, साथ रहना, आहार करना या थोड़े दिन या हंमेशा के लिए पदवी देना न कल्पे, दुसरों के लिए दीक्षा देना आदि सब काम करना कल्पे ।

[१६९-१७०] साध्वी को विकट दिशा में विहार करना या धारण करना न कल्पे, साधु को कल्पे ।

[१७१-१७२] साधु को विकट देश के लिए कठिन वचन आदि का प्रायश्चित लेकर वहाँ बैठे क्षमापना करना न कल्पे, साध्वी को कल्पे ।

[१७३-१७४] साधु-साध्वी को विकाल में स्वाध्याय करना न कल्पे, यदि साधु की निश्रा-आज्ञा हो तो साध्वी को विकाल में भी स्वाध्याय करना कल्पे ।

[१७५-१७६] साधु-साध्वी को असज्झाय में स्वाध्याय करना न कल्पे, सज्झाय में (स्वाध्यायकाले) स्वाध्याय करना कल्पे ।

[१७७] साधु-साध्वी को अपनी शारीरिक असज्झाय में सज्झाय करना न कल्पे अन्योन्य वांचना देना कल्पे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१७८-१७९] तीन साल के दीक्षा पर्यायवाले साधु को तीस साल के दीक्षावाले साध्वी को उपाध्याय के रूप में अपनाना कल्पे, पाँच साल के पर्यायवाले साधु को ६० साल के पर्यायवाले साध्वी को उपाध्याय के रूप में अपनाना कल्पे ।

[१८०] एक गाँव से दुसरे गाँव विहार करते साधु-साध्वी शायद काल करे, उनके शरीर को किसी साधर्मिक साधु देखे तो वो साधु उस मृतक को वस्त्र आदि से ढँककर एकान्त, अचित्त, निर्दोष, स्थंड़िल भूमि देखकर, प्रमार्जना करके परठना कल्पे यदि वहाँ कोई उपकरण हो तो वो आगार सहित ग्रहण करे दुसरी बार आज्ञा लेकर वो उपकरण रखना या त्याग करने का कल्पे।

[१८१-१८२] सज्ञातर उपाश्रय कीराये पे दे या बेच दे लेकिन लेनेवाले को बोले कि इस जगह में कुछ स्थान पर निर्ग्रन्थ साधु बँसते है । उस अलावा जो जगह है वो किराये पे या बिक्री में देंगे तो वो सज्ञातर के आहार-पानी वहोरना न कल्पे यदि देनेवाले ने कुछ न कहा हो लेकिन लेनेवाला ऐसा कहे कि इतनी जगह में साधु भले विचरण करे तो लेनेवाले के आहार-पानी न कल्पे यदि देनेवाला-लेनेवाला दोनों कहे तो दोनों के आहार-पानी न कल्पे ।

[१८३] यदि कोई विधवा पिता के घर में रहती हो और उसकी अनुमति लेने का अवसर आए तो उसके पिता, पुत्र या भाई दोनो की आज्ञा लेकर अवग्रह मांगना चाहिए ।

[१८४] पंथ के लिए यानि रास्ते में भी अवग्रह की अनुज्ञा लेना । जैसे कि वृक्ष आदि की, वहाँ रहे मुसाफिर की ।

[१८५-१८६] राजा मर जाए तब राज में फेरफार हुआ है ऐसा माने । लेकिन पहले राजा की दशा-प्रभाव तूटे न हो, भाई-हिस्सा बँटा न हो, अन्य वंश के राजा का विच्छेद न हुआ हो, दुसरे राजा ने अभी उस देश का राज ग्रहण न किया हो तब तक पूर्व की अनुज्ञा के मुताबिक रहना कल्पे, लेकिन यदि पूर्व के राजा का प्रभाव तूट गया हो, हिस्से का बँटवारा, राज विच्छेद, अन्य से ग्रहण आदि हुए हो तो फिर से नए राजा की आज्ञा लेकर रहना कल्पे। इस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

उद्देशक-७-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-८

[१८७] जिस घर के लिए वर्षावास रहा । उस घर में, बाहर के प्रदेश में या दूर के अन्तर में जो शय्या-संथारा मिला हो वो - वो मेरे है ऐसा शिष्य कहे लेकिन यदि स्थविर आज्ञा दे तो लेना कल्पे, यदि आज्ञा न दे तो लेना न कल्पे । उसी तरह आज्ञा मिले तो ही रात-दिन वो शय्या-संथारा लेना कल्पे ।

[१८८-१८९] वो साधु हल्के श्याय-संथारा की गवेषणा करे, ये-वो एक हाथ से उठाकर एक-दो या तीन दिन के मार्ग में ले जाने के लिए समर्थ हो ऐसा संथारा शर्दी-गर्मी के लिए पाए, उसी तरह वर्षावास के लिए प्राप्त करे ।

[१९०] वो साधु कम वजन के शय्या-संथारा की गवेषणा करे, ये-वो एक हाथ से उठाकर एक, दो, तीन, चार, पाँच दिन के दूर के रास्ते के लिए उठाने को समर्थ हो जिससे वो शय्या-संथारा मुझे बढ़ती वर्षाऋतु में काम लगे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१९१] जो स्थविर स्थिरवास रहे उसे दंड़ी, पात्रा, सर ढ़ँकने का वस्त्र, पात्रक, लकड़ी, वस्त्र, चर्मखंड़ रखना कल्पे । यदि स्थविर अकेले हो तव यह सभी उपकरण कहीं रखकर गृहस्थ के घर आहार ग्रहण के लिए नीकले या प्रवेश करे । उसके बाद वापस आने पर जिसके वहाँ उपकरण रखे हो उसकी आज्ञा लेकर वो उपकरण भुगते या त्याग करे ।

[१९२-१९४] साधु-साध्वी को पाड़िहारिक-वापस करने के उचित या शय्यातर के पास से शय्या-संथारा पुनःलेकर अनुज्ञा लिए बिना बाहर जाना न कल्पे, आज्ञा लेकर जाना कल्पे ।

[१९५-१९७] साधु-साध्वी को पाड़िहारिक या शय्यातर के पास से शय्या-संथारा पहले लिया हो वो उन्हें सौंपकर दुसरी दफा उनकी आज्ञा बिना रखना न कल्पे । आज्ञा लेकर रखना कल्पे, या पहले ग्रहण करके फिर आज्ञा लेना भी न कल्पे, पूर्व आज्ञा लेकर फिर ग्रहण करना कल्पे । यदि ऐसा माने कि यहाँ वाकई मे प्रातिहारिक शय्या-संथारा सुलभ नहीं है । तो पहले से ही ग्रहण कर ले फिर अनुमति मांगे तब शायद पाड़िहारिक के साथ शिष्य का झगड़ा हो तो स्थविर उसे रोके और कहे कि तुम कोप मत करो । तुम उनकी वस्ति ग्रहण करके रहे हो और कठिन वचन भी बोलते हो ऐसे दोनों कार्य करने योग्य नहीं है । उस तरह मीष्ट वचन से दोनों को शान्त करे ।

[१९८-२००] साधु गृहस्थ के घर आहार के लिए जाए, या बाहर स्थंड़िल या स्वाध्याय भूमि में जाए, या एक गाँव से दुसरे गाँव विचरते हो वहाँ अल्प उपकरण भी गिर जाए । उसे कोई साधर्मिक साधु देखे, गृहस्थ थकी वो चीज ग्रहण करना कल्पे । वो चीजे लेकर वो साधर्मिक आपसी साधु को कहे कि हे आर्य ! यह उपकरण किसका है तुम जानते हो ? साधु कहे कि हा, जानता हूँ वो उपकरण मेरा है । तो उसे दे । यदि ऐसा कहे कि हम नही जानते तो लानेवाले साधु खुद न भुगते, न दुसरे को दे लेकिन एकान्त-निर्दोष-थंडिल भूमि में परठवे ।

[२०१] साधु-साध्वी को अधिक पात्र आपस में ग्रहण करना कल्पे । यदि वो पात्र मैं कीसी को दूँगा, मैं खुद ही रखूँगा या दुसरे किसी को भी देंगे तो जिनके लिए उन्हें लिया हो उने पूछे या न्यौता दिए बिना आपस में देना न कल्पे, लेकिन जिनके लिए लिया है उन्हें पूछकर, निमंत्रीत करके देना कल्पे ।

[२०२] मुर्गे के अंड़े जितने आठ नीवाले यानि कि आठ कवल आहार जो करे उस साधु को अल्प-आहारी बताए । बारह कवल आहारी साधु अपार्ध उणोदरी करते है, सोलह कवल आहारी को अर्ध उणोदरी, चौबीस कवल आहारी को पा उणोदरी, ३१ कवल आहारी को किंचित् उणोदरी, ३२ कवल आहारी को प्रमाण प्राप्त आहारी बताए उस तरह से एक भी कवल आहार कम करनेवाले को प्रकाम भोजी न कहे लेकिन उणोदरी कहा ।

उद्देशक-९

[२०३-२०६] सागारिक शय्यातर के वहाँ कोई अतिथि घर में भोजन कर रहा हो या बाहर खा रहा हो तो उनके लिए आहार-पानी किए हो वो आहार शय्यातर उसे दे, पाड़िहारिक वापस देने की शर्त से बचा हुआ आहार वो व्यक्ति शय्यातर को दे तो उसमें से साधु को दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया आहार साधु को लेना न कल्पे, लेकिन यदि वो आहार अपड़िहारिक हो तो साधु-साध्वी को लेना कल्पे ।

[२०७-२१०] सागारिक-शय्यातर के दास, नौकर, चाकर, सेवक आदि किसी भी घर में या, घर के बाहर खा रहे तो उनके लिए बनाया गया आहार बचे वो नौकर आदि वापस लेने की बुद्धि से शय्यातर को दे तो ऐसा आहार शय्यातर दे तब साधु-साध्वी का लेना न कल्पे, वापस लेने की बुद्धि रहित यानि अप्रतिहारिक हो तो कल्पे ।

[२११-२१४] शय्यातर के ज्ञातीजन हो, एक ही घर में, या घर के बाहर, एक ही, या अलग चूल्हे का पानी आदि ले रहे हो लेकिन उसके सहारे जिन्दा हो तो उनका दिया गया आहार साधु को लेना न कल्पे ।

[२१५-२१८] शय्यातर के ज्ञातीजन हो, एक दरवाजा हो, आने-जाने का एक ही मार्ग हो घर अलग हो लेकिन घर में या घर के बाहर रसोई का मार्ग एक ही हो । अलग-अलग चूल्हे हो, या एक ही हो तो भी शय्यातर के आहार-पानी पर जिसकी रोजी चलती हो, उस आहार में से साधु को दे तो वो आहार लेना न कल्पे ।

[२१९-२३२] शय्यातर की १. तेल बेचने की, २. गुड़ की, ३. किराने की, ४. कपड़े की, ५. सूत की ६. रूई और कपास की, ७. गंधीयाणा की, ५. मीठाई की दुकान है उसमें शय्यातर का हिस्सा है । उस दुकान पर बिक्री होती है तो उसमें से कोई भी चीज दे तो वो साधु को लेना न कल्पे, लेकिन यदि इस दुकान में शय्यातर का हिस्सा न हो, उस दुकान पर बिक्री होती हो उसमें से किसी साधु को दे तो लेना कल्पे ।

[२३३-२३६] दुसरों की अन्न-आदि रसोई में शय्यातर का हिस्सा हो, वखार में पड़े आम में उसका हिस्सा हो तो उसमें से दिया गया आहार आदि साधु को न कल्पे, यदि शय्यातर का हिस्सा न हो तो कल्पे ।

[२३७] सात दिन की सात पड़िमा समान तपश्चर्या के ४९ रात-दिन होते है पहले सात दिन अन्न-पानी की एक दत्ति - दुसरे सात दिन दो-दो दत्ति - यावत् साँतवे साँत दिन साँत-साँत दत्ति गिनते कुल १९६ दत्ति होती है वो तप जिस तरह से सूत्र में बताया है, जैसा मार्ग है, जैसा सत्य अनुष्ठान है । ऐसा सम्यक् तरह से काया से छूने के द्वारा निरतिचार, पार पहुँचे हुए, कीर्तन किए गए उस तरह से साधु आज्ञा को पालनेवाले होते है ।

[२३८-२४०] (ऊपर कहने के अनुसार) आँठ दिन की आँठ पड़िमा समान तप कहा है । पहले आँठ दिन अन्न-पानी की एक-एक दत्ति उस तरह से आँठवी पड़िमा - आँठ दिन की आठ दत्ति गिनते कुल ६४ रात-दिन २८८ दत्ति से तप पूर्ण हो, उसी तरह नौ दिन की नौ पड़िमा ८१ रात-दिन और कुल दत्ति ४०५ दश दिन की दश पड़िमा १०० दत्ति और कुल दत्ति ५५० होती है ।

उसी तरह आँठवी, नौ, दश प्रतिमा का सूत्र, कल्प, मार्ग, यथातथ्यपन से सम्यक् तरह से काया द्वारा स्पर्श-पालन, शुद्धि-तरण, किर्तन-आज्ञा से अनुपालन होता है ।

[२४१] दो प्रतिमा बताई है वो इस प्रकार है–छोटी पेशाब प्रतिमा और बड़ी पेशाब प्रतिमा ।

[२४२] छोटी पेशाब प्रतिमा बहनेवाले साधु को पहले शरद काल मे (मागसर मास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मे) और अन्तिम उष्ण काल में (आषाड़ मास में) गाँव के बाहर यावत् सन्निवेश, वन, वनदुर्ग, पर्वत, पर्वतदुर्ग में यह प्रतिमा धारण करना कल्पे, भोजन करके प्रतिमा ग्रहण करे तो १४ भक्त से पूरी हो यानि छ उपवास के बाद पारणा करे, खाए बिना पड़िमा करने से १६ भक्त से यानि साँत उपवास से पूरी हो । यह प्रतिमा वहने से दिन में जितनी पिशाब आए वो दिन में पी जाए । रात में आए तो न पीए । यानि यदि वो पिशाब जीव वीर्य-चीकनाई रज सहित हो तो परठवे और रहित हो तो पीए । उसी तरह जो-जो पिशाब थोड़े या ज्यादा नाप में आए वो पीए । यह छोटी पिशाब प्रतिमा बताई जो सूत्र में कहने के मुताबिक, यावत् पालन करते हुए साधु विचरे ।

[२४३] बड़ी पिशाब प्रतिमा (अभिग्रह) अपनानेवाले साधु को उपर बताए अनुसार विधि से प्रतिमा वहन करनी हो । फर्क इतना कि भोजन करके प्रतिमा वहे तो, ७-उपवास और भोजन किए बिना ८-उपवास, बाकी सभी विधि छोटी प्रतिमा अनुसार मानना ।

[२४४] अन्न-पानी की दत्ति की अमुक संख्या लेनेवाले साधु को पात्र धारक गृहस्थ के घर आहार के लिए प्रवेश बाद यात्रा में वो गृहस्थ अन्न की जितनी दत्ति दे उतनी दत्ति कहलाए । अन्न-पानी देते हुए धारा न तूटे वो एक दत्ति, उस साधु को किसी दातार वाँस की छाब में, वस्त्र से, चालणी से, पात्र उठाकर साधु को ऊपर से दे तब धारा तूटे नही तब तक सबको एक दत्ति कहते है । यदि कई खानेवाले हो तो सभी अपना आहार ईकट्ठा कर दे तब हाथ ऊपर करके रखे तब तक सब को मिलकर एक ही दत्ति होती है ।

[२४५] जिस साधु ने पानी की दत्ति का अभिग्रह किया है वो गृहस्थ के वहाँ पानी लेने जाए तब एक पात्र ऊपर से पानी देने के लिए उठाया है उन सबको धारा न तूटे तब तक एक दत्ति कहते है । (आदि सर्व हकीकत ऊपर के सूत्र २४४ की आहार की दत्ति मुताबिक जानना ।)

[२४६-२४७] अभिग्रह तीन प्रकार के बताए, सफेद अन्न लेना, काष्ठ पात्र में सामने से लाकर दे वो हाथ से या बरतन से दे तो जो कोइ ग्रहे, जो कोई दे, यदि कोई चीज को मुख में रखे वो चीज ही लेनी चाहिए । वो दुसरे प्रकार से तीन अभिग्रह ।

[२४८] दो प्रकार से (भी) अभिग्रह बताए है । (१) जो हाथ में ले वो चीज लेना (२) जो मुख में रखे वो चीज लेना - ईस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

उद्देशक-९-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

उद्देशक-१०

[२४९] दो प्रतिमा (अभिग्रह) वताए है । वो इस प्रकार-जव मध्य चन्द्र प्रतिमा और वज्र मध्य चन्द्र प्रतिमा ।

जव मध्य चन्द्र प्रतिमाधारी साधु एक महिने तक काया की ममता का त्याग करते है । जो कोई देव या तिर्यंच सम्बन्धी अनुकूल या प्रतिकूल उपसर्ग उत्पन्न हो जिसमें वंदन-नमस्कार, सत्कार-सन्मान, कल्याण-मंगल, देवसर्दश आदि अनुकूल और दुसरा कोई दंड, अस्थि, जोतर या नेतर के चलने से काया से उपसर्ग करे वो प्रतिकूल । वो सर्व उपसर्ग उत्पन्न हो उस समभाव से, खमें, तितिक्षा करे, दीनता रहित खमे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जव मध्य चन्द्र प्रतिमाधारी साधु को शुकल पक्ष की एकम को एक दत्ति अन्न - एक दत्ति पानी लेना कल्पे । सभी दो पगे, चोपगे जो कोई आहार की इच्छावाले है उन्हें आहार मिल गया हो, कईं तापस, ब्राह्मन, अतिथि, कृपण, दरिद्री, याचक, भीक्षा ले जाने के बाद निदोर्ष आहार ग्रहण करे । उस साधु को जहाँ अकेले खानेवाला हो वहाँ से आहार लेना कल्पे, लेकिन दो, तीन, चार, पाँच के जमण में से लेना न कल्पे । तीन मास से ज्यादा गर्भवाली के हाथ से, बच्चे के हिस्से में से या बच्चा अलग करे तो न ले । बच्चे को दूध पिलाती स्त्री के हाथ से न ले । घर में दहलीज के भीतर या बाहर दोनों पाँव रखकर दे तो न ले लेकिन एक पाँव दहलीज के भीतर और एक बाहर हो और दे तो लेना कल्पे । उस तरह से न दे तो लेना न कल्पे ।

शुक्ल पक्ष की बीज को यानि दुसरे दिन अन्न की और पानी की दो दत्ति, त्रीज को तीन दत्ति उस तरह से पूनम को यानि पंद्रहवे दिन अन्न-पानी की पंद्रह दत्ति ग्रहण करे । फिर कृष्ण पक्ष में एकम को चौदह दत्ति अन्न की, चौदह दत्ति पानी की, बीज को तेरह दत्ति अन्न, तेरह दत्ति पानी की यावत् चौदश को एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की लेना कल्पे। अमावास को साधु आहार न करे । उस प्रकार निश्चय से यह जव मध्य प्रतिमा बताई, वो सूत्र-कल्प-मार्ग में बताए अनुसार यथातथ्य सम्यक् तरह से काया थकी छूकर, पालन करके, शोधनकर, पार करके, किर्तन करके, आज्ञानुसार पालन करना ।

[२५०] व्रज मध्य प्रतिमा (यानि अभिग्रह विशेष) धारण करनेवाले को काया की ममता का त्याग, उपसर्ग सहना आदि सब ऊपर के सूत्र २४९ में कहने के मुताबिक जानना। विशेष यह कि प्रतिमा का आरम्भ कृष्ण पक्ष से होता है । एकम को पंद्रह दत्ति अन्न की और पंद्रह दत्ति पानी को लेकर तप का आरम्भ हो यावत् अमावास तक एक-एक दत्ति कम होने से अमावास को केवल एक दत्ति अन्न और एक दत्ति पानी की ले । फिर शुकल पक्ष में क्रमशः एक-एक दत्ति अन्न और पानी की बढ़ती जाए । शुकल एकम की दो दत्ति अन्न और पानी की लेना कल्पे, यावत् चौदस को पंद्रह दत्ति अन्न और पानी की ले और पूनम को उपवास करे ।

[२५१] व्यवहार पाँच तरह से बताए है । वो इस प्रकार आगम, श्रुत् आज्ञा, धारणा और जीत, जहाँ आगम व्यवहारी यानि कि केवली या पूर्वधर हो वहाँ आगम व्यवहार स्थापित करना । जहाँ आगम व्यवहारी न हो वहाँ सूत्र (आयारो आदि) व्यवहार स्थापित करना, जहाँ सूत्र ज्ञाता भी न हो वहाँ आज्ञा व्यवहार स्थापना, जहाँ आज्ञा व्यवहारी न हो वहाँ धारणा व्यवहार स्थापित करना और धारणा व्यवहारी भी न हो वहाँ जीत यानि कि परम्परा से आनेवाला व्यवहार स्थापित करना ।

इस पाँच व्यवहार से करके व्यवहार स्थापित करे तो इस प्रकार--आगम, सूत्र, आज्ञा, धारणा, जीत वैसे उस व्यवहार संस्थापित करे, हे भगवंत् ! ऐसा क्यों कहा ? आगम बलयुक्त साधु को वो पूर्वोक्त पाँच व्यवहार को जिस वक्त जो जहाँ उचित हो वो वहाँ निश्रा रहित उपदेश और व्यवहार रखनेवाले साधु आज्ञा के आराधक होता है ।

[२५२-२५९] चार तरह के पुरुष के (अलग-अलग भेद है वो) कहते है । (१) उपकार करे लेकिन मान न करे, मान करे लेकिन उपकार न करे, दोनों करे, दोनों में से एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी न करे, (२) समुदाय का काम करे लेकिन मान न करे, मान करे लेकिन समुदाय का काम न करे, दोनों करे, दोनों में से एक भी न करे, (३) समुदाय के लिए संग्रह करे लेकिन मान न करे, मान करे लेकिन समुदाय के लिए संग्रह न करे, दोनों करे, दोनों में से एक भी न करे, (४) गण को शोभायमान करे लेकिन मान न करे, मान करे लेकिन गण की शोभा न करे, दोनों करे, दोनों में से एक भी न करे, (५) गण शुद्धि करे लेकिन मान न करे, मान करे लेकिन गण की शुद्धि न करे, दोनों करे, दोनों में से एक भी न करे, (६) रूप का त्याग करे लेकिन धर्म त्याग न करे, धर्म छोड़ दे लेकिन रूप न छोड़े, दोनों छोड़ दे, दोनों में से कुछ भी न छोड़े, (५) प्रियधर्मी हो लेकिन दृढ़धर्मी न हो, दृढ़धर्मी हो लेकिन प्रियधर्मी न हो, दोनो हो दोनों में से एक भी न हो ।

[२६०-२६१] चार तरह से आचार्य बताए –(१) प्रवज्या आचार्य लेकिन उपस्थापना आचार्य नहीं, उपस्थापना आचार्य मगर प्रवज्या आचार्य नहीं, दोनों हो, दोनों में से एक भी न हो, (२) उद्देसाचार्य हो लेकिन वांचनाचार्य न हो, वांचनाचार्य हो लेकिन उद्देसाचार्य न हो, दोनों हो, दोनों में से एक भी न हो ।

[२६२-२६३] चार अन्तेवासी शिष्य बताए है । (१) प्रवज्या शिष्य हो लेकिन उपस्थापना शिष्य न हो, उपस्थापना शिष्य हो लेकिन प्रवज्या शिष्य न हो, दोनो हो, दोनों में से एक भी न हो, (२) उद्देशा करवाए लेकिन वांचना न दे, वांचना दे लेकिन उद्देशा न करवाए, दोनों करवाए, दोनों में से कुछ भी न करवाए ।

[२६४] तीन स्थविर भूमि बताई है । वय स्थविर, श्रुत स्थविर और पर्याय स्थविर । ६० सालवाले वय स्थविर, ठाण-समवाय के धारक वो श्रुतस्थविर, बीस साल का पर्याय यानि पर्याय स्थविर ।

[२६५] तीन शिष्य की भूमि कही है । जघन्य को सात रात्रि की, मध्यमवो चार मास की और उत्कृष्ट छ मास की ।

[२६६-२६७] साधु-साध्वी को लघु साधु या साध्वी जिनको आँठ साल से कुछ कम उम्र है उसकी उपस्थापना या सहभोजन करना न कल्पे, आँठ साल से कुछ ज्यादा हो तो कल्पे ।

[२६८-२६९] साधु-साध्वी को बाल साधु या बाल साध्वी जिन्हे अभी बगल में बाल भी नहीं आए यानि वैसी छोटी वयवाले को आचार प्रकल्प नामक अध्ययन पढ़ाना न कल्पे, बगल में बाल उगे उतनी वय के होने के बाद कल्पे ।

[२७०-२८८] जिस साधु का दीक्षा पर्याय तीन साल का हुआ हो उसे आचार प्रकल्प अध्ययन पढ़ाना कल्पे, उसी तरह चार साल के पर्याय से, सूयगड़ो, पाँच साल पर्याय से दसा, कप्प, ववहार, आँठ साल पर्याय से ठाण, समवाय, दश साल पर्याय से विवाह पन्नत्ति यानि भगवई, ११ साल पर्याय से खुड्डियाविमाणपविभती, महल्लियाविमाणपवभित्ती, अंगचूलिया, वग्गचूलिया, विवाहचूलिया, बारह साल पर्याय से अरुणोववाय, गरुलोववाय, धरणोववाय, वेसमणोववाय, वेलंधरोववाय, तेरह साल पर्याय से उट्ठाणसूय, समुट्ठाणसूय, देविंदोववाय, नागरपरियावणिय, चौदह साल पर्याय से आसिविसभावना, अट्ठारह साल पर्याय से दिट्ठीविसभावना, १९ साल पर्याय से दिट्ठिवाय, उस तरह से बीस साल के पर्यायवाले साधु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को सर्वे सूत्र का अध्ययन उदेसो आदि करवाना कल्पे ।

[२८९] वैवावच्च दश तरह से बताई है । वो इस प्रकार—आचार्य की, उपाध्याय की, स्थविर की, शिष्य की, ग्लान की, तपस्वी की, साधर्मिक की,कुल की, गण की, साधु संघ की । (यह आचार्य, उपाध्याय....यावत्....संघ की वैयावच्च करनेवाले साधु महा निर्जरा-महालाभ पाते है ।

३६	व्यवहार-छेदसूत्र-३-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३७ दशाश्रुतस्कन्ध

छेदसूत्र-४- हिन्दी अनुवाद

दसा-१-असमाधिस्थान

संयम के सामान्य दोष या अतिचार को यहाँ 'असमाधि-स्थान' बताया है । जैसे शरीर की समाधि-शान्ति पूर्ण अवस्था में मामूली बिमारी या दर्द बाधक बनते है । काँटा लगा हो या दाँत, कान, गले में कोई दर्द हो या शर्दी जैसा मामूली व्याधि हो तो भी शरीर की समाधि-स्वस्थता नहीं रहती वैसे संयम में छोटे या अल्प दोष से भी स्वस्थता नहीं रहती । इसलिए इन स्थान को असमाधि स्थान बताए है । जो इस पहली दशा में बँयान किए है ।

[१] अरिहंत को मेरे नमस्कार हो, सिद्ध को मेरे नमस्कार हो, आचार्य को मेरे नमस्कार हो, उपाध्याय को मेरे नमस्कार हो, लोक में रहे सभी साधु को मेरे नमस्कार हो, इन पाँचो को किए नमस्कार-सर्व पाप के नाशक है, सर्व मंगल में उत्कृष्ट मंगल है ।

हे आयुष्मान् ! वो निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्वमुख से मैंने ऐसा सुना है ।

[२] यह (जिन प्रवचन में) निश्चय से स्थविर भगवंत ने बीस असमाधि स्थान बताए है । स्थविर भगवंत ने कौन-से बीस असमाधि स्थान बताए है ?

१. अति शीघ्र चलनेवाले होना ।

२. अप्रमार्जिताचारी होना - रजोहरण आदि से प्रमार्जन किया न हो ऐसे स्थान में चलना (बैठना-सोना आदि) ।

३. दुष्प्रमार्जिताचारी होना - उपयोग रहितपन से या इधर-उधर देखते-देखते प्रमार्जना करना ।

४. अधिक शय्या-आसन रखना, शरीर प्रमाण लम्बाईवाली शय्या, आतापना-स्वाध्याय आदि जिस पर किया जाए वो आसन । वो प्रमाण से ज्यादा रखना ।

५. दीक्षापर्याय में बड़ो के सामने बोलना ।

६. स्थवीर और उपलक्षण से मुनि मात्र के घात के लिए सोचना ।

७. पृथ्विकाय आदि जीव का घात करे ।

८. आक्रोश करना, जलते रहना ।

९. क्रोध करना, स्व-पर संताप करना ।

१०. पीठ पीछे निंदा करनेवाले होना ।

११. बार-बार निश्चयकारी बोली बोलना ।

१२. अनुत्पन्न ऐसे नए झगड़े उत्पन्न करना ।

१३. क्षमापना से उपशान्त किए गए पुराने कलह-झगड़े फिर से उत्पन्न करना ।

१४. अकाल-स्वाध्याय के लिए वर्जित काल, उसमें स्वाध्याय करना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. सचित्त रजयुक्त हाथ-पाँववाले आदमी से भिक्षादि ग्रहण करना ।
१६. अनावश्यक जोर-जोर से बोलना, आवाज करना ।
१७. संघ या गण में भेद उत्पन्न करनेवाले वचन बोलना ।
१८. कलह यानि वाग्युद्ध या झगड़े करना ।
१९. सूर्योदय से सूर्यास्त तक कुछ न कुछ खाते रहना ।
२०. निर्दोष भिक्षा आदि की खोज करने में सावधान न रहना ।

स्थविर भगवंत ने यह बीस असंसाधि स्थान बताए है उस प्रकार मैं कहता हूँ ।

लेकिन यहाँ बीस की गिनती एक आधाररूप से रखी गई है । इस तरह के अन्य कई असमाधिस्थान हो शकते है । लेकिन उन सबका समावेश इस बीस की अंतर्गत् जानना-समजना जैसे कि ज्यादा शय्या-आसन रखना । तो वहाँ अधिक वस्त्र, पात्र, उपकरण वो सब दोष सामिल हो ऐसा समज लेना ।

चित्त समाधि के लिए यह सब असमाधि स्थान का त्याग करना ।

दसा-२-सबला

सबल का सामान्य अर्थ विशेष बलवान या भारी होता है । संयम के सामान्य दोष पहली दसा में बताए उसकी तुलना में बड़े या विशेष दोष का इस दसा में वर्णन है ।

[३] हे आयुष्यमान् ! वो निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्वमुख से मैंने इस प्रकार सुना है । ....यह आर्हत् प्रवचन में स्थविर भगवंत ने वाकई एक्कीस सबल (दोष) प्ररूपे है । वो स्थविर भगवंत ने वाकई कौन-से एक्कीस शबल दोष बताए है ? स्थविर भगवंत ने निश्चय से जो इक्कीस-शबल दोष बताए है वो इस प्रकार है :–

१. हस्त-कर्म करना, मैथुन सम्बन्धी विषयेच्छा को पोषने के लिए हाथ से शरीर के किसी अंग-उपांग आदि का संचालन आदि करना ।
२. मैथुन प्रतिसेवन करना ।
३. रात्रि भोजन करना । रात्रि को अशन, पान, खादिम या स्वादिम इस्तेमाल करना।
४. आधाकर्मिक-साधु के निमित्त से बने हुए-आहार खाना ।
५. राजा निमित्त से बने अशन-आदि आहार खाना ।
६. क्रित-खरीदे हुए, उधार लिए हुए, छिने हुए, आज्ञा बिना दिए गए या साधु के लिए सामने से लाकर दिया गया आहार खाना ।
७. बार-बार प्रत्याख्यान करके, प्रत्याख्यान हो वो ही अशन-आदि लेना ।
८. छ मास के भीतर एक गण में से दुसरे गण में गमन करना ।
९. एक मास में तीन बार (जलाशय आदि करके) उदक लेप यानि सचित्त पानी का संस्पर्श करना ।
१०. एक मास में तीन बार माया-स्थल (छल-कपट) करना ।
११. सागारिक (गृहस्थ, स्थानदाता या सज्ञातर) के अशन आदि आहार खाना ।
१२-१५. जान बूझकर प्राणातिपात (जीव का घात), मृषावाद (असत्य-बोलना)...अदत्तादान (नहीं दीं गई चीज का ग्रहण), सचित्त पृथ्वी या सचित्त रज पर कार्योत्सर्ग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बैठना, सोना, स्वाध्याय आदि करना ।

१६-१८. जान-बूझकर स्निग्ध, गीली, सचित्त रजयुक्त पृथ्वी पर...सचित्त शीला, पत्थर, धुणावाला या सचित्त लकड़े पर, अंड़ बेईन्द्रिय आदि जीव, सचित्त बीज, तृण आदि झाकल-पानी, चींटी के नगर-सेवाल-गीली मिट्टी या मकड़ी के जाले से युक्त ऐसे स्थान पर कार्योत्सर्ग, बैठना, सोना, स्वाध्याय आदि क्रिया करना...मूल, कंद, स्कंध, छिलका, कुंपण, पत्ते, बीज और हरित वनस्पति का भोजन करना ।

१९-२०. एक साल में दस बार उदकलेप (जलाशय को पार करने के द्वारा जल संस्पर्श) और माया-स्थान (छल कपट) करना ।

२१. जान-बूझकर सचित पानीयुक्त हाथ, पात्र, कड़छी या बरतन से कोई अशन, पान, खादिम-स्वादिम आहार दे तब ग्रहण करना ।

स्थविर भगवंत ने निश्चय से यह २१-सबल दोष कहे है । उस प्रकार मैं कहता हुं।

यहाँ अतिक्रम-व्यतिक्रम और अतिचार वो तीन भेद से सबल दोष की विचारणा करना। दोष के लिए सोचना वो अतिक्रम, एक भी ड़ग भरना वो व्यतिक्रम और प्रवृत्ति करने की तैयारी यानि अतिचार (दोष का सेवन तो साफ अनाचार ही है ।) इस सबल दोष का सेवन करनेवाला शबल-आचारी कहलाता है ।

जो कि शबल दोष की यंह गिनती केवल २१ नहीं है । वो तो केवल आधार है । ये या इनके जैसे अन्य दोष भी यहां समज लेना ।

दशा-३-आशातना

आशातना यानि विपरीत व्यवहार, अपमान या तिरस्कार जो ज्ञान-दर्शन का खंड़न करे, उसकी लघुता या तिरस्कार करे उसे आशातना कहते है । ऐसी आशातना के कईं भेद है । उसमें से यहाँ केवल-३३ आशातना ही कही है । ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण में अधिकतावाले या दीक्षा, पदवी आदि में बड़े हो उनके प्रति हुए अधिक अवज्ञा या तिरस्कार समान आशातना का यहाँ वर्णन है ।

[४] हे आयुष्यमान् ! उस निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्व-मुख से मैंने इस प्रकार सुना है । यह आर्हत् प्रवचन में स्थविर भगवंत ने वाकईं में ३३-आशातना प्ररूपी है । उस स्थविर भगवंत ने सचमुच कौन-सी ३३-आशातना बताई है ? वो स्थविर भगवंत ने सचमुच जो ३३ आशातना बताई है वो इस प्रकार है–

१-९. शैक्ष (अल्प दीक्षा पर्यायवाले साधु) रत्नाधिक-बड़े दीक्षापर्याय या विशेष गुणवान् साधु) के आगे चले, साथ-साथ चले, अति निकट चले, आगे, साथ-साथ या अति निकट खड़े रहे, आगे, साथ-साथ या अति निकट बैठे ।

१०-११. रात्निक साधु के साथ बाहर बिचार भूमि (मल त्याग जगह) गए शैक्ष कारण से एक ही जलपात्र ले गए हो उस हालात में वो शैक्ष रात्निक की पहले शौच-शुद्धि करे, बाहर विचार भूमि या विहार भूमि (स्वाध्यायस्थल) गए हो तब रात्निक के पहले ऐर्यापथिक-प्रतिक्रमण करे ।

१२. किसी व्यक्ति रात्निक के पास वार्तालाप के लिए आए तब शैक्ष उसके पहले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही वार्तालाप करने लगे ।

१३. रात या विकाल में (सन्ध्या के वक्त) यदि रात्निक शैक्ष को सम्बोधन करके पूछे कि हे आर्य ! कौन-कौनसो रहे है और कौन-कौन जागते है तब वो शैक्ष, रात्निक का वचन पूरा सुना-अनसूना कर दे और प्रत्युत्तर न दे ।

१४-१८ शैक्ष यदि अशन, पान, खादिम, स्वादिम समान आहार लाए तब उसकी आलोचना के पहले कोई शैक्ष के पास करे फिर रात्निक के पास करे, पहले किसी शैक्ष को बताए, निमंत्रित करे फिर रात्निक को दिखाए या निमंत्रणा करे, रात्निक के साथ गए हो तो भी उसे पूछे बिना जो-जो साधु को देने की इच्छा हो उसे जल्द अधिक प्रमाण में वो अशन आदि दे और रात्निक साधु के साथ आहार करते वक्त प्रशस्त, उत्तम, रसयुक्त, स्निग्ध, रूखा आदि चीज उस शैक्ष को मनोकुल हो तो जल्द या ज्यादा प्रमाणमें में खाए ।

१९-२१. रात्निक (गुणाधिक) शैक्ष (छोटे दीक्षा पर्यायवाले साधु) को बुलाए तब उसकी बात सुना-अनसुना करके मौन रहे, अपने स्थान पर बैठकर उनकी बात सुने लेकिन सन्मुख उपस्थित न हो, "क्या कहा ?" ऐसा कहे ।

२२-२४. शैक्ष, रात्निक को तूं ऐसे एकवचनी शब्द बोले, उनके आगे निरर्थक बक-बक करे, उनके द्वारा कहे गए शब्द उन्हें कहकर सुनाए (तिरस्कार से "तुम तो ऐसा कहते थे" ऐसा सामने बोले)

२५.३०. जब रात्निक (गुणाधिक साधु) कथा कहते हो तब वो शैक्ष "यह ऐसे कहना चाहिए" ऐसा बोले, "तुम भूल रहे हो-तुम्हें याद नहीं है ।" ऐसा बोले, दुर्भाव प्रकट करे, (किसी बहाना करके) सभा विसर्जन करने के लिए आग्रह करे, कथा में विघ्न उत्पन्न करे, जब तक पर्षदा (सभा) पूरी न हो, छिन्न-भिन्न न हो या बैर-बिखैर न हो लेकिन हाजिर हो तब तक उसी कथा को दो-तीन बार कहे ।

३१-३३. शैक्ष यदि रात्निक साधु के शय्या या संथारा पर गलती से पांव लग जाए तब हाथ जुंड़कर क्षमा याचना किए बिना चले जाए, रात्निक की शय्या-संथारा पर खड़े रहे-बैठे या सो जाए या उससे ऊँचे या समान आसन पर बैठे या सो जाए । उस स्थविर भगवंत ने सचमुच यह तैंतीस आशातना बताई है । ऐसा (उस प्रकार) मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

दसा-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दसा-४-गणिसंपदा

पहले, दुसरे, तीसरे, अध्ययन में कहे गए दोष शैक्ष को त्याग करने के लिए उचित है । उन सबका परित्याग करने से वो शैक्ष गणि संपदा योग्य होता है । इसलिए अब इस "दसा" में आँठ तरह की गणिसंपदा का वर्णन किया है ।

[५] हे आयुष्मान् ! उस निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्वमुख से मैंने इस प्रकार सुना है । यह (आर्हत् प्रवचन में) स्थविर भगवंत ने सचमुच आँठ तरह की गणि संपदा कही है । उस स्थविर भगवंत ने वाकई, कौन सी आठ तरह की गणि संपदा बताई है १. उस स्थविर भगवंत ने सचमुच जो ८-तरह की संपदा कही है वो इस प्रकार है–आचार, सूत्र, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोग और संग्रह परिज्ञा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६] वो आचार संपदा कौन-सी है ? (आचार यानि भगवंत की प्ररूपी हुई आचरणा या मर्यादा दुसरी तरह से कहे तो ज्ञान-दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य उन पाँच की आचरणा, संपदा यानि संपत्ति यह आचार संपत्ति चार तरह से है वो इस प्रकार–संयम क्रिया में सदा जुड़े रहना, अहंकार रहित होना, अनियत विहार होना यानि एक स्थान पर स्थायी होकर न रहना, स्थवीर की माफिक यानि श्रुत और दीक्षा पर्याय जयेष्ठ की तरह गम्भीर स्वभाववाले होना ।

[७] वो श्रुत संपत्ति कौन-सी है ? (श्रुत यानि आगम या शास्त्रज्ञान) यह श्रुत संपत्ति चार प्रकार से बताई है । वो इस प्रकार–बहुश्रुतता-कईं शास्त्र के ज्ञाता होना, परिचितता, सूत्रार्थ से अच्छी तरह से परिचित होना । विचित्र श्रुतता-स्वसमय और परसमय के तथा उत्सर्ग-अपवाद के जानकार होना, घोषविशुद्धि कारकता-शुद्ध उच्चारणवाले होना ।

[८] वो शरीर संपत्ति कौन-सी है ? शरीर संपत्ति चार तरह से बताई है । वो इस प्रकार–शरीर की लम्बाई-चौड़ाई का सही नाप होना, कुरुप या लज्जा पैदा करे ऐसे शरीरवाले न होना, शरीर संहनन सुदृढ़ होना, पाँच इन्द्रिय का परिपूर्ण होना ।

[९] वो वचन संपत्ति कौन-सी है ? (वचन यानि भाषा) वचन संपत्ति चार प्रकार की बताई है । वो इस प्रकार–आदेयता, जिसका वचन सर्वजन माननीय हो, मधुर वचनवाले होना, अनिश्रितता राग-द्वेष रहित यानि कि निष्पक्षपाती वचनवाले होना, असंदिग्धता-संदेह रहित वचनवाले होना ।

[१०] वो वाचना संपत्ति कौन-सी है ? वाचना संपत्ति चार प्रकार से बताई है । वो इस प्रकार–शिल्प की योग्यता को तय करनेवाली होना, सोच पूर्वक अध्यापन करवानेवाली होना, लायकात अनुसार उपयुक्त शीक्षा देनेवाली हो, अर्थ-संगतिपूर्वक नय-प्रमाण से अध्यापन करनेवाली हो ।

[११] वो मति संपत्ति कौन-सी है ? (मति यानि जल्द से चीज को ग्रहण करना) मति संपत्ति चार प्रकार से बताई है । वो इस प्रकार–अवग्रह सामान्य रूप में अर्थ को जानना-ईहा विशेष रूप में अर्थ जानना, अवाय-ईहित चीज का विशेष रूप से निश्चय करना, धारणा-जानी हुई चीज का कालान्तरमें भी स्मरण रखना ।

वो अवग्रहमति संपत्ति कौन-सी है ? अवग्रह मति संपत्ति छ प्रकार से बताई है । शीघ्र ग्रहण करना, एक साथ कईं अर्थ ग्रहण करना, अनिश्रित अर्थ को अनुमान से ग्रहण करना, संदेह रहित होकर अर्थ ग्रहण करना ।

उसी तरह ईहा और अपाय मतिसंपत्ति छ तरह से जानना ।

वो धारणा मति संपत्ति कौन-सी है ? धारणा मति संपत्ति छ प्रकार से बताई है । कईं अर्थ, कईं तरह के अर्थ, पहले की बात, अनुक्त अर्थ का अनुमान से निश्चय और ज्ञात अर्थ को संदेह रहित होकर धारण करना । वो धारणा मति संपत्ति है ।

[१२] वो प्रयोग संपत्ति कौन-सी है ? वो प्रयोग-संपत्ति चार प्रकार से है । वो इस प्रकार-अपनी शक्ति जानकर वादविवाद करना, सभा के भावो को जानकर, क्षेत्र की जानकारी पाकर, वस्तु विषय को जानकर पुरुष विशेष के साथ वाद-विवाद करना यह प्रयोग-संपत्ति ।

[१३] वो संग्रह परिज्ञा संपत्ति कौन-सी है ? संग्रह परिज्ञा संपत्ति चार प्रकार से है । वो इस प्रकार–वर्षावास के लिए कईं मुनिजन को रहने के उचित स्थान देखना, कईं मुनिजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए वापस करना कहकर पीठ फलक शय्या संथारा ग्रहण करना, काल को आश्रित करके कालोचित कार्य करना, करवाना, गुरुजन का उचित पूजा-सत्कार करना ।

[१४] (आँठ तरह की संपदा के वर्णन के बाद अब गणि का कर्तव्य कहते है । आचार्य अपने शिष्य को आचार-विनय, श्रुत विनय, विक्षेपणा - (मिथ्यात्त्व में से सम्यकत्व में स्थापना करने समान) विनय और दोष निर्घातन–(दोष का नाश करने समान) विनय ।

वो आचार विनय क्या है ? आचार-विनय (पाँच तरह के आचार या आँठ कर्म के विनाश करनेवाला आचार यानि आचार विनय) चार प्रकार से कहा है । संयम के भेद प्रभेद का ज्ञान करवाकर आचरण करवाना, गण-समाचारी, साधु संघ को सारणा-वारणा आदि से सँभालना-ग्लान को, वृद्ध को सँभालने के लिए व्यवस्था करना–दुसरे गण के साथ उचित व्यवहार करना, कब-कौन-सी अवस्था में अकेले विहार करना उस बात का ज्ञान करवाना ।

वो श्रुत विनय क्या है ? श्रुत विनय चार प्रकार से बताया है । जरुरी सूत्र पढ़ाना, सूत्र के अर्थ पढ़ाना, शिष्य को हितकर उपदेश देना, प्रमाण, नय, निक्षेप, संहिता आदि से अध्यापन करवाना, यह है श्रुत विनय ।

विक्षेपणा विनय क्या है ? विक्षेपणा विनय चार प्रकार से बताया है । सम्यक्त्व रूप धर्म न जाननेवाले शिष्य को विनय संयुक्त करना, धर्म से च्युत होनेवाले शिष्य को धर्म में स्थापित करना, उस शिष्य को धर्म के हित के लिए, सुख, सामर्थ्य, मोक्ष या भवान्तर में धर्म आदि की प्राप्ति के लिए तत्पर करना, यह है विक्षेपणा विनय ।

दोष निर्घातन विनय क्या है ? दोष निर्घातन विनय चार प्रकार से बताया है । वो इस प्रकार–क्रुद्ध व्यक्ति का क्रोध दूर करवाए, दुष्ट-दोषवाली व्यक्ति के दोष दूर करना, आकांक्षा, अभिलाषावाली व्यक्ति की आकांक्षा का निवारण करना, आत्मा को सुप्रणिहित श्रद्धा आदि युक्त रखना । यह है दोष-निर्घातन विनय ।

[१५] इस तरह के शिष्य की (ऊपर बताए अनुसार) चार प्रकार से विनय प्रतिपत्ति यानि गुरु भक्ति होती है । वो इस प्रकार–संयम के साधक वस्त्र, पात्र आदि पाना, बाल ग्लान अशक्त साधु की सहायता करना, गण और गणी के गुण प्रकाशित करना, गण का बोझ वहन करना ।

उपकरण उत्पादनपन क्या है ? वो चार प्रकार से बताया है–नवीन उपकरण पाना, पुराने उपकरण का संरक्षण और संगोपन करना, अल्प उपकरणवाले को उपकरण की पूर्ति करना, शिष्य के लिए उचित विभाग करना ।

सहायता विनय क्या है ? सहायता विनय चार प्रकार से बताया है–गुरु की आज्ञा को आदर के साथ स्वीकार करना, गुरु की आज्ञा के मुताबिक शरीर की क्रिया करना, गुरु के शरीर की यथा उचित सेवा करना, सर्व कार्य में कुटिलता रहित व्यवहार करना ।

वर्ण संज्वलना विनय क्या है ? वर्ण संजवलनता विनय चार प्रकार से बताया है– वीतराग वचन तत्पर गणी और गण के गुण की प्रशंसा करना, गणी-गणके निंदक को निरुत्तर करना, गणी गण के गुणगान करनेवाले को प्रोत्साहित करना, खुद बुर्जुग की सेवा करना, यह है वर्ण संज्वलनता विनय ।

भार प्रत्यारोहणता विनय कया है ? भार प्रत्यारोहणता विनय चार प्रकार से है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निराश्रित शिष्य का संग्रह करना, गण में स्थापित करना, नवदीक्षित को आचार और गौचरी की विधि समजाना । साधर्मिक ग्लान साधु की यथाशक्ति वैयावच्च के लिए तत्पर रहना, साधर्मिक में आपस मे क्लेश-कलह होने पर राग-द्वेष रहितता से निष्पक्ष या माध्यस्थ भाव से सम्यक् व्यवहार का पालन करके उस कलह के क्षमापन और उपशमन के लिए तैयार रहे।

वो ऐसा क्यों करे ? ऐसा करने से साधर्मिक कुछ बोलेंगे नहीं, झंझट पैदा नहीं होगा, कलह-कषाय न होंगे और फिर साधर्मिक संयम-संवर और समाधि में बहुलतावाले और अप्रमत्त होकर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरेंगे । यह भार प्रत्यारोहणता विनय है ।

इस प्रकार उस स्थविर भगवंत ने निश्चय से आँठ तरह की गणिसंपदा बताई है उस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

दसा-४-का मुनिदीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दसा-५-चित्तसमाधिस्थान

जिस तरह सांसारिक आत्मा को धन, वैभव, भौतिक चीज की प्राप्ति आदि होने से चित्त आनन्दमय होता है, उसी तरह मुमुक्षु आत्मा या साधुजन को आत्मगुण की अनुपम उपलब्धि से अनुपम चित्तसमाधि प्राप्त होती है । जिन चित्तसमाधि स्थान का इस 'दसा' में वर्णन किया है ।

[१६] हे आयुष्मान् ! वो निर्वाण-प्राप्त भगवंत के मुख से मैंने ऐसा सुना है–इस (जिन प्रवचन में) निश्चय से स्थविर भगवंत ने दश चित्त समाधि स्थान बताए है । वो कौन-से दश चित्त समाधि स्थान स्थविर भगवंत ने बताए है ? जो दश चित्त समाधि स्थान स्थविर भगवंत ने बताए है वो इस प्रकार है–

उस काल और उस समय यानि चौथे आरे में भगवान महावीर स्वामी के विचरण के वक्त वाणिज्यग्राम नगर था । नगरवर्णन (उववाई सूत्र के) चंपानगरी तरह जानना । वो वाणिज्यग्राम नगर के बाहर दूतिपलाशक चैत्य था, चैत्यवर्णन (उववाई सूत्र की तरह) जानना। (वहाँ) जितशत्रु राजा, उसकी धारिणी रानी उस तरह से सर्ब समोसरण (उववाई सूत्र अनुसार) जानना । यावत् पृथ्वी-शिलापट्टक पर वर्धमान स्वामी बिराजे, पर्षदा निकली और भगवान ने धर्म निरुपण किया । पर्षदा वापस लौटी ।

[१७] हे आर्य ! इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान महावीर निर्ग्रन्थ (साधु) और निर्ग्रन्थी (साध्वी) को कहने लगे । हे आर्य ! इर्या-भाषा-एषणा-आदान भांड़ मात्र निक्षेपणा और उच्चार प्रस्नवण खेल सिंधाणक जल की परिठापना, वो पाँच समितिवाले, गुप्तेन्द्रिय, गुप्तब्रह्मचारी, आत्मार्थी, आत्महितकर, आत्मयोगी, आत्मपराक्रमी, पाक्षिक पौषध (यानि पर्वतिथि को उपवास आदि व्रत से धर्म की पुष्टि समान पौषध) में समाधि प्राप्त और शुभ ध्यान करनेवाले निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को पहले उत्पन्न न हुइ हो वैसी चित्त (प्रशस्त) समाधि के दश स्थान उत्पन्न होते है । वो इस प्रकार–

पहले कभी भी उत्पन्न न होनेवाली नीचे बताई गई दश वस्तु उद्भव हो जाए तो चित्त को समाधि प्राप्त होती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) धर्म भावना, जिनसे सभी धर्मोको जान शकते है ।

(२) संज्ञि-जातिस्मरणज्ञान, जिनसे अपने पूर्व के भव और जाति का स्मरण होता है ।

(३) स्वप्न दर्शन का यथार्थ अहेसास ।

(४) देवदर्शन जिससे दिव्य ऋद्धि-दिव्यकान्ति-देवानुभाव देख शकते है ।

(५) अवधिज्ञान, जिससे लोक को जानते है ।

(६) अवधिदर्शन, जिससे लोक को देख शकते है ।

(७) मनःपर्यवज्ञान, जिससे ढाई द्वीप के संज्ञी-पंचेन्द्रिय के मनोगत भाव को जानते है ।

(८) केवलज्ञान, जिससे सम्पूर्ण लोक-अलोक को जानते है ।

(९) केवलदर्शन, जिससे सम्पूर्ण लोक-अलोक को देखते है ।

(१०) केवल मरण, जिससे सर्व दुःख का सर्वथा अभाव होता है ।

[१८] रागद्वेष रहित निर्मल चित्त को धारण करने से एकाग्रता समान ध्यान उत्पन्न होता है । शंकरहित धर्म में स्थित आत्मा निर्वाण प्राप्त करती है ।

[१९] इस तरह से चित्त समाधि धारण करनेवाली आत्मा दुसरी बार लोक में उत्पन्न नहीं होती और अपने अपने उत्तम स्थान को जातिस्मरण ज्ञान से जान लेता है ।

[२०] संवृत्त आत्मा यथातथ्य सपने को देखकर जल्द से सारे संसार समुद्र को पार कर लेता है और तमाम दुःख से छूटकारा पा लेता है ।

[२१] अंतप्रान्त भोजी, विविक्त, शयन, आसन सेवन करके, अल्पआहार करनेवाले, इन्द्रिय का दमन करनेवाले, षट्काय रक्षक मुनि को देवों के दर्शन होते है ।

[२२] सर्वकाम-भोग से विरक्त, भीम-भैरव, परिषह-उपर्सग सहनेवाले तपस्वी संयत को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है ।

[२३] जिसने तप के झरिये अशुभ लेश्या को दूर किया है उसका अवधि दर्शन अति विशुद्ध हो जाता है और उसके द्वारा सर्व-उर्ध्व-अधो तिर्यक्लोक को देख शकते है ।

[२४] सुसमाधियुक्त प्रशस्तलेश्यावाले, वितर्करहित भिक्षु और सर्व बँधन से मुक्त आत्मा मन के पर्याय को जानते है (यानि कि मनःपर्यवज्ञानी होते है)

[२५] जब जीव के समस्त ज्ञानावरण कर्म का क्षय हो तब वो केवली जीन समस्त लोक और अलोक को जानते है ।

[२६] जब जीव के समस्त दर्शनावरण कर्म का क्षय हो तब वो केवली जिन समस्त लोकालोक को देखते है ।

[२७] प्रतिमा यानि प्रतिज्ञा के विशुद्ध रूप से आराधना करनेवाले और मोहनिय कर्म का क्षय होने से सुसमाहित आत्मा पूरे लोकालोक को देखता है ।

[२८-३०] जिस तरह ताल वृक्ष पर सूई लगाने से समग्र तालवृक्ष नष्ट होता है, जिस तरह सेनापति की मौत के साथ पूरी सेना नष्ट होती है, जिस तरह धुँआ रहित अग्नि ईंधण के अभाव से क्षय होता है, उसी तरह मोहनीय कर्म का (सर्वथा) क्षय होने से बाकी सर्व कर्म का क्षय या विनाश होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३१] जिस तरह सूखे मूलवाला वृक्ष जल सींचन के बाद भी पुनः अंकुरित नहीं होता, उसी तरह मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से बाकी कर्म उत्पन्न नहीं होते ।

[३२] जिस तरह बीज जल गया हो तो पुनः अंकुर उत्पन्न नहीं होता उसी तरह कर्म बीज के जल जाने के बाद भव समान अंकुर उत्पन्न नहीं होते ।

[३३] औदारिक शरीर का त्याग करके, नाम, गोत्र, आयु और वेदनीय कर्म का छेदन करके केवली भगवंत कर्मरज से सर्वथा रहित हो जाते है ।

[३४] हे आयुष्मान् ! इस तरह (समाधि को) जानकर रागद्वेष रहित चित्त धारण करके शुद्ध श्रेणी प्राप्त करके आत्माशुद्धि को प्राप्त करते है । यानि क्षपक श्रेणी प्राप्त करके मोक्ष में जाते है । उस प्रकार मैं कहता हूँ ।

दसा-६-उपाशक प्रतिमा

जो आत्मा श्रमणपन के पालन के लिए असमर्थ हो वैसी आत्मा श्रमणपन का लक्ष्य रखकर उसकी उपासक बनती है । उसे समणोपासक कहते है । यानि वो 'उपाशक' की तरह पहचाने जाते है । ऐसे उपाशक को आत्म साधना के लिए-११ प्रतिमा का यानि ११ विशिष्ट प्रतिज्ञा का आराधन बताया है, जिसका इस दसा में वर्णन किया गया है ।

[३५] हे आयुष्मान् ! वो निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्वमुख से मैंने ऐसा सुना है । यह (जिन प्रवचन में) स्थविर भगवंत ने निश्चय से ग्यारह उपाशक प्रतिमा बताई है । स्थविर भगवंत ने कौन-सी ग्यारह उपाशक प्रतिमा बताई है ? स्थविर भगवंत ने जो ११ उपाशक प्रतिमा बताई है वो इस प्रकार है–(दर्शन, व्रत, सामायिक, पौषध, दिन में ब्रह्मचर्य, दिन-रात ब्रह्मचर्य, सचित्त-परित्याग, आरम्भ परित्याग, प्रेष्य परित्याग, उपधिभक्त-परित्याग, श्रमण-भूत)-(प्रतिमा यानि विशिष्ट प्रतिज्ञा)

जो अक्रियावादी है और जीव आदि चीज के अस्तित्व का अपलाप करते है । वो नास्तिकवादी है, नास्तिक मतिवाला है, नास्तिक दृष्टि रखते है, जो सम्यक्वादी नहीं है, नित्यवादी नहीं है यानि क्षणिकवादी है, जो परलोकवादी नहीं है जो कहते है कि यह लोक नहीं है, परलोक नहीं है, माता नहीं, पिता नहीं, अरिहंत नहीं, चक्रवर्ती नहीं, बलदेव नहीं, वासुदेव नहीं, नर्क नहीं, नारकी नहीं, सुकृत और दुष्कृत कर्म की फलवृत्ति विशेष नहीं, सम्यक् तरह से आचरण किया गया कर्म शुभ फल नहीं देता, कुत्सित तरह से आचरण किया गया कर्म अशुभ फल नहीं देता कल्याण कर्म और पाप कर्म फल रहित है । जीव परलोक में जाकर उत्पन्न नहीं होता, नरक आदि चार गति नहीं है, सिद्धि नहीं जो इस प्रकार कहता है, इस तरह की बुद्धिवाला है, इस तरह की दृष्टिवाला है, जो ऐसी उम्मीद और राग या कदाग्रह युक्त है वो मिथ्यादृष्टि जीव है ।

ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव महा इच्छवाला, महारंभी, महापरिग्रही, अधार्मिक, अधर्मानुगामी, अधर्मसेवी, अधर्मख्यातिवाला, अधर्मानुरागी, अधर्मद्दष्टा, अधर्मजीवी, अधर्मअनुरक्त, अधार्मिक शीलवाला, अधार्मिक आचरणवाला और अधर्म से आजीविका करते हुए विचरता है । वो मिथ्यादृष्टि नास्तिक आजीविक के लिए दुसरो को कहता है, जीव को मार डालो, उसके अंग-छेदन करो, सर, पेट आदि भेदन करो, काट दो । उसके अपने हाथ लहूँ से भरे रहते है, वो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंड, रौद्र और शुद्र होता है । सोचे बिना काम करता है, साहसिक होता है, लोगों से रिश्वत लेता है । धोखा, माया, छल, कूड़, कपट और मायाजाल बनाने में माहिर होता है । वो दुःशील, दुष्टजन का परिचित, दुश्चरित, दारूण स्वभावी, दुष्टव्रती, दुष्कृत करने में आनन्दित रहता है । शील रहित, गुण प्रत्याख्यान-पौषध-उपवास न करनेवाला और असाधु होता है ।

वो जावज्जीव के लिए सर्व तरह के प्राणातिपात से अप्रतिविरत रहता है यानि हिंसक रहता है । उसी तरह सर्व तरह से मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह का भी त्याग नहीं करता। सर्व तरह से क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, दोष, कलह, आल, चुगली, निंदा, रति-अरति, माया-मृषा और मिथ्या दर्शन शल्य से जावज्जीव अविरत रहता है । यानि इस १८ पाप स्थानक का सेवन करता रहता है ।

वो सर्व तरह से स्नान, मर्दन, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, माला, अलंकार से यावज्जीव अप्रतिविरत रहता है, शकट, रथ, यान, युग, गिल्ली, थिल्ली, शिबिका, स्यन्दमानिका, शयन, आसन, यानवाहन, भोजन, गृह सम्बन्धी वस्त्र-पात्र आदि से यावज्जीव अप्रतिविरत रहता है । सर्व, अश्व, हाथी, गाय, भैंस, भेड़-बकरे, दास-दासी, नौकर-पुरुष, सोना, धन, धान्य, मणि-मोती, शंख, मूगा से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है ।

यावज्जीव के लिए हिनाधिक तोलमाप, सर्व आरम्भ, समारम्भ, सर्वकार्य करना-करवाना, पचन-पाचन, कूटना, पीसना, तर्जन-ताड़न, वध-बन्ध, परिक्लेश यावत् वैसे तरह के सावद्य और मिथ्यात्ववर्धक, दुसरे जीव के प्राणो को परिताप पहुँचानेवाला कर्म करते है । यह सभी पाप कार्य से अप्रतिविरत यानि जुड़ा रहता है ।

जिस तरह कोई पुरुष कलम, मसुर, तल, मुग, ऊड़द, बालोल, कलथी, तुवर, काले चने, ज्वार और उस तरह के अन्य धान्य को जीव रक्षा के भाव के सिवा क्रूरता पूर्वक उपपुरुषन करते हुए मिथ्यादंड़ प्रयोग करता है । उसी तरह कोई पुरुष विशेष तीतर, वटेर, लावा, कबूतर, कपिंजल, मृग, भैंस, सुकर, मगरमच्छ, गोधा, कछुआ और सर्प आदि निर्दोष जीव को क्रूरता से मिथ्या-दंड़ का प्रयोग करते है । यानि कि निर्दयता से घात करते है । और फिर उसकी जो बाह्य पर्षदा है । जैसे कि–दास, दूत, वेतन से काम करनेवाले, हिस्सेदार, कर्मकर, भोग पुरुष आदि से हुए छोटे अपराध का भी खुद ही बड़ा दंड़ देते है । इसे दंड़ दो, इसे मुंड़न कर दो, इसकी तर्जना करो-ताड़न करो, इसे हाथ में-पाँव में, गले में सभी जगह बेड़ियाँ लगाओ, उसके दोनों पाँव में बेड़ी बाँधकर, पाँव की आँटी लगा दो, इसके हाथ काट दो, पाँव काट दो, कान काट दो, नाखून छेद दो, होठ छेद दो, सर उड़ा दो, मुँह तोड़ दो, पुरुष चिह्न काट दो, हृदय चीर दो, उसी तरह आँख-दाँत-मुँह, जीह्वा उखेड़ दो, इसे रस्सी से बाँधकर पेड़ पर लटका दो, बाँधकर जमीं पर घिसो, दहीं की तरह मंथन करो, शूली पर चड़ाओ, त्रिशूल से भेदन करो, शस्त्र से छिन्न-भिन्न कर दो, भेदन किए शरीर पर क्षार डालो, उसके झख्म पर घास डालो, उसे शेर, वृषभ, साँड़ की पूँछ से बाँध दो, दावाग्नि में जला दो, टुकड़े कर के कौए को माँस खिला दो, खाना-पीना बन्द कर दो, जावज्जीव के बँधन में रखो, अन्य किसी तरह से कमौत से मार डालो ।

उस मिथ्यादृष्टि की जो अभ्यंतर पर्षदा है । जैसे कि माता, पिता, भाई, बहन, भार्या, पुत्री, पुत्रवधू आदि उनमें से किसी का भी थोड़ा अपराध हो तो खुद ही भारी दंड़ देते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे कि ठंड़े पानी में डूबोए, गर्म पानी शरीर पर डाले, आग से उनके शरीर जलाए, जोत-बेंत-नेत्र आदि की रस्सी से, चाबूक से, छिवाड़ी से, मोटी वेल से, मार-मारकर दोनों बगल के चमड़े उखेड़ दे, दंड़, हड्डी, मूंड़ी, पत्थर, खप्पर से उनके शरीर को कूटे, पीसे, इस तरह के पुरुष वर्ग के साथ रहनेवाले मानव दुःखी रहते है । दूर रहे तो प्रसन्न रहते है . इस तरह का पुरुष वर्ग हंमेशा, डंडा साथ रखते है । और किसी से थोड़ा भी अपराथ हो तो अधिकाधिक दंड़ देने का सोचते है । दंड़ को आगे रखकर ही बात करते है । ऐसा पुरुष यह लोक और परलोक दोनों में अपना अहित करते है । ऐसे लोग दुसरों को दुःखी करते है, शोक संतप्त करते है, तड़पाते है, सताते है, दर्द देते है, पीटते है, परिताप पहुँचाते है, उस तरह से वध, बन्ध, कलेश आदि पहुँचाने में जुड़े रहते है ।

इस तरह से वो स्त्री सम्बन्धी काम-भोग में मूर्छित, गृद्ध, आसक्त और पंचेन्द्रिय के विषय में डूबे रहते है । उस तरह से वो चार, पाँच, छ यावत् दश साल या उससे कम-ज्यादा काल कामभोग भुगतकर बैरभाव के सभी स्थान सेवन करके कईं अशुभ कर्म इकट्ठे करके, जिस तरह लोहा या पत्थर का गोला पानी में फेंकने से जल-तल का अतिक्रमण करके नीचे तलवे में पहुँच जाए उस तरह से इस तरह का पुरुष वर्ग वज्र जैसे कईं पाप, क्लेश, कीचड़, बैर, दंभ, माया, प्रपंच, आशातना, अयश, अप्रतीतिवाला होकर पायः त्रसप्राणी का घात करते हुए भूमितल का अतिक्रमण करके नीचे नरकभूमि में स्थान पाते है ।

वो नरक भीतर से गोल और बाहर से चोरस है । नीचे छरा-अस्तरा के आकारवाली है । नित्य घोर अंधकार से व्याप्त है । चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिष्क की प्रभा से रहित है । उस नरक की भूमि चरबी, माँस, लहूँ, परू का समूह जैसे कीचड़ से लेपी हुई है । मल-मूत्र आदि अशुचि पदार्थ से भरी और परम गंधमय है । काली या कपोत वर्णवाली, अग्नि के वर्ण की आभावाली है, कर्कश स्पर्शवाली होने से असह्य है, अशुभ होने से वहाँ अशुभ दर्द होता है, वहाँ निद्रा नहीं ले शकते, उस नारकी के जीव उस नरक में अशुभ दर्द का प्रति वक्त अहेसास करते हुए विचरते है । जिस तरह पर्वत के अग्र हिस्से पर पैदा हुआ पेड़ जड़ काटने से ऊपर का हिस्सा भारी होने से जहाँ नीचा स्थान है, जहाँ दुर्गम प्रवेश करता है या विषम जगह है वहाँ गिरता है, उसी तरह ऊपर कहने के मुताबिक मिथ्यात्वी, घोर पापी पुरुष वर्ग एक गर्भ में से दुसरे गर्भ में, एक जन्म में से दुसरे जन्म में, एक मरण में से दुसरे मरण में, एक दुःख में से दुसरे दुःख में गिरते है । इस कृष्णपाक्षिक नारकी भावि में दुर्लभबोधि होती है । इस तरह का जीव अक्रियावादी है ।

[३६] तो क्रियावादी कौन है ? वो क्रियावादी इस तरह का है जो आस्तिकवादी है, अस्तिक बुद्धि है, आस्तिक दृष्टि है । सम्यक्वादी और नित्य यानि मोक्षवादी है, परलोकवादी है । वो मानते है कि यह लोक, परलोक है, माता-पिता है, अरिहंत चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव है, सुकृत-दुष्कृत कर्म का फल है, सदा चरित कर्म शुभ फल और असदाचरित कर्म अशुभ फल देते है । पुण्य-पाप फल सहित है । जीव परलोक में जाता है, आता है, नरक आदि चार गति है और मोक्ष भी है इस तरह माननेवाले आस्तिकवादी, आस्तिक बुद्धि, आस्तिक दृष्टि, स्वच्छंद, राग अभिनिविष्ट यावत् महान इच्छावाला भी हो और उत्तर दिशावर्ती नरक में उत्पन्न भी शायद हो तो भी वो शुक्लपाक्षिक होता है । भावि में सुलभबोधि होकर, सुगति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त करके अन्त में मोक्षगामी होता है, वो क्रियावादी है ।

[३७] (उपासक प्रतिमा-१) क्रियावादी मानव सर्व (श्रावक श्रमण) धर्म रूचिवाला होता है । लेकिन सम्यक् तरह से कईं शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपात आदि विरमण, पच्चक्खाण, पौषधोपवास का धारक नहीं होता (लेकिन) सम्यक् श्रद्धावाला होता है, यह प्रथम दर्शन-उपाशक प्रतिमा जानना । (जो उत्कृष्ट से एक मास की होती है ।)

[३८] अब दुसरी उपाशक प्रतिमा कहते है–वो सर्व धर्म रुचिवाला होता है । (शुद्ध सम्यक्त्व के अलावा यति (श्रमण) के दश धर्म की दृढ़ श्रद्धा वाला होता है) नियम से कईं शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपात आदि विरमण, पच्चक्खाण और पौषधोपवास का सम्यक् परिपालन करता है । लेकिन सामायिक और देसावगासिक का सम्यक् प्रतिपालन नहीं कर शकता । वो दुसरी उपासक प्रतिमा (जो व्रतप्रतिमा कहलाती है) । इस प्रतिमा का उत्कृष्ट काल दो महिने है ।

[३९] अब तीसरी उपाशक प्रतिमा कहते है–वो सर्व धर्म रुचिवाला और पूर्वोक्त दोनों प्रतिमा का सम्यक् परिपालक होता है । वो नियम से कईं शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपात–आदि विरमण, पच्चक्खाण, पौषधोपवास का सम्यक् तरह से प्रतिपालन करता है । सामायिक और देसावकासिक व्रत का भी सम्यक् अनुपालक होता है । लेकिन वो चौदश, आठम, अमावास और पूनम उन तिथि में प्रतिपूर्ण पौषधोपवास का सम्यक् परिपालन नहीं कर शकता। वो तीसरी (सामायिक) उपासक प्रतिमा (इस सामायिक प्रतिमा के पालन का उत्कृष्ट काल तीन महिने है ।)

[४०] अब चौथी उपासक प्रतिमा कहते है । वो सर्व धर्म रूचिवाला (यावत् यह पहले कही गई तीनों प्रतिमा का उचित अनुपालन करनेवाला होता है ।) वो नियम से बहोत शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपात आदि विरमण, पच्चक्खाण, पौषधोपवास और सामायिक, देशावकासिक का सम्यक् परिपालन करता है । (लेकिन) एक रात्रि की उपासक प्रतिमा का सम्यक् परिपालन नहीं कर शकता । यह चौथी (पौषध नाम की) उपासक प्रतिमा बताई (जिसका उत्कृष्ट काल चार मास है ।)

[४१] अब पाँचवी उपासक प्रतिमा कहते है । वो सर्व धर्म रूचिवाला होता है । (यावत् पूर्वोक्त चार प्रतिमा का सम्यक् परिपालन करनेवाला होता है ।) वो नियम से कईं शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपात आदि विरमण, पच्चक्खाण, पौषधोपवास का सम्यक् परिपालन करता है । वो सामायिक देशावकाशिक व्रत का यथासूत्र, यथाकल्प, यथातथ्य, यथामार्ग शरीर से सम्यक् तरह से स्पर्श करनेवाला, पालन, शोधन, कीर्तन करते हुए जिनाज्ञा मुताबिक अनुपालक होता है । वो चौदश आदि पर्व तिथि पर पौषध का अनुपालक होता है एक रात्रि की उपासक प्रतिमा का सम्यक् अनुपालन करता है । वो स्नान नहीं करता, रात्रि भोजन नहीं करता, वो मुकुलीकृत्त यानि धोती की पाटली नहीं बांधता, वो इस तरह के आचरण पूर्वक विचरते हुए जघन्य से एक, दो या तीन दिन और उत्कृष्ट से पाँच महिने तक इस प्रतिमा का पालन करता है । वो पाँचवी (दिन में ब्रह्मचर्य नाम की उपासक प्रतिमा ।)

[४२] अब छट्ठी उपासक प्रतिमा कहते है । वो सर्व धर्म रूचिवाला यावत् एक रात्रि की उपासक प्रतिमा का सम्यक् अनुपालन कर्ता होता है । वो स्नान न करनेवाला, दिन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही खानेवाला, धोती की पाटली न बांधनेवाला, दिन और रात में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है । लेकिन वो प्रतिज्ञापूर्वक सचित्त आहार का परित्यागी नहीं होता । इस तरह के आचरण से विचरते हुए वो जघन्य से एक, दो या तीन दिन और उत्कृष्ट से छ मास तक सूत्रोक्त मार्ग के मुताबिक इस प्रतिमा का सम्यक् तरह से पालन करते है–यह छट्ठी (दिन-रात ब्रह्मचर्य) उपासक प्रतिमा ।

[४३] अब साँतवी उपासक प्रतिमा कहते है वो सर्व धर्म रूचिवाला होता है । यावत् दिन-रात ब्रह्मचारी और सचित्त आहार परित्यागी होता है । लेकिन गृह आरम्भ के परित्यागी नहीं होता । इस तरह के आचरण से विचरते हुए वह जगन्य से एक, दो या तीन दिन से उत्कृष्ट साँत महिने तक सूत्रोक्त मार्ग अनुसार इस प्रतिमा का पालन करते है । यह (सचित्त परित्याग नाम की) साँतवी उपासक प्रतिमा ।

[४४] अब आँठवी उपासक प्रतिमा कहते है । वो सर्व धर्म रूचिवाला होता है । यावत् दिन-रात ब्रह्मचर्य पालन करता है ।

सचित्त आहार का और घर के सर्व आरम्भ कार्य का परित्यागी होता है । लेकिन अन्य सभी आरम्भ के परित्यागी नहीं होते । इस तरह के आचरणपूर्वक विचरते वह जघन्य से एक, दो, तीन यावत् आँठ महिने तक सूत्रोक्त मार्ग अनुसार इस प्रतिमा का पालन करते है । यह (आरम्भ परित्याग नाम की) आँठवी उपासक प्रतिमा ।

[४५] अब नौवीं उपासक प्रतिमा कहते है । वो सर्व धर्म रूचिवाले होते है । यावत् दिन-रात पूर्ण ब्रह्मचारी, सचित्ताहार और आरम्भ के परित्यागी होते है । दुसरे के द्वारा आरम्भ करवाने के परित्यागी होते है । लेकिन उद्दिष्ट भक्त यानि अपने निमित्त से बनाए हुए भोजन करने का परित्यागी नहीं होता । इस तरह आचरणपूर्वक विचरते वह जघन्य से एक, दो या तीन दिन से उत्कृष्ट नौ महिने तक सूत्रोक्त मार्ग अनुसार प्रतिमा को पालता है, यह नौवीं (प्रेष्यपरित्याग नामक) उपासक प्रतिमा ।

[४६] अब दशवीं उपासक प्रतिमा कहते है–वो सर्व धर्म रूचिवाला होता है । (इसके पहले बताए गए नौ उपासक प्रतिमा का धारक होता है ।) उद्दिष्ट भक्त-उसके निमित्त से बनाए भोजन-का परित्यागी होता है वो सिर पर मुंड़न करवाता है लेकिन चोटी रखता है । किसी के द्वारा एक या ज्यादा बार पूछने से उसे दो भाषा बोलना कल्पे । यदि वो जानता हो तो कहे कि "मैं जानता हूँ" यदि न जानता हो तो कहे कि "मैं नहीं जानता" इस तरह के आचरण पूर्वक विचरते वह जघन्य से एक, दो, तीन दिन, उत्कृष्ट से दश महिने तक सूत्रोक्त मार्ग अनुसार इस प्रतिमा का पालन करते है । यह (उद्दिष्ट भोजन त्याग नामक) दशवीं उपासक प्रतिमा ।

[४७] अब ग्यारहवी उपासक प्रतिमा कहते है । वो सर्व (साधु-श्रावक) धर्म की रूचिवाला होने के बावजूद उक्त सर्व प्रतिमा को पालन करते हुए उद्दिष्ट भोजन परित्यागी होता है । वो सिर पर मुंड़न करवाता है या लोच करता है । वो साधु आचार और पात्र-उपकरण ग्रहण करके श्रमण-निर्ग्रन्थ का वेश धारण करता है । उनके लिए प्ररूपित श्रमण धर्म को सम्यक् तरह से काया से स्पर्श करते और पालन करते हुए विचरता है । चार हाथ प्रमाण भूमि देखकर चलता है । (उस तरह से ईया समिति का पालन करते हुए) त्रस जानवर को देखकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी रक्षा के लिए पाँव उठा लेता है, पाँव सिकुड़ लेता है । या टेढ़े पाँव रखकर चलता है (उस तरह से जीव रक्षा करता है) जीव व्याप्त मार्ग छोड़कर मुमकिन हो तो दुसरे विद्यमान मार्ग पर चलता है । जयणापूर्वक चलता है लेकिन पूरी तरह जाँच किए बिना सीधी राह पर नहीं चलता, केवल ज्ञाति-वर्ग के साथ उसके प्रेम-बँधन का विच्छेद नहीं होता ।

इसलिए उसे ज्ञाति के लोगो में भिक्षा वृत्ति के लिए जाना कल्पे । (मतलब की वो रिश्तेदार के वहाँ से आहार ला शकता है ।) स्वजन-रिश्तेदार के घर पहुँचे उससे पहले चावल बन गए हो और मुँग की दाल न हुई हो तो चावल लेना कल्पे लेकिन मुँग की दाल लेना न कल्पे यदि पहले मुँग की दाल हुई हो और चावल न हुए हो तो मुँग की दाल लेना कल्पे लेकिन चावल लेना न कल्पे । यदि उनके पहुँचने से पहले दोनों तैयार हो जो तो दोनों लेना कल्पे यदि उनके पहुँचने से पहले दोनों में से कुछ भी न हुआ हो तो दो में से कुछ भी लेना न कल्पे । यानि वो पहुँचे उससे पहले जो चीज तैयार हो वो लेना कल्पे और उनके जाने के बाद बनाई कोई चीज लेना न कल्पे ।

जब वो (श्रमणभूत) उपासक गृहपति के कुल (घर) में आहार ग्रहण करने की इच्छा से प्रवेश करे तब उसे इस तरह से बोलना चाहिए–"प्रतिमाधारी श्रमणोपासक को भिक्षा दो ।" इस तरह के आचरण पूर्वकविचरते उस उपासक को देखकर शायद कोई पूछे, "हे आयुष्मान् तुम कौन हो ?" वो बताओ । तब उसे पूछनेवाले को कहना चाहिए कि, "मैं प्रतिमाधारी श्रमणोपासक हूँ ।"

इस तरह के आचरण पूर्वक विचरते वह जघन्य से एक, दो या तीन दिन से, उत्कृष्ट ११ महिने तक विचरण करे । यह ग्यारहवीं (श्रमणभूत नामक) उपासक प्रतिमा ।

इस प्रकार वो स्थविर भगवंत ने निश्चय से ग्यारह उपासक प्रतिमा (श्रावक को करने की विशिष्ट ११ प्रतिज्ञा) बताई है । उस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

दसा-६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दसा-७-भिक्षु-प्रतिमा

इस दसा का नाम भिक्षु-प्रतिमा है । जिस तरह इसके पूर्व की दसा में श्रावक-श्रमणोपासक की ११ प्रतिमा का निरुपण किया है वैसे यहां भिक्षुकी १२-प्रतिमा बताई है । यहाँ भी 'प्रतिमा' शब्द का अर्थ विशिष्ट प्रतिज्ञा ऐसा ही समझना ।

[४८] हे आयुष्मान् ! वो निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्व-मुख से मैंने ऐसा सुना है इस (जिन प्रवचन में) स्थविर भगवंत ने निश्चय से बारह-भिक्षुप्रतिमा बताई है । उस स्थविर भगवंत ने निश्चय से बारह भिक्षु प्रतिमा कौन-सी बताई है ? उस स्थविर भगवंत ने निश्चय से कही बारह भिक्षु प्रतिमा इस प्रकार है–एक मासिकी, द्विमासिकी, त्रिमासिकी, चर्तुमासिकी, पंचमासिकी, छ मासिकी, सात मासिकी, पहली सात रात्रि-दिन, दुसरी सात रात्रि-दिन, तीसरी सात रात्रि-दिन, अहोरात्रि की और एकरात्रि की ।

[४९] मासिकी भिक्षु प्रतिमा को धारण करनेवाले साधु काया को वोसिरा के तथा शरीर के ममत्व भाव के त्यागी होते है । देव-मानव या तिर्यंच सम्बन्धी जो कोई उपसर्ग आता है । उसे वो सम्यक् तरह से सहता है । उपसर्ग करनेवाले को क्षमा करते है, अदीन भाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से सहते है, शारीरिक क्षमतापूर्वक उसका सामना करता है । मासिक भिक्षु प्रतिमाधारी साधु को एक दत्ति भोजन या पानी को दाता दे तो लेना कल्पे । यह दत्ति भी अज्ञात कुल से, अल्पमात्रा में दुसरों के लिए बनाए हुए अनेक द्विपद, चतुष्पद, श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी आदि के भिक्षा लेकर चले जाने के बाद ग्रहण करना कल्पे । और फिर यह दत्ति जहाँ एक व्यक्ति भोजन कर रहा हो वहाँ से लेना कल्पे । लेकिन दो, तीन, चार, पाँच व्यक्ति साथ बैठकर भोजन कर रहे हो तो वहाँ से लेना नहीं कल्पता । गर्भिणी, छोटे बच्चेवाली या बालक को दूध पीला रही हो, उसके पास से आहार-पानी की दत्ती लेना कल्पता नहीं, जिसके दोनो पांव उंबरे के बहार या अंदर हो तो उस स्त्री के पास से दत्ति लेना न कल्पे परंतु एक पांव अंदर और एक पांव बाहर हो तो उसके हाथ से लेना कल्पता है । मगर यदी वो देना न चाहे तो उसके हाथ से लेना न कल्पे ।

मासिकी भिक्षु प्रतिमा धारण किया हुए साधु को आहार लाने के तीन समय बताये है–आदि, मध्य और अन्त, जो भिक्षु आदि में गौचरी जावे, वह मध्य या अन्त में न जावे, जो मध्य में गौचरी जावे वह आदि या अन्त में न जावे, जो अन्त में गौचरी जावे वो आदि या मध्य में न जावे ।

मासिक भिक्षु प्रतिमाधारी साधुको छह प्रकार से गौचरी बताई है । पेटा, अर्धपेटा, गौमूत्रिका, पतंगवीथिका, शम्बूकावर्ती, गत्वाप्रत्यागता । इन छह प्रकार की गौचरी में से कोई एक प्रकार की गौचरी का अभिग्रह लेकर प्रतिमाधारी साधु को भिक्षा लेना कल्पता है ।

जिस ग्राम यावत् मडंब में एकमासिकी भिक्षुप्रतिमा धारक साधु को यदी कोई जानता हो तो उसको वहां एक रात्रि रहना कल्पे, यदी कोई न जानता हो तो एक या दो रात्री रहना कल्पे, परंतु यदी वह उससे ज्यादा निवास करे तो वह भिक्षु उतने दिनों के दिक्षापर्याय का छेद या परिहार तप का भागी होता है ।

मासिकी भिक्षु प्रतिमाधारक साधु को चार प्रकार की भाषा बोलना कल्पता है–याचनी, पृच्छनी, अनुज्ञापनी तथा पृष्ठव्याकरणी ।

मासिकी भिक्षु प्रतिमा प्रतिपन्न साधु को तीन प्रकार के उपाश्रयो की प्रतिलेखना करना, आज्ञा लेना अथवा वहाँ निवास करना कल्पे–उद्यानगृह, चारो ओर से ढका हुआ न हो ऐसा गृह, वृक्ष के नीचे रहा हुआ गृह । भिक्षु प्रतिमाधारक साधु को तीन प्रकार के संस्तारक की प्रतिलेखना, आज्ञा लेना एवं ग्रहण करना कल्पता है–पृथ्वीशीला, काष्ठपाट, पूर्व से बिछा हुआ तृण ।

मासिकी भिक्षुप्रतिमा धारक साधु को उपाश्रय में कोई स्त्री-पुरुष आकर अनाचार का आचरण करता दिखाई दे तो उस उपाश्रय में आना या जाना न कल्पे, वहां कोई अग्नि प्रज्वलित हो जाए या अन्य कोई प्रज्वलित करे तो वहां आना या जाना न कल्पे, कदाचित् कोई हाथ पकड के बाहर निकालना चाहे तो भी उसका सहारा लेकर न नीकले, किन्तु यतनापूर्वक चलते हुए बाहर नीकले ।

मासिकी भिक्षु प्रतिमा धारक साधु के पांव में कांटा, कंकर या कांच घुस जाए, आंख में मच्छर आदि सूक्ष्म जंतु, बीज, रज आदि गीरे तो उसको निकालना अथवा शुद्धि करना न कल्पे, किन्तु यतनापूर्वक चलते रहना कल्पे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी साधु को विचरण करते हुए जहाँ सूर्यास्त हो जाए वहीं ही रहना चाहिए । वहां जल हो या स्थल, दुर्गम मार्ग हो निम्न मार्ग, पर्वत हो या विषम मार्ग, खड्डा हो या गुफा हो, रातभर वहीं ही रहना चाहिए, एक कदम भी आगे नहीं जा शकता । सुबह में प्रभात होने से सूर्य जाज्वल्यमान होने के बाद किसी भी दिशा में यतनापूर्वक गमन करना कल्पता है । मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारक साधु को सचित्त पृथ्वी पर निद्रा लेना या लैटना न कल्पे, केवली भगवंत ने उसे कर्मबन्ध का कारण बताया है । वह साधु उस प्रकार निद्रा लेवे या लैटे तब अपने हाथ से भूमि का स्पर्श करता है तब जीवहिंसा होती है इस लिए उसे सूत्रोक्त विधि से निर्दोष स्थान में रहना या विचरण करना चाहिए ।

यदी वह साधु को मल-मूत्र की शंका होवे तब उसे रोकना नहीं चाहिए, किन्तु पहले प्रतिलेखीत भूमि पर त्याग करना चाहिए , वापस उसी उपाश्रय में आकर सूत्रोक्त विधि से निर्दोष स्थान में रहना चाहिए ।

मासिकी भिक्षु प्रतिमाधारक साधु को सचित्त रजवाले शरीर के साथ गृहस्थ या गृहसमुदाय में भोजन-पान के लिए जाना या वहाँ से निकलना न कल्पे । यदि उसे ज्ञात हो जाए कि शरीर पर सचित्त रज पसीने से अचित्त हो गई है, तब उसे वहां प्रवेश या निर्गमन करना कल्पे। उसको अचित्त ऐसे ठंडे या गर्म पानी से हाथ, पाँव, दाँत, आंख या मुख एक बार या बारबार धोना न कल्पे, सीर्फ मल-मूत्रादि से लिप्त शरीर या भोजन-पान से लिप्त हाथ या मुख धोना कल्पता है ।

मासिकी भिक्षु प्रतिमाधारी साधु के सामने अश्व, बैल, हाथी, भेंस, सिंह, वाघ, भेडीया, रींछ, चित्ता, तेदुंक, पराशर, कुत्ता, बिल्ली, साप, शशला, शीयाल, भुंड आदि हिंसक प्राणी आ जाए तब भयभीत होकर एक कदम भी पीछे खीसकना न कल्पे । इसी तरह ठंड लगे तब धूप में या गर्मी लगे तब छांव में जाना न कल्पे, किन्तु जहाँ जैसी ठंड या गर्मी हो वह उसे सहन करना चाहिए ।

मासिकी भिक्षु प्रतिमा को वह साधु सूत्र, आचार या मार्ग में जिस तरह कही हो उसी प्रकार से सम्यक्तया स्पर्श करना, पालन करना, शुद्धिपूर्वक किर्तन और आराधना करना चाहिए, तभी वह साधु जिनाज्ञा का पालक होता है ।

[५०] द्विमासिकी भिक्षु प्रतिमाधारक साधु हंमेशां काया के ममत्व का त्याग किया हुआ...इत्यादि सर्व कथन प्रथम भिक्षु प्रतिमा समान जानना । विशेष यह कि भोजन-पानी की दो दत्ति ग्रहण करना कल्पे तथा दुसरी प्रतिमा का पालन दो मास तक करे...इसी प्रकार से भोजन-पानी की एक एक दत्ति और एक-एक मास की प्रतिमा का पालन सात दत्ति पर्यन्त समज लेना । अर्थात् तीसरी प्रतिमा-तीन दत्ति-तीन मास...इत्यादि सात पर्यन्त जानना ।

[५१] अब आठवीं भिक्षु प्रतिमा बताते है, प्रथम सात रात्रिदिन के आठवीं भिक्षु प्रतिमाधारक साधु सर्वदा काया के ममत्व रहित-यावत् उपसर्ग आदि को सहन करे वह सब प्रथम प्रतिमा समान जानना । उस साधु को निर्जल चोथ भक्त के बाद अन्न-पान लेना कल्पे, गांव यावत् राजधानी के बाहर उत्तासन, पार्श्वासन या निषद्यासन से कायोत्सर्ग करे, देव-मनुज या तिर्यंच सम्बन्धी जो कोई उपसर्ग उत्पन्न होवे तो उन उपसर्ग से उन साधु को ध्यान से चलित या पतित होना न कल्पे । यदी मलमूत्र की बाधा होवे तो पूर्व प्रतिलेखीत स्थान में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा कर त्याग करे किन्तु रोके नहीं, फिर वापस विधिपूर्वक आकर अपने स्थान में कार्योत्सर्ग में स्थिर रहे । इस प्रकार वह साधु प्रथमा एक सप्ताहरूप आठवीं प्रतिमा का सूत्रानुसार पालन करता यावत् जिनाज्ञाधारी होता है ।

इसी तरह नववीं-दुसरी एक सप्ताह की प्रतिमा होती है । विशेष यहि कि इस प्रतिमाधारी साधु को दंडासन, लंगडासन या उत्कुटुकासन में स्थित रहना चाहिए । दशवीं-तीसरी एक सप्ताह की प्रतिमा के आराधन काल में उसे गोदोहिकासन, वीरासन या आम्रकुब्जासन में स्थित रहना चाहिए ।

[५२] इसी तरह ग्यारहवीं–एक अहोरात्र की भिक्षु प्रतिमा के सम्बन्ध में जानना । विशेष यह कि निर्जल षष्ठभक्त करके अन्न-पान ग्रहण करना, गांव यावत् राजधानी के बाहर दोनों पांव सकुड कर और दोनो हाथ घुटने पर्यन्त लम्बे रखकर कार्योत्सर्ग करना । शेष पूर्ववत् यावत् जिनाज्ञानुसार पालन करनेवाला होता है ।

अब बारहवीं भिक्षु प्रतिमा बताते है–एक रात्रि की बारहवीं भिक्षु प्रतिमाधारक साधु काया के ममत्व रहित इत्यादि सब कथन पूर्ववत् जानना । विशेष यह कि निर्जल अष्टम भक्त करे, उसके बाद अन्न-पान ग्रहण करे । गांव यावत् राजधानी के बाहर जाकर शरीर को थोडा आगे झुकाकर एक पुद्गल पर दृष्टि रख के अनिमेष नेत्रो से निश्चल अंगयुक्त सर्व इन्द्रियो का गोपन करके दोनो पांव सकुडकर, दोनो हाथ घुंटने तक लटकते रखे हुए कायोत्सर्ग करे, देव-मनुज या तिर्यंच के उपसर्ग सहे, किन्तु इसे चलित या पतित होना न कल्पे । मलमूत्र की बाधा में पूर्वोक्त विधि का पालन करके कायोत्सर्ग में स्थिर हो जाए ।

एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा का सम्यक् पालन न करनेवाले साधु के लिए तीन स्थान अहितकर, अशुभ, असामर्थ्यकर, अकल्याणकर, एवं दुःखद भावियुक्त होता है;–उन्माद की प्राप्ति, लम्बे समय के लिए रोग की प्राप्ति, केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट होना । तीन स्थान हितकर, शुभ, सामर्थ्यकर, कल्याणकर एवं सुखद भावियुक्त होते है–अवधि, मनःपर्यव एवं केवलज्ञान की उत्पत्ति । इस तरह यह एक रात्रि की-बारहवीं भिक्षु प्रतिमा को सूत्र-कल्प-मार्ग तथा यथार्थरूप से सम्यक् प्रकार से स्पर्श, पालन, शोधन, पूरण, कीर्तन तथा आराधन करनेवाले जिनाज्ञा के आराधक होते है ।

इन बारह भिक्षुप्रतिमाओ को निश्चय से स्थविर भगवंतोने बताई है ।

दसा-७-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दसा-८-पर्युषणा

[५३] उसकाल उस समय में श्रमण भगवान महावीर की पांच घटनाएं उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुई । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में-देवलोक से च्यवन, गर्भसंक्रमण, जन्म, दीक्षा तथा अनुत्तर अनंत अविनाशी निरावरण केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति । भगवंत स्वाति नक्षत्र में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।...यावत्...इस पर्युषणकल्प का पुनः पुनः उपदेश किया गया है । (यहाँ "यावत्" शब्द से च्यवन से निर्वाण तक का पुरा महावीर चरित्र समझ लेना चाहिए ।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसा-९-मोहनीय स्थान

आठ कर्मो में मोहनीय कर्म प्रबल है । उसकी स्थिति भी सबसे लम्बी है । इसके संपूर्ण क्षय के साथ ही क्रम से शेष कर्मप्रकृति का क्षय होता है । इस मोहनीय कर्म के बन्ध के ३० स्थान (कारण) यहां प्ररूपित है–

[५४] उस काल उस समय में चम्पानगरी थी । पूर्णभद्र चैत्य था । कोणिक राजा तथा धारिणी राणी थे । श्रमण भगवान महावीर वहां पधारे । पर्षदा नीकली । भगवंतने देशना दी । धर्म श्रवण करके पर्षदा वापिस लौटी । बहोत साधु-साध्वी को भगवंत ने कहा– आर्यो ! मोहनीय स्थान ३० है । जो स्त्री या पुरुष इस स्थानो का बारबार सेवन करते है, वे महामोहनीय कर्म का बन्ध करते है ।

[५५] जो कोई त्रस प्राणी को जल में डूबाकर मार डालते है, वे महामोहनीय कर्म का बन्ध करते है ।

[५६] प्राणी के मुख-नाक आदि श्वास लेने के द्वारो को हाथ से अवरुद्ध करके...

[५७] अग्नि की धूम्र से कीसी गृह में घीरकर मारे तो महामोहनीय कर्म बन्ध करे ।

[५८-६०] जो कोई प्राणी को मस्तक पर शस्त्रप्रहार से भेदन करे...अशुभ परिणाम से गीला चर्म बांधकर मारे...छलकपट से कीसी प्राणी को भाले या डंडे से मार कर हंसता है, तो महामोहनीय कर्मबन्ध होता है ।

[६१-६३] जो गूढ आचारण से अपने मायाचार को छूपाए, असत्य बोले, सूत्रो के यथार्थ को छूपाए...निर्दोष व्यक्ति पर मिथ्या आक्षेप करे या अपने दुष्कर्मो का दुसरे पर आरोपण करे...सभा मध्य में जान बुझकर मिश्र भाषा बोले, कलहशील हो-वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

[६४-६५] जो अनायक मंत्री-राजा को राज्य से बाहर भेजकर राज्यलक्ष्मी का उपभोग करे, राणी का शीलखंडन करे, विरोध कर्ता सामंतो की भोग्यवस्तु का विनाश करे तो वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

[६६-६८] जो बालब्रह्मचारी न होते हुए अपने को बालब्रह्मचारी कहे, स्त्री आदि के भोगो में आसक्त रहे...वह गायो के बीच गद्धे की तरह बेसुरा बकवास करता है । आत्मा का अहित करनेवाला वह मूर्ख मायामृषावाद और स्त्री आसक्ति से महामोहनीय कर्म बांधता है ।

[६९-७१] जो जिसके आश्रय से आजीविका करता है, जिसकी सेवा से समृद्ध हुआ है, वह उसीके धन में आसक्त होकर, उसका ही सर्वस्व हरण कर ले...अभावग्रस्त ऐसा कोई जिस समर्थ व्यक्ति या ग्रामवासी के आश्रय से सर्व साधनसम्पन्न हो जाए, फिर इर्ष्या या संक्लिष्टचित्त होकर आश्रयदाता के लाभ में यदी अन्तरायभूत होता है, तो वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

[७२] जिस तरह सापण अपने बच्चे को खा जाती है, उसी तरह कोई स्त्री अपने पति को, मंत्री, राजा को, सेना सेनापति को या शिष्य शिक्षक को मार डाले तो वे महामोहनीय कर्म बांधते है ।

[७३-७४] जो राष्ट्र नायक को, नेता को, लोकप्रिय श्रेष्ठी को या समुद्र में द्वीप सदृश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनाथ जन के रक्षक को मार डाले तो वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

[७५-७७] जो, पापविरत मुमुक्षु, संयत तपस्वी को धर्म से भ्रष्ट करे...अज्ञानी ऐसा वह जिनेश्वर के अवर्णवाद करे...अनेक जीवो को न्याय मार्ग से भ्रष्ट करे, न्याय मार्ग की द्वेषपूर्वक निन्दा करे तो वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

[७८-७९] जिस आचार्य या उपाध्याय के पास से ज्ञान एवं आचार की शिक्षा ली हो-उसी की अवहेलना करे...अहंकारी ऐसा वह उन आचार्य-उपाध्याय की सम्यक् सेवा न करे, आदर-सत्कार न करे, तब महामोहनीय कर्म बांधता है ।

[८०-८३] जो बहुश्रुत न होते हुए भी अपने को बहुश्रुत, स्वाध्यायी, शास्त्रज्ञ कहे, तपस्वी न होते हुए भी अपने को तपस्वी बताए, वह सर्व जनो में सबसे बडा चोर है ।...''शक्तिमान होते हुए भी ग्लान मुनि की सेवा न करना''-ऐसा कहे, वह महामूर्ख, मायावी और मिथ्यात्वी-कलुषित चित्त होकर अपने आत्मा का अहित करता है । यह सब महामोहनीय कर्म बांधते है ।

[८४] चतुर्विध श्री संघ में भेद उत्पन्न करने के लिए जो कलह के अनेक प्रसंग उपस्थित करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

[८५-८६] जो (वशीकरण आदि) अधार्मिक योग का सेवन स्वसन्मान, प्रसिद्धि एवं प्रिय व्यक्ति को खुश करने के लिए बारबार विधिपूर्वक प्रयोग करे, जीवहिंसादि करके वशीकरण प्रयोग करे...प्राप्त भोगो से अतृप्त व्यक्ति, मानुषिक और दैवी भोगो की बारबार अभिलाषा करे वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

[८७-८८] जो ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण एवं बल-वीर्य युक्त देवताओ का अवर्णवाद करता है...जो अज्ञानी पूजा की अभिलाषा से देव-यक्ष और असुरो को न देखते हुए भी मैं इन सबको देखता हुं ऐसा कहे-वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

[८९] ये तीस स्थान सर्वोत्कृष्ट अशुभ फल देनेवाले बताये है । चित्त को मलिन करते है, इसीलिए भिक्षु इसका आचरण न करे और आत्मगवेषी होकर विचरे ।

[९०-९२] जो भिक्षु यह जानकर पूर्वकृत् कृत्य-अकृत्य का परित्याग करे, उन-उन संयम स्थानो का सेवन करे जिससे वह आचारवान् बने, पंचाचार पालन से सुरक्षित रहे, अनुत्तरधर्म में स्थिर होकर अपने सर्व दोषो का परित्याग कर दे...जो धर्मार्थी, भिक्षु शुद्धात्मा होकर अपने कर्तव्यो का ज्ञाता होता है, उनकी इस लोक में कीर्ति होती है और परलोक में सुगति होती है ।

[९३] दृढ, पराक्रमी, शूरवीर भिक्षु सर्व मोहस्थानो का ज्ञाता होकर उनसे मुक्त होता है, जन्म-मरण का अतिक्रमण करता है । ऐसा मैं कहता हुं ।

दसा-९-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दसा-१०-आयतिस्थान

[९४] उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशील चैत्य था । श्रेणिक राजा था । चेलणा रानी थी । (सब वर्णन औपपातिक सूत्रवत् जानना)

[९५] तब उस राजा श्रेणिक-भिंभिंसारने एक दिन स्नान किया, बलिकर्म किया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विघ्नशमन के लिए ललाट पर तिलक किया, दुःस्वप्न दोष निवारणार्थ प्रायश्चितादि विधान किये, गले में माला पहनी, मणि-रत्नजडित सुवर्ण के आभूषण धारण किये, हार-अर्धहार-त्रिसरोहार पहने, कटिसूत्र पहना, सुशोभीत हुआ । आभुषण और मुद्रिका पहनी...यावत् कल्पवृक्ष के सदृश वह नरेन्द्र श्रेणिक अलंकृत और विभूषित हुआ । ...यावत्...चन्द्र के समान प्रियदर्शी नरपति श्रेणिक बाह्य उपस्थानशाला के सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठा । अपने कौटुम्बिकपुरुषो को बुलाकर कहा–

हे देवानुप्रियो ! राजगृह नगरी के बाहर जो बगीचें, उद्यान, शिल्पशाला, धर्मशाला, देवकुल, सभा, प्याउं, दुकान, मंडी, भोजनशाला, व्यापार केन्द्र, शिल्प केन्द्र, वनविभाग इत्यादि सभी स्थानो में जाकर मेरे सेवको को निवेदन करो-श्रेणिक भिंभिंसारकी यह आज्ञा है कि जब आदिकर तीर्थंकर यावत् सिद्धिगति के इच्छुक श्रमण भगवान् महावीर विचरण करते हुए-संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए यहां पधारे, तब भगवान् महावीर को उनकी साधना के अनुकूल स्थान दिखाना यावत् रहने की अनुज्ञा प्रदान करना ।

तब वह प्रमुख राज्याधिकारी, श्रेणिकराजा के इस कथन से हर्षित हृदय होकर...यावत्...श्रेणिक राजा की आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार करके राजमहल से नीकले, नगर के बाहर बगीचा...यावत्...सभी स्थानो के सेवको को राजा श्रेणिक की आज्ञा से अवगत कराया और फिर वापस आ गए ।

[९६] उस काल उस समय में धर्म के आदिकर तीर्थंकर श्रमम भगवान् महावीर विचरण करते हुए...यावत्...गुणशील चैत्य में पधारे । उस समय राजगृह नगर के तीन रस्ते, चार रस्ते, चौक में होकर...यावत्...पर्षदा नीकली...यावत्...पर्युपासना करने लगी । श्रेणिक राजा के सेवक अधिकारी श्रमण भगवान् महावीर के पास आये, प्रदक्षिणा दी, वन्दन-नमस्कार किया...यावत्...एक दुसरे से कहने लगे कि जिनका नाम व गोत्र सुनकर श्रेणिक राजा हर्षित-संतुष्ट यावत् प्रसन्न हो जाता है, वे श्रमण भगवान महावीर विचरण करते हुए...यावत्...यहां पधारे है । इसी राजगृही नगरी के बाहर गुणशील चैत्य में तप और संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए रहे है ।

हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा को इस वृतान्त का निवेदन करो । परस्पर एकत्रित होकर वे राजगृही नगरी में यावत् श्रेणिक राजा के पास आकर बोले कि–हे स्वामी ! जिनके दर्शन की आप अभिलाषा करते है वे श्रमण भगवान् महावीर गुणशील चैत्य में–यावत् बिराजीत है । यह संवाद आप को प्रिय हो, इसीलिए हम आपको निवेदीत करते है ।

[९७] उस समय राजा श्रेणिक इस संवाद को सुनकर-अवधारीत कर हृदय से हर्षित एवं संतुष्ट हुआ यावत् सिंहासन से उठकर सात-आठ कदम चलके वन्दन-नमस्कार किए । उन सेवको को सत्कार सन्मान करके प्रितीपूर्वक आजीविका योग्य विपुलदान देकर विदा किए । नगररक्षको को बुलाकर कहा कि आप शीघ्र ही राजगृह नगर को बहार से और अंदर से परिमार्जित करो-जल से सिंचित् करो ।

[९८] उसके बाद श्रेणिक राजाने सेनापति को बुलाकर कहा-शीघ्र ही रथ, हाथी, घोडा एवं योद्धायुक्त चतुरंगिणी सेना को तैयार करो यावत् मेरी यह आज्ञापूर्वक कार्य हो जाने का निवेदन करो । उसके बाद राजा श्रेणिक ने यानशाला के अधिकारी को बुलाकर श्रेष्ठ धार्मिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रथ सुसज्ज करने की आज्ञा दी । यानाशाला के अधिकारी भी हर्षित-संतुष्ट होकर यानशाला में गए, रथ को प्रमार्जित किया, शोभायमान किया, उसके बाद वाहनशाला में आकर बैलो को निकाला, उनकी पीठ पसवारकर बहार लाए, उन बैलो के पर झुल वगैरह रखकर शोभायमान किये, अनेक अलंकार पहनाए, रथ में जोतकर रथ को बाहर निकाला, सारथी भी हाथ मैं सुन्दर चाबुक लेकर बैठा । श्रेणिक राजा के पास आकर श्रेष्ठ धार्मिक रथ सुसज्जित हो जाने का निवेदन किया । और बैठने के लिए विज्ञप्ति की ।

[९९] श्रेणिक राजा भिंभिसार यानचालक से पूर्वोक्त बात सुनकर हर्षिततुष्टित हुआ । स्नानगृह में प्रविष्ट हुआ...यावत् कल्पवृक्ष समान अलंकृत एवं विभूषित होकर वह श्रेणिक नरेन्द्र...यावत्...स्नानगृह से नीकला । चेलणादेवी के पास आया और चेलणा देवी को कहा– हे देवानुप्रिये ! श्रमण भगवान महावीर...यावत्...गुणशील चैत्य में बिराजमान है...वहां जाकर उनको वन्दन नमस्कार, सत्कार, सन्मान करने चले । वे कल्याणरूप, मंगलभूत, देवाधिदेव, ज्ञानी की पर्युपासना करेंगे, उनकी पर्युपासना यह और आगामी भवों के हितके लिए, सुखके लिए, कल्याण के लिए, मोक्ष के लिए और भवोभव के सुख के लिए होगी ।

[१००] राजा श्रेणिक से यह कथन सुनकर चेलणादेवी हर्षित हुई, संतुष्ट हुई...यावत्...स्नानगृह में जाकर स्नान करके बलिकर्म किया, कौतुक-मंगल किया, अपने सुकुमार पैरो में झांझर, कमर में मणिजडित कन्दोरा, गले में एकावलीहार, हाथ में कडे और कंकण, अंगुली में मुद्रिका, कंठ से उरोज तक मरकतमणि का त्रिसराहार धारण किया । कान में पहने हुए कुंडल से उनका मुख शोभायमान था । श्रेष्ठ गहने और रत्नालंकारो से वह विभूषित थी । सर्वश्रेष्ठ रेशम का ऐसा सुंदर और सुकोमल वल्कल का रमणीय उत्तरीय धारण किया था । सर्वऋतु में विकसीत ऐसे सुन्दर सुगन्धी फुलो की माला पहने हुए, काला अगरु इत्यादि धूप से सुगंधीत वह लक्ष्मी सी शोभायुक्त वेशभूषावाली चेलणा अनेक कुब्ज यावत् चिलाती दासीओ के वृन्द से घीरी हुई-उपस्थान शाला में राजा श्रेणिक के पास आई ।

[१०१] तब श्रेणिक राजा चेलणादेवी के साथ श्रेष्ठ धार्मिक रथ में आरूढ हुआ...यावत्...भगवान महावीर के पास आये...यावत्...भगवन् को वन्दन नमस्कार करके पर्युपासना करने लगे । उस वक्त भगवान महावीरने ऋषि, यति, मुनि, मनुष्य और देवो की पर्षदा में तथा श्रेणिक राजाभिंभिसार और रानी चेलणा यावत् पर्षदा को धर्मदेशना सुनाई । पर्षदा और राजा श्रेणिक वापिस लौटे ।

[१०२] उस वक्त राजा श्रेणिक एवं चेलणा देवी को देखकर कितनेक निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थी के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि अरे ! यह श्रेणिक राजा महती ऋद्धिवाला यावत् परमसुखी है, वह स्नान, बलिकर्म, तिलक, मांगलिक, प्रायश्चित करके सर्वालंकार से विभूषित होकर चेलणा देवी के साथ मनुष्य सम्बन्धी कामभोग भुगत रहा है । हमने देव लोक के देव तो नहीं देखे, हमारे सामने तो यही साक्षात् देव है । यदी इस सुचरित तप, नियम, ब्रह्मचर्य का अगर कोई कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो हम भी भावि में इस प्रकार के औदारिक मानुषिक भोग का सेवन करे । कितनेक ने सोचा कि अहो ! यह चेलणा देवी महती ऋद्धिवाली यावत् परम सुखी है-यावत्-सर्व अलंकारे से विभुषित होकर श्रेणिक राजा के साथ औदारिक मानुषिक कामभोग का सेवन करती हुई विचरती है । हमने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवलोक की देवी को तो नहीं देखा, किन्तु यह साक्षात् देवी है । यदी हमारे सुचरित तप-नियम और ब्रह्मचर्य का कोई कल्याणकारी फल हो तो हम भी आगामी भव में ऐसे ही भोगो का सेवन करे ।

[१०३] श्रमण भगवान महावीरने बहुत से साधु-साध्वीओ को कहा–श्रेणिक राजा और चेलणा रानी को देखकर क्या-यावत्-इस प्रकार के अध्यवसाय आपको उत्पन्न हुए...यावत्...क्या यह बात सहीं है ?

हे आयुष्यमान श्रमणो ! मैंने धर्म का निरूपण किया है-यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है, श्रेष्ठ है, सिद्धि-मुक्ति, निर्याण और निर्वाण का यही मार्ग है, यही सत्य है, असंदिग्ध है, सर्व दुःखो से मुक्तिदिलाने का मार्ग है । इस सर्वज्ञ प्रणित धर्म के आराधक-सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त करके सब दुःखो का अंत करते है ।

जो कोई निर्ग्रन्थ केवलि प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए उपस्थित होकर शीत-गर्मी आदि सब प्रकार के परिषह सहन करते हुए यदी कामवासना का प्रबल उदय होवे तो उद्दिप्त कामवासना के शमन का प्रयत्न करे । उस समय यदी कोई विशुद्ध जाति, कुलयुक्त किसी उग्रवंशीय या भोगवंशीय राजकुमार को आते देखे, छत्र, चामर, दास, दासी, नोकर आदि के वृन्द से वह राजकुमार परिवेष्टित हो, उसके आगे आगे उत्तम अश्व, दोनो तरफ हाथी, पीछे पीछे सुसज्जित रथ चल रहा हो ।

कोई सेवक छत्रधरे हुए, कोई झारी लिए हुए, कोई विंझणा तो कोई चामर लिए हुए हो, इस प्रकार वह राजकुमार बारबार उनके प्रासाद में आता-जाता हो, देदीप्यमान कांतिवाला वह राजकुमार स्नान यावत् सर्व अलंकारो से विभूषित होकर पूर्ण रात्रि दीपज्योति से झगझगायमान् विशाल कुटागार शाला के सर्वोच्च सिंहासन पर आरूढ हुआ हो यावत् स्त्रीवृन्द से घीरा हुआ, कुशल पुरुषो के नृत्य देखता हुआ, विविध वाजिंत्र सुनता हुआ, मानुषिक कामभोगो का सेवन करके विचरता हो, कोई एक सेवक को बुलाए तो चार, पांच सेवक उपस्थित हो जाते हो, उनकी सेवा के लिए तत्पर हो...

यह सब देखकर यदी कोई निर्ग्रन्थ ऐसा निदान करे कि मेरे तप, नियम, ब्रह्मचर्य का अगर कोई फल हो तो मैं भी उस राजकुमार की तरह मानुषिक भोगो का सेवन करुं । हे आयुष्मान् श्रमणो ! अगर वह निर्ग्रन्थ निदान करके उस निदानशल्य की आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना मरकर देवलोक में महती ऋद्धिवाला देव भी हो जाए, देवलोक से च्यवन करके शुद्ध जातिवंश के उग्र या भोगकुल में पुत्ररूप से जन्म भी ले, सुकुमाल हाथ-पांव यावत् सुन्दररूपवाला भी हो जाए...यावत्...यौवन वय में पूर्व वर्णित सब कामभोगकी प्राप्त करले-यह सब हो शकता है ।

-किन्तु-जब उसको कोई केवलि प्ररूपित धर्म का उपदेश देता है, तब वह उपदेश को प्राप्त तो करता है, लेकिन श्रद्धापूर्वक श्रवण नहीं करता क्योंकि वह धर्मश्रवण के लिए अयोग्य है । वह अनंत इच्छावाला, महारंभी, महापरिग्रही, अधार्मिक यावत् दक्षिण दिशावर्ती नरक में नैरयिक होता है और भविष्य में वह दुर्लभबोधि होता है ।

-हे आयुष्मान् श्रमणो ! यह पूर्वोक्त निदानशल्य का ही विपाक है । इसीलिए वह धर्म श्रवण नहीं करता । (यह हुआ पहला "निदान")

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१०४] हे आयुष्यमती श्रमणीयां ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है-जैसे कि यही निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है...यावत्...सर्व दुःखो का अन्त करता है । जो कोई निर्ग्रन्थी धर्मशिक्षा के लिए उपस्थित होकर, परिषह सहती हुई, यदी उसे कामवासना का उदय हो तो उसके शमन का प्रयत्न करे । यदी उस समय वह साध्वी किसी स्त्री को देखे, जो अपने पति की एकमात्र प्राणप्रिया हो, वस्त्र एवं अलंकार पहने हुई हो । पति के द्वारा वस्त्रो की पेटी या रत्नकरंडक के समान संरक्षणी-संग्रहणीय हो । अपने प्रासाद में आती-जाती हो इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जानना । उसे देखकर अगर वह निर्ग्रन्थी ऐसा निदान करे कि यदी मेरे सुचरित तप, नियम, ब्रह्मचर्य का कोई फल हो तो मैं पूर्व वर्णित स्त्री के समान मानुषिक कामभोगो का सेवन करके मेरा जीवन व्यतीत करु ।

यदी वह निर्ग्रन्थी अपने इस निदान की आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना काल करे तो पूर्व कथनानुसार देवलोक में जाकर...यावत्...पूर्व वर्णित स्त्री के समान कामभोगो का सेवन करे, ऐसा हो भी शकता है । उनको केवलि प्ररूपित धर्मश्रवण प्राप्त भी हो शकता है । किन्तु वह श्रद्धापूर्वक सुन नहीं शकती क्योंकि वह धर्मश्रवण के लिए अयोग्य है । वह उत्कृष्ट इच्छावाली, महा आरंभी यावत्...दक्षिण दिशा के नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न होती है यावत् भविष्य में बोधि दुर्लभ होती है ।

यहीं है उस निदान शल्य का कर्मविपाक, जिससे वह केवलि प्ररूपित धर्म श्रवण के लिए अयोग्य हो जाती है । (यह हुआ दुसरा ''निदान'')

[१०५] हे आयुष्मान श्रमणो ! मैंने धर्म का निरूपण किया है । यहीं निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है...यावत्...सब दुःखो का अन्त करता है । जो कोई निर्ग्रन्थ केवलि प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए तत्पर हुआ हो, परीषहो को सहता हो, यदी उसे कामवासना का उदय हो जाए तो उसके शमन का प्रयत्न करे इत्यादि पूर्ववत् ।

यदी वह किसी स्त्री को देखता है, जो अपने पतिकी एकमात्र प्राणप्रिया है...यावत् सूत्र-१०४ के समान सब कथन जानना । यदी निर्ग्रन्थ उस स्त्री को देखकर निदान करे कि ''पुरुष का जीवन दुःखमय है'' जो ये विशुद्ध जाति-कुल युक्त उग्रवंशी या भोगवंशी पुरुष है, वह किसी भी युद्ध में जाते है, शस्त्र प्रहार से व्यथित होते है । यों पुरुष का जीवन दुःखमय है और स्त्री का जीवन सुखमय है । अगर मेरे तप-नियम-ब्रह्मचर्य का कोई फल हो तो में भविष्य में स्त्रीरूप में उत्पन्न होकर भोगो का सेवन करनेवाला बनुं ।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! वह निर्ग्रन्थ निदान करके उसकी आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल करे तो वह महती ऋद्धिवाला देव हो शकता है, बाद में पूर्वोक्त कथन के समान स्त्रीरूप में उत्पन्न भी होता है । वो स्त्री को केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण भी प्राप्त होता है । लेकिन श्रद्धापूर्वक वह धर्मश्रवण करती नहीं है क्योंकि वह धर्मश्रवण के लिए अयोग्य है । वह उत्कट इच्छावाली यावत् दक्षिणदिशावर्ती नरक में उत्पन्न होती है । भविष्य में बोधि दुर्लभ होती है।

हे आयुष्ममान श्रमणो ! यह उस पापरूप निदान का फल है, जिससे वह धर्मश्रवण के लिए अयोग्य हो जाता है । (यह तीसरा ''निदान'')

[१०६] हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है । यही निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है...यावत्...सर्व दुःखो का अन्त करता है । यदी कोई निर्ग्रन्थी केवली प्रज्ञप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म के लिए तत्पर होती है, परिषह सहन करती है, उसे कदाचित् कामवासना का प्रबल उदय हो जाए तो वह तप संयम की उग्र साधना से उसका शमन करे । यदी उस समय (पूर्ववर्णित) उग्रवंशी या भोगवंशी पुरुष को देखे यावत् वह निदान करे कि स्त्री का जीवन दुःखमय है, क्योंकि गांव यावत् सन्निवेश में अकेली स्त्री जा नहीं शकती । जिस तरह आम, बिजोरु, अम्बाडग इत्यादि स्वादिष्ट फल की पेशी हो, गन्ने का टुकडा या शाल्मली फली हो, तो अनेक मनुष्य के लिए वह आस्वादनीय यावत् अभिलषीत होता है, उसी तरह स्त्री का शरीर भी अनेक मनुष्यो के लिए आस्वादनीय...यावत्...अभिलषीत होता है । इसीलिए स्त्री का जीवन दुःखमय और पुरुष का जीवन सुखमय होता है ।

हे आयुष्मान श्रमणो ! यदी कोई निर्ग्रन्थी पुरुष होने के लिए निदान करे, उसकी आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना काल करे तो पूर्ववर्णन अनुसार देव बनकर...यावत्...पुरुष बन भी शकती है । उसे धर्मश्रवण प्राप्त भी होता है, लेकिन सुनने की अभिलाषा नहीं होती...यावत्...वह दक्षिण दिशावर्ती नरक में उत्पन्न होता है ।

यहीं है उस निदान का फल, जिससे धर्मश्रवण नहीं हो शकता (यह हुआ चौथा ''निदान'')

[१०७] हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म बताया है । यहीं निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है...यावत्...(प्रथम ''निदान'' समान जान लेना ।) कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी धर्म शिक्षा के लिए तत्पर होकर विचरण करते हो, क्षुधादि परीषह सहते हो, फिर भी उसे कामवासना का प्रबल उदय हो जाए, तब उसके शमन के लिए तप-संयम की उग्र साधना से प्रयत्न करे । उस समय मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो से विरती हो जाए, जैसे कि मनुष्य सम्बन्धी कामभोग अध्रुव है, अनित्य है, अशाश्वत है, सडन-गलन-विध्वंसक है । मल, मूत्र, श्लेष्म, मेल, वात, कफ, पित्त, शुक्र और रुधीर से उत्पन्न हुए है । दुर्गन्धयुक्त श्वासोच्छ्वास और मल-मूत्र से परिपूर्ण है । वात, पित्त, कफ के द्वार है । पहले या बाद में अवश्य त्याज्य है । देवलोक में देव अपनी एवं अन्य देवीओ को स्वाधीन करके या देवीरूप विकुर्वित करके कामभोग करते है । यदि मेरे सुचरित तप-नियम-ब्रह्मचर्य का कोई फल हो तो इत्यादि पहले निदान समान जानना ।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी इस निदानशल्य की आलोचना किए बिना काल करे...यावत् देवलोक में भी उत्पन्न होवे यावत् वहां से च्यव कर पुरुष भी होवे, उसे केवलिप्रज्ञप्त धर्म सुनने को भी मिले, किन्तु उसे श्रद्धा से प्रतीति नहीं होती...यावत्...वह दक्षिणदिशावर्ती नरक में नारकी होता है । भविष्य में दुर्लभबोधि होता है ।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! यही है उस निदान शल्य का फल-कि उनको धर्म के प्रति श्रद्धा-प्रीति या रुचि नहीं होती (यह है पांचवां 'निदान'')

[१०८] हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म का निरुपण किया है । (शेष सर्व कथन प्रथम ''निदान'' के समान जानना ।) देवलोक में जहां अन्य देव-देवी के साथ कामभोग सेवन नहीं करते, किन्तु अपनी देवी के साथ या विकुर्वित देव या देवी के साथ कामभोग सेवन करते है । यदि मेरे सुचरित तप आदि का फल हो तो...(इत्यादि प्रथम निदान वत्) ऐसा व्यक्ति केवलि प्ररूपित धर्म में श्रद्धा-प्रीति-रुचि नहीं करते, क्योंकि वह अन्य दर्शन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुचिवान् होता है । वह तापस, तांत्रिक, अल्पसंयत या हिंसा से अविरत होते है । मिश्रभाषा बोलते है-जैसे कि मुझे मत मारो दुसरे को मारो इत्यादि । वह स्त्री सम्बन्धी कामभोगो में मूर्छित, ग्रथित, गृद्ध, आसक्त यावत् मरकर किसी असुर लोक में किल्बिषिक देव होता है । वहां से च्यव कर भेड-बकरो की तरह गुंगा या बहेरा होता है ।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! यह इसी निदान का फल है कि वे केवलि प्ररूपित धर्म में श्रद्धा-प्रीति नहीं रखते । (यह हुआ छट्ठा "निदान")

[१०९] हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म का निरुपण किया है...यावत्...जो स्वयं विकुर्वित देवलोक में कामभोग का सेवन करते है । (यहां तक सब कथन पूर्व सूत्र-१०८ के अनुसार जानना) हे आयुष्मान् श्रमणो ! कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी ऐसा निदान करके बिना आलोचना-प्रतिक्रमण किए यदि काल करे...यावत्...देवलोक में उत्पन्न होकर अन्य देव-देवी के साथ काम भोग सेवन न करके स्वयं विकुर्वित देव-देवी के साथ ही भोग करे...वहाँ से च्यव कर किसी अच्छे कुल में उत्पन्न भी हो जाए, तब उसे केवलि प्ररूपित धर्म में श्रद्धा-प्रीति-रूचि तो होती है लेकिन वह शीलव्रत-गुणव्रत-प्रत्याख्यान-पौषधोपवास नहीं करते । वह दर्शनश्रावक हो शकता है । जीव-अजीव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञाता भी होता है...यावत्...अस्थिमज्जावत् धर्मानुरागी भी होता है ।

हे आयुष्मान् श्रमण ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही जीवन में इष्ट है, यही परमार्थ है, शेष सर्व निरर्थक है, इस तरह अनेक वर्षो तक आगार धर्म की आराधना भी करे, मरकर किसी देवलोक में उत्पन्न भी होवें । लेकिन शीलव्रत आदि धारण न करे यह है इस निदान का फल। (यह हुआ सातवां "निदान")

[११०] हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है...(शेष कथन प्रथम निदान समान जानना ।) मानुषिक विषयभोग अध्रुव...यावत्...त्याज्य है । दिव्यकाम भोग भी अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत एवं अस्थिर है । जन्म मरण बढानेवाले है । पहले या पीछे अवश्य त्याज्य है । यदि मेरे तप-नियम-ब्रह्मचर्य का कोई फल हो तो मैं विशुद्ध जाति-कुल में उत्पन्न होकर उग्र या भोगवंशी कुलिन पुरुष श्रमणोपासक बनुं, जीवाजीव स्वरूप को जानुं....यावत्...प्रासुक अशन, पान, खादिम-स्वादिम प्रतिलाभित करके विचरण करु ।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! यदि कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी इस प्रकार से निदान करे, आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल करे, तो यावत् देवलोक में देव होकर-ऋद्धिमंत श्रावक भी हो जाए, केवलिप्रज्ञप्त धर्म का भी श्रवण करे, शीलव्रत-पौषध आदि भी ग्रहण करे, लेकिन वह मुंडित होकर प्रवजित नहीं हो शकता । श्रमणोपासक होकर...यावत्...प्रासुक एषणीय अशनादि प्रतिलाभित करके बरसों तक रहता है । अनशन भी कर शकता है, आलोचना प्रतिक्रमण करके समाधि भी प्राप्त करे...यावत्...देवलोक में भी जाए ।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! उस निदान का यह पापरूप विपाक है कि वह अनगार प्रवज्या ग्रहण नहीं कर शकता । (यह है आठवां "निदान")

[१११] हे आयुष्मान् श्रमणों ! मैंने धर्म का निरूपण किया है...यावत्... (पहले निदान के समान सब कथन करना) मानुषिक...दिव्य कामभोग... भव परंपरा बढानेवाले है । यदि मेरे सुचरित तप-नियम-ब्रह्मचर्य का कोई फल विशेष हो तो मैं भी भविष्य में अन्त,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रान्त, तुच्छ, दरिद्र, कृपण या भिक्षुकुल में पुरुष बनुं, जिस से प्रवजित होने के लिए गृहस्थावास छोडना सरल हो जाए ।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! यदि कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी ऐसा निदान करे, उसकी आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल करे...(शेष पूर्ववत्...यावत्) वह अनगार प्रवज्या तो ले शकता है, लेकिन उसी भव में सिद्ध होकर सर्व दुःखो का अन्त नहीं कर शकता । वह अनगार इर्या समिति...यावत्...ब्रह्मचर्य का पालन भी करे, अनेक बरसो तक श्रमण पर्याय भी पाले, अनशन भी करे...यावत् देवलोक में देव भी होवें ।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! उस निदानशल्य का यह फल है कि उस भव मैं वह सिद्ध-बुद्ध होकर सब दुःखो का अन्त नहीं कर शकता । (यह है नववां "निदान")

[११२] हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है । यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है...यावत्...तप संयम की साधना करते हुए, वह निर्ग्रन्थ सर्व काम, राग, संग, स्नेह से विरक्त हो जाए, सर्व चारित्र परिवृद्ध हों, तब अनुत्तरज्ञान, अनुत्तर दर्शन यावत् परिनिर्वाण मार्ग में आत्मा को भावित करके अनंत, अनुत्तर आवरण रहित, सम्पूर्ण प्रतिपूर्ण केवलज्ञान...केवल दर्शन उत्पन्न होता है । उस वक्त वो अरहंत, भगवंत, जिन, केवलि, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होता है, देव मानव की पर्षदा में धर्म देशना के दाता...यावत्...कई साल केवलि पर्याय पालन करके, आयु की अंतिम पल जानकर भक्त प्रत्याख्यान करता है । कई दिन तक आहार त्याग करके अनशन करता है । अन्तिम श्वासोच्छ्वास के समय सिद्ध होकर यावत् सर्व दुःख का अन्त करता है ।

हे आयुष्मान् श्रमण ! वो निदान रहित कल्याण कारक साधनामय जीवन का यह फल है । कि वो उसी भव में सिद्ध होकर...यावत्...सर्व दुःख का अन्त करते है ।

[११३] उस वक्त कई निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी ने श्रमण भगवान् महावीर के पास पूर्वोक्त निदान का वर्णन सुनकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार किया । पूर्वकृत् निदान शल्य की आलोचना प्रतिक्रमण करके...यावत्...उचित प्रायश्चित् स्वरूप तप अपनाया ।

[११४] उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर ने राजगृह नगर के बाहर गुणशील चैत्य में एकत्रित देव-मानव आदि पर्षदा के बीच कई श्रमण-श्रमणी श्रावक-श्राविका को इस तरह आख्यान, प्रज्ञापन और प्ररूपण किया ।

हे आर्य ! "आयति स्थान" नाम के अध्ययन का अर्थ-हेतु- व्याकरण युक्त और सूत्रार्थ और स्पष्टीकरण युक्त सूत्रार्थ का भगवंतने बार-बार उपदेश किया । उस प्रकार मैं (तुम्हे) कहता हूँ ।

३७	दशाश्रुतस्कन्ध-छेदसूत्र-४ हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३८ जीतकल्प

छेदसूत्र-५- हिन्दी अनुवाद

[१] प्रवचन-(शास्त्र) को प्रणाम करके, मैं संक्षेप में प्रायश्चित् दान कहूँगा । (आगम, सूत्र, आज्ञा, धारणा, जीत वो पाँच व्यवहार बताए है उसमें) जीत यानि परम्परा से कोई आचरणा चलती हो बड़े पुरुष ने - गीतार्थने द्रव्य क्षेत्र काल-भाव देखकर निर्णीत किया हो ऐसा जो व्यवहार वो जीत व्यवहार । उसमें प्रवेश किए गए (उपयोग लक्षणवाले) जीव की परम विशुद्धि होती है । जिस तरह मलिन वस्त्र को क्षार आदि से विशुद्धि हो वैसे कर्ममलयुक्त जीव को जीत व्यवहार मुताबिक प्रायश्चित् दान से विशुद्धि होती है ।

[२] तप का कारण प्रायश्चित् है और फिर तप संवर और निर्जरा का भी हेतु है । और यह संवर-निर्जरा मोक्ष का कारण है । यानि प्रायश्चित् द्वारा विशुद्धि के लिए बारह प्रकार का तप कहा है । यह तप द्वारा आनेवाले कर्म रूकते है और संचित कर्म का क्षय होता है। जिसके परीणाम से मोक्ष मार्ग प्राप्त होता है ।

[३] सामायिक से बिन्दुसार पर्यन्त के ज्ञान की विशुद्धि द्वारा चारित्र विशुद्धि होती है। चारित्र विशुद्धि से निर्वाण प्राप्ति होती है । लेकिन चारित्र की विशुद्धि से निर्वाण के अर्थी को प्रायश्चित्त अवश्य जानना चाहिए, क्योंकि प्रायश्चित् से ही चारित्र विशुद्धि होती है ।

[४] वो प्रायश्चित् दश प्रकार से है । आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, अनवस्थाप्य और पारंचित ।

[५] अवश्यकरणीय ऐसी संयम क्रिया समान योग (कि जिसका अब बाकी गाथा में निर्देश किया है ।) उसमें प्रवर्ते हुए अदुष्ट भाववाले छद्मस्थ की विशुद्धि या कर्मबंध निवृत्ति का अप्रमत्तभाव यानि आलोचना ।

(आगे की ६ से ८ गाथा द्वारा आलोचना प्रायश्चित् कहते है ।)

[६-७] आहार-आदि के ग्रहण के लिए जो बाहर जाना या उच्चार भूमि (मल-मूत्र त्याग भूमि) या विहार भूमि (स्वाध्याय आदि भूमि) से बाहर जाना या चैत्य या गुरुवंदन के लिए जाना आदि में यथाविधि पालन करना, यह सभी कार्य या अन्य कार्य के लिए सो कदम से ज्यादा बाहर जाना पड़े तो यदि आलोचना न करे तो वो अशुद्ध या अतिचार युक्त माना जाए और आलोचना करने से शुद्ध या निरतिचार बने ।

[८] स्वगण या परगण यानि समान समाचारीवाले या असमान समाचारीवाले के साथ कारण से बाहर निर्गमन हो तो आलोचना से शुद्धि होती है । यदि समान समाचारीवाले या अन्य के साथ उपसंपदा से विहार करे तो निरतिचार हो तो भी (गीतार्थ आचार्य मिले तब) आलोचना से ही शुद्धि होती है ।

(आगे की ९ से १२ गाथा में प्रतिक्रमण प्रायश्चित् कहते है ।)

[९-१२] तीन तरह की गुप्ति या पाँच तरह की समिति के लिए प्रमाद करना, गुरु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की किसी तरह आशातना करना, विनय भंग करना, इच्छाकार आदि दश समाचारी का पालन करना, अल्प भी मृषावाद, चोरी या ममत्व होना, अविधि से यानि मुहपत्ती रखे विना छींकना, वायु का उर्ध्वगमन करना, मामूली छेदन-भेदन-पीलण आदि असंकिलष्ट कर्म का सेवन करना, हास्य-कुचेष्टा करना, विकथा करना, क्रोध आदि चार कषाय का सेवन करना, शब्द आदि पाँच विषय का सेवन करना, दर्शन, ज्ञान-चारित्र या तप आदि में स्खलना होना, जयणायुक्त होकर हत्या न करते होने के बावजूद भी सहसाकार या अनुपयोगदशा से अतिचार सेवन करे तो मिथ्या दुष्कृत रूप प्रतिक्रमण से शुद्ध बने..यदि उपयोग या सावधानी से भी अल्प मात्र स्नेह सम्बन्ध, भय, शोक शरीर आदि का धोना आदि और कुचेष्टा-हास्य-विकथादि करे तो प्रतिक्रमण प्रायश्चित् जानना । यानि इन सबमें प्रतिक्रमण योग्य प्रायश्चित् आता है ।

(अब गाथा १३ से १५ में तदुभय प्रायश्चित बताते है ।)

[१३-१५] संभ्रम, भय, दुःख, आपत्ति की कारण से सहसात् असावधानी की कारण से या पराधीनता से व्रत सम्बन्धी यदि कोई अतिचार का सेवन करे तो तदुभय यानि आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों प्रायश्चित् आता है, दुष्ट चिन्तवन, दुष्ट भाषण, दुष्ट चेष्टित यानि मन, वचन या काया से संयम विरोधी कार्य का बार-बार प्रवर्तन । वो उपयोग परिणत साधु भी इन सबको दैवसिक आदि अतिचार के रूप से न जाने, तो और सर्व भी उत्सर्ग और अपवाद से दर्शन, ज्ञान, चारित्र का जो अतिचार उसका कारण से या सहसात् सेवन हुआ हो तो तदुभय प्रायश्चित्त आता है ।

(गाथा १६-१७ में "विवेक" योग्य प्रायश्चित बताते है ।)

[१६-१७] अशन आदि रूप पिंड़, उपधि, शय्या आदि को गीतार्थ सूत्रानुसार उपयोग से ग्रहण करे वो यह शुद्ध नहीं है ऐसा माने या निरतिचार-शुद्ध विधिवत् परठवे, काल से असठपन से पहली पोरसी से लाकर चौथी तक रखे, क्षेत्र से आधा योजन दूर से लाकर रखे, सूर्य नीकलने से पहले या अस्त होने के बाद ग्रहण करे । यानि ग्रहण करने के बाद सूर्य नहीं नीकला या अस्त हुआ ऐसा माने, ग्लान-बाल आदि की कारण से अशन आदि ग्रहण किया हो, विधिवत् परिष्ठापन किया हो तो इन सबमें 'विवेक-योग्य' प्रायश्चित्त आता है ।

(अब काऊस्सग्ग प्रायश्चित बताते है ।)

[१८] गमन, आगमन, विहार, सूत्र के उद्देश आदि, सावद्य या निरवद्य स्वप्न आदि, नाँव, नदी से जलमार्ग पार करना उन सबमें कार्योत्सर्ग प्रायश्चित् ।

[१९] भोजन, पान, शयन, आसन, चैत्य, श्रमण, वसति, मल-मूत्र, गमन में २५ श्वासोच्छ्वास (वर्तमान में जिसे लोगस्स यानि इरियावही कहते है वो) काऊस्सग्ग प्रायश्चित् आता है।

[२०] सौ हाथ प्रमाण यानि सो कदम भूमि वसति के बाहर गमनागमन में पच्चीस श्वासोच्छ्वास, प्राणातिपात, हिंसा का सपना आए तो सो श्वासोच्छ्वास और मैथुन के सपने में १०८ श्वासोच्छ्वास काऊस्सग्ग प्रायश्चित्त आता है ।

[२१] दिन सम्बन्धी प्रतिक्रमण में पहले ५० के बाद २५-२५ श्वासोच्छ्वास प्रमाण, रात्रि प्रतिक्रमण में २५-२५ श्वासोच्छ्वास प्रमाण, पविख प्रतिक्रमण में ३००, श्वासोच्छ्वास चौमासी प्रतिक्रमण में ५००, श्वासोच्छ्वास संवत्सरी में १००८ श्वासोच्छ्वास प्रमाण काऊस्सग्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित् आता है । अर्थात् वर्तमान प्रणाली अनुसार दैवसिक में लोगस्स दो-एक-एक, रात्रि में लोगस्स एक-एक, पकिख में १२ लोगस्स, चौमासी में २० लोगस्स और संवत्सरी में ४० लोगस्स पर एक नवकार प्रमाण काऊस्सग्ग प्रायश्चित् जानना ।

[२२] सूत्र के उद्देश-समुद्देश-अनुज्ञा में २७ श्वासोच्छ्वास प्रमाण, सूत्र पठ्ठवण के लिए (सज्झाय परठवते हुए) आँठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण (१ नवकार प्रमाण) काऊस्सग्ग प्रायश्चित् जानना चाहिए ।

(अब तप प्रायश्चित् के सम्बन्धित गाथा बताते है ।)

[२३-२५] ज्ञानाचार सम्बन्धी अतिचार ओघ से और विभाग से दो तरह से है । विभाग से उद्देशक, अध्ययन, श्रुतस्कंध, अंग यह परिपाटी क्रम है । उस सम्बन्ध से काल का अतिक्रमण आदि आठ अतिचार है–काल, विनय, बहुमान, उपधान, अनिण्हवण, व्यंजन, अर्थ, तदुभय आठ आचार में जो अतिक्रमण वह ज्ञानाचार सम्बन्धी अतिचार, उसमें अनागाढ़ कारण से उद्देशक अतिचार के लिए एक नीवि, अध्ययन अतिचार में पुरिमड्ढ, श्रुतस्कन्ध अतिचार के लिए एकासणा, अंग सम्बन्धी अतिचार के लिए आयंबिक तप प्रायश्चित् आता है । आगाढ़ कारण हो तो यही दोष के लिए पुरिमड्ढ से अट्ठम पर्यन्त तप प्रायश्चित् है । वो विभाग प्रायश्चित् और ओध से किसी भी सूत्र के लिए उपवास तप प्रायश्चित् और अर्थ से अप्राप्त या अनुचित को वाचनादि देने में भी उपवास तप ।

[२६] काल-अनुयोग का प्रतिक्रमण न करे, सूत्र, अर्थ या भोजन भूमि का प्रमार्जन न करे, विगई त्याग न करे, सूत्र-अर्थ निषद्या न करे तो एक उपवास तप प्रायश्चित् ।

[२७] जोग दो प्रकार से है– आगाढ़ और अणागाढ़ दोनों के दो भेद है । सर्वसे और देशसे । सर्वसे यानि आयंबिल और देशसे यानि काउस्सग करके विगई ग्रहण करना वो । यदि आगाढ़ जोग में आयंबिल तूट जाए तो दो उपवास और देश भंग में एक उपवास, अणागाढ़ में सर्वभंगे दो उपवास और देशभंगे आयंबिल तप ।

[२८] शंका, कांक्षा, वितिगिच्छा, मूढ़दृष्टि, अनुपबृंहणा, अस्थिरिकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना यह आठ दर्शनातिचार का सेवन देशसे यानि कि कुछ अंश में करनेवाले को एक उपवास तप, मिथ्यात्व की वृद्धि के लिए एक उपवास ऐसे ओघ प्रायश्चित् मानना और शंका आदि आठ विभाग देशसे सेवन करनेवाले साधु को पुरिमड्ढ, रत्नाधिको एकासणा, उपाध्याय को आयंबिल, आचार्य को उपवास तप प्रायश्चित् जानना ।

[२९-३०] ...उस प्रकार प्रत्येक साधु को उपबृंहणा-संयम की वृद्धि पुष्टि आदि न करनेवाले को पुरिमड्ढ आदि उपवास पर्यन्त प्रायश्चित् तप आता है और फिर परिवार की सहाय निमित्त से पासत्था, अवसन्न-कुशील आदि का ममत्त्व करनेवाले को, श्रावक आदि की परिपालना करनेवाले को या वात्सल्य रखनेवाले को निवि-पुरिमड्ढ आदि प्रायश्चित् तप आता है । यहाँ यह साधर्मिक को संयमी करना या कुल संघ-गण आदि की फिक्र या तृप्ति करे ऐसी बुद्धि से सर्व तरह से निर्दोष पन से ममत्व आदि आलम्बन होना चाहिए ।

[३१] एकेन्द्रिय जीव को संघट्टन करते नीवितप, इन जीव को परिताप देना या गाढ़तर संचालन से उपद्रव करना वो अणागाढ़ और आगाढ़ दो भेद से बताया अणागाढ़ की कारण से ऐसा करने से पुरिमड्ढ तप और आगाढ़ कारण से एकासणा तप प्रायश्चित् तप आता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३२] अनन्तकाय वनस्पति, दो, तीन, चार इन्द्रियवाले जीव को संघट्टन, परिताप या उपद्रव करने से पुरिमड्ढ से उपवास पर्यन्त और पंचेन्द्रिय का संघट्टन करते हुए एकासणा, अणागाढ़ परिताप से आयंबिल, आगाढ़ परिताप से उपवास तप प्रायश्चित् आता है उपद्रव करने से एक कल्याणक तप प्रायश्चित् आता है ।

[३३] मृषावाद, अदत्त, परिग्रह यह तीनों द्रव्य-क्षेत्र-काल या भाव से सेवन करनेवाले को जघन्य से एकासणा, मध्यम से आयंबिल, उत्कृष्ट से एक उपवास प्रायश्चित् ।

[३४] वस्त्र, पात्र, पात्र बँध आदि खरड़ जाए, तेल, घी आदि के लेपवाले रहे तो एक उपवास, सूँठ, हरड़े औषध आदि की संनिधि से एक उपवास, गुड़, घी, तेल आदि की संनिधि से छट्ठ, बाकी की संनिधि से तीन उपवास तप प्रायश्चित् ।

[३५-४३] यह नौ गाथा का "जीत कल्प चूर्णी" की सहायता से किया गया अनुवाद यहां बताया है ।

औद्देसिक के दो भेद ओघ-सामान्य से और विभाग से । सामान्य से परिमित भिक्षादान समान दोष में पुरिमड्ढ और विभाग से तीन भेद उद्देसो-कृत और कर्म उद्देसो के लिए पुरिमड्ढ, कृतदोष के लिए एकासणा और कर्मदोष के लिए आयंबिल और उपवास तप प्रायश्चित् । पूति दोष के दो भेद सूक्ष्म और बादर । धूम अंगार आदि सूक्ष्म दोष, उपकरण और भोजन-पान वो बादर दोष जिसमें उपकरणपूति दोष के लिए पुरिमड्ढ और भोजन-पान पूति दोष के लिए एकासणा-तप प्रायश्चित् ।

मिश्रजात दोष दो तरह से—जावंतिय और पाखंड़-जावंतियमिश्र जात के लिए आयंबिल और पाखंड़मिश्र के लिए उपवास, स्थापना दोष दो तरह से-अल्पकालीन के लिए नीवि और दीर्घकालीन के लिए पुरिमड्ढ, प्राभृतिक दोष दो तरह से-सूक्ष्म के लिए नीवि, बादर के लिए उपवास, प्रकृष्टकरण दोष दो तरह से अप्रकट हो तो पुरिमड्ढ और और प्रकट व्यक्त रूप से आयंबिल, क्रीत दोष के लिए आयंबिल, प्रामित्य दोष और परिवर्तीर्त दोष दो तरीके से-लौकिक हो तो आयंबिल, लोकोत्तर हो तो पुरिमड्ढ, आहृत दोष दो तरह से-अपने गाँव से हो तो पुरिमड्ढ, दुसरे गाँव से हो तो आयंबिल । उद्भिन्न दोष दो तरह से दादर हो तो पुरिमड्ढ और बन्द दरवाजा-अलमारी खोले तो आयंबिल ।

मालोपहृत दोष दो तरह से-जघन्य से पुरिमड्ढ और उत्कृष्ट से आयंबिल, आछेद्य दोष हो तो आयंबिल, अनिसृष्ट दोष के लिए आयंबिल, अध्ययपूरक दोष तीन तरह से-जावंतिय, पाखंड़मिश्र, साधुमिश्र । जावंतिय दोष में पुरिमड्ढ और बाकी दोनों के लिए एकासणा ।

धात्रि दूति-निमित्त आजीव, वणीमग वो पांच दोष के लिए आयंबिल तिगीच्छा दो तरीके से सूक्ष्म हो तो पुरिमड्ढ, बादर हो तो आयंबिल, क्रोध-मान दोष में आयंबिल माया-दोष के लिए एकासणा । लोभ दोष के लिए उपवास, संस्तव दोष दो तरह से वचन संस्तव के लिए पुरिमड्ढ, सम्बन्धी संस्तव के लिए आयंबिल, विद्या, मंत्र, चूर्ण, जोग सर्व में आयंबिल तप प्रायश्चित् ।

शंकित दोष में जिस दोष की शंका हो वो प्रायश्चित् आता है । सचित्तसंसर्ग दोष तीन तरह से—(१) पृथ्वीकाय संसर्ग दोष में नीवि, मीश्रकर्दम में पुरिमड्ढ निर्मिश्र कर्दम में आयंबिल, (२) जल मिश्रित में निवि, (३) वनस्पति मिश्रित में प्रत्येक मिश्रित हो तो पुरिमड्ढ, अनन्तकाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्र हो तो एकासणा, पिहित दोष में अनन्तर पिहित हो तो आयंबिल, परंपर पिहित हो तो एकासणु, साहरित दोप हो तो निवि से उपवास पर्यन्त । दायार-याचक दोष आयंबिल-उपवास तप, संसक्त दोष में आयंबिल, ओयतंतिय आदि में आयंबिल, उन्मिश्र निवि से उपवास पर्यन्त तप, अपरिणत दोष दो तरह से पृथ्वी आदि पाँच स्थावर में आयंबिल लेकिन यदि अनन्तकाय वनस्पति हो तो उपवास, छर्दित दोष लगे तो आयंबिल तप प्रायश्चित् जानना ।

संयोजना दोप लगे तो आयंबिल, इंगाल दोष में उपवास, धूम्र, अकारण भोजन-प्रमाण अतिरिक्त दोष में आयंबिल ।

[४४] सहसात् और अनाभोग से जो-जो कारण से प्रतिक्रमण-प्रायश्चित् बताया है उन कारण का आभोग यानि जानते हुए सेवन करे तो भी बार-बार या अति मात्रा में करे तो सबमें नीवि तप प्रायश्चित् जानना ।

[४५] दौड़ना, पार करना, शीघ्र गति में जाना, क्रिड़ा करना, इन्द्रजाल बनाकर तैरना, ऊँची आवाज में बोलना, गीत गाना, जोरो से छींकना, मोर-तोते की तरह आवाज करना, सर्व में उपवास-तप प्रायश्चित् ।

[४६-४७] तीन तरह की उपधि बताई है जघन्य-मध्यम और उत्कृष्ट वो गिर जाए और फिर से मिले, पडिलेहण करना बाकी रहे तो जघन्य मुहपत्ति, पात्र केसरिका, गुच्छा, पात्र स्थापनक उन चार के लिए निवि तप, मध्यम पड़ल, पात्रबँध, चोलपट्टक, मात्रक, रजोहरण रजस्त्राण उन छ के लिए पुरिमड्ढ तप और उत्कृष्ट-पात्र और तीन वस्त्र उन चार के लिए एकासणा तप प्रायश्चित् विसर जाए तो आयंबिल तप, कोई ले जाए या खो जाए या धोए तो जघन्य उपधि-एकासणु मध्यम के लिए आयंबिल, उत्कृष्ट उपधिके लिए उपवास । आचार्यादिक को निवेदन किए बिना ले आचार्यादि के झरिये बिना दिए ले भुगते-दुसरों को दे तो भी जघन्य उपधि के लिए एकासणा यावत् उत्कृष्ट के लिए उपवास तप प्रायश्चित् ।

[४८] मुहपति फाड़ दे तो नीवि, रजोहरण फाड़ दे तो उपवास, नाश या विनाश करे तो मुहपत्ति के लिए उपवास और रजोहरण के लिए छट्ठ तप प्रायश्चित् आता है ।

[४९] भोजन में काल और क्षेत्र का अतिक्रमण करे तो निवि, वो अतिक्रमित भोजन भुगते तो उपवास, अविधि से परठवे तो पुरिमड्ढ तप प्रायश्चित् ।

[५०-५१] भोजन-पानी न ढँके, मल-मूत्र-काल भूमि का पड़िलेहण न करे तो निवि नवकारसी-पोरिसि आदि पच्चक्खाण न करे या लेकर तोड दे तो पुरिमड्ढ यह आम तोर पर कहा, तप-प्रतिमा अभिग्रह न ले, लेकर तोड़ दे तो भी पुरिमड्ढ पक्खि हो तो आयंबिल या उपवास तप, शक्ति मुताबिक तप न करे तो क्षुल्लक को नीवि, स्थविर को पुरिमड्ढ, भिक्षु को एकासणा, उपाध्याय को आयंबिल, आचार्य को उपवास । चोमासी हो तो क्षुल्लक से आचार्य को क्रमशः पुरिमड्ढ से छट्ठ, संवत्सरी को क्रमशः एकासणा से अट्ठम तप प्रायश्चित् मानना चाहिए ।

[५२] निद्रा या प्रमाद से कायोत्सर्ग पालन न करे, गुरु के पहले पारे काऊस्सग्ग भंग करे, जल्दबाझी में करे, उसी तरह ही वंदन करे, तो निवि-पुरिमड्ढ एकासणा तप और सारे दोष के लिए आयंबिल तप प्रायश्चित् ।

[५३] एक काऊस्सग्ग आवश्यक को न करे तो पुरिमड्ढ-एकासणा-आयंबिल, सभी आवश्यक न करे तो उपवास, पूर्वे अप्रेक्षित भूमि में रात को स्थंड़िल वोसिरावे, मल-त्याग करे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या दिन में सोए तो उपवास तप प्रायश्चित् ।

[५४] कई दिन तक क्रोध रखे, कंकोल नाम का फल, लविंग, जायफल, लहसुन आदि का तण्णग-मोर आदि का संग्रह करे तो पुरिमड्ढ ।

[५५] छिद्र रहित या कोमल और बिना कारण भुगते तो निवि, अन्य घास को भुगतते हुए या अप्रतिलेखित घास पर शयन करवाते पुरिमड्ढ तप प्रायश्चित् ।

[५६] आचार्य की आज्ञा बिना स्थापना कुल में भोजन के लिए प्रवेश करे तो एकासणा, पराक्रम गोपे तो एकासणा, उस मुताबिक जीत व्यवहार है । सूत्र व्यवहार मुताबिक माया रहित हो तो एकासणा माया सहित हो तो उपवास ।

[५७] दौड़ना-कूदना आदि में वर्तते पंचेन्द्रिय के वध की संभावना है । अंगादान-शुक्र निष्क्रमण आदि संकिलष्ट कर्म में काफी अतिचार लगे, आधा कर्मादि सेवन रस से ग्लान आदि का लम्बा सहवास करे उन सब में पंचकल्याणक् प्रायश्चित् तप आता है ।

[५८] सर्व उपधि आदि को धारण करते हुए प्रथम पोरिसि के अन्तिम हिस्से में यानि पादोनपोरिसि के वक्त या प्रथम और अन्तिम पोरिसि के अवसर पर पड़िलेहण न करे । चोमासी में या संवत्सरी के दिन शुद्धि करे तो पंचकल्याणक तप प्रायश्चित् ।

[५९] जो छेद (प्रायश्चित्) की श्रद्धा नहीं करता । मेरा पर्याय छेदित या न छेदित ऐसा नहीं जानता अभिमान से पर्याय का गर्व करता है उसे छेद आदि प्रायश्चित् आता है । जीत व्यवहार गणाधिपति के लिए इस प्रकार का है । गणाधिपति को छेद प्रायश्चित् आता हो तो भी तप उचित् प्रायश्चित् देना चाहिए ।

[६०] इस जीत व्यवहार में जो प्रायश्चित् नहीं बताए उस प्रायश्चित् स्थान को वर्तमान में संक्षेप से मैं कहता हूँ जो निसीह-व्यवहार-कप्पो में बताए गए है । उसे तप से छ मास पर्यन्त के मानना ।

[६१] (भिन्न शब्द से पच्चीस दिन ग्रहण करने के लिए यहाँ विशिष्ट शब्द से सर्व भेद ग्रहण करना) भिन्न और अविशिष्ट ऐसे जो-जो अपराध सूत्र व्यवहार में बताए उन सबके लिए जित व्यवहार मुताबिक निवि तप आता है । उसमें ज्यादातर इतना कि लघुमास में पुरिमड्ढ, गुरुमाँस में एकासणा, लघुचउमासे आयंबिल, गुरु चऊमासे उपवास, लघु छ मासे छट्ठ, छ गुरु मासे अट्ठम, ऐसे प्रायश्चित् तप दो ।

[६२] इन सभी प्रकार से - सभी तप के स्थान पर यथाक्रम सिद्धांत में जो तप बताए वहाँ जीत व्यवहार अनुसार निवि से अट्ठम पर्यन्त तप कहना ।

[६३] इस प्रकार जो प्रायश्चित् कहा गया उसके लिए विशेष से कहते है कि सभी प्रायश्चित् का सामान्य एवं विशेष में निर्देश किया गया है । वो दान-विभाग से द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पुरुष पड़िसेवी विशेष से मानना । यानि द्रव्य आदि को जानकर उस प्रकार देना। कम अधिक या सहज उस मुताबिक शक्ति विशेष देखकर देना ।

[६४-६७] द्रव्य से जिसका आहार आदि हो, जिस देश में वो ज्यादा हो, सुलभ हो वो जानकर जीत व्यवहार अनुसार प्रायश्चित् देना । जहाँ आहार आदि कम हो, दुर्लभ हो वहाँ कम प्रायश्चित् दो...क्षेत्र रूक्ष-स्निग्ध या साधारण है यह जानकर रूक्ष में कम, साधारण में जिस तरह से जीत व्यवहार में कहा हो ऐसे और स्निग्ध में अधिक प्रायश्चित् दो, उस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीनों काल में तीनों तरीके से प्रायश्चित् दो...गर्मी रूक्ष काल है, शर्दी साधारण काल है और वर्षा स्निग्ध काल है । गर्मी में क्रम से जघन्य एक उपवास, मध्यम छट्ठ, उत्कृष्ट अट्ठम, शर्दी में क्रम से छट्ठ-अट्ठम, चार उपवास, वर्षा में क्रम से अट्ठम-चार उपवास पाँच उपवास तप प्रायश्चित् देना सूत्र व्यवहार उपदेश मुताबिक इस तरह नौ तरीके से व्यवहार है ।

[६८] निरोगी और ग्लान ऐसे भाव जानकर निरोगी को कुछ ज्यादा और ग्लान को थोड़ा कम प्रायश्चित् दो । जिसकी जितनी शक्ति हो उतना प्रायश्चित् उसे दो द्रव्य-क्षेत्र भाव की तरह काल को भी लक्ष्य में लो ।

[६९-७२] पुरुष में कोई गीतार्थ हो कोई अगीतार्थ हो, कोई सहनशील हो, कोई असहनशील हो, कोई ऋजु हो कोई मायावी हो, कुछ श्रद्धा परिणामी हो, कुछ अपरिमाणी हो और कुछ अपवाद का ही आचरण करनेवाले अतिपरिणामी भी हो, कुछ धृति-संघयण और उभय से संपन्न हो, कुछ उससे हिन हो, कुछ तप शक्तिवाले हो, कुछ वैयावच्ची हो, कुछ दोनों ताकतवाले हो, कुछ में एक भी शक्ति न हो या अन्य तरह के हो...आचेलक आदि कल्पस्थित, परिणत, कृतजोगी, तरमाण (कुशल) या अकल्पस्थित, अपरिणत, अकृतजोगी या अतरमाण ऐसे दो तरह के पुरुष हो उसी तरह कल्पस्थित भी गच्छवासी या जिन कल्पी हो शके । इन सभी पुरुष में जिसकी जितनी शक्ति गुण ज्यादा उसे अधिक प्रायश्चित् दो और हीन सत्त्ववाले को हीनतर प्रायश्चित् दो और सर्वथा हीन को प्रायश्चित् न दो उसे जीत व्यवहार मानो ।

[७३] इस जीत व्यवहार में कई तरह के साधु है । जैसे कि अकृत्य करनेवाले, अगीतार्थ, अज्ञात इस कारण से जीत व्यवहार में निवि से अट्ठम पर्यन्त तप प्रायश्चित् है ।

(अब "पड़िसेवणा" बताते है ।)

[७४] हिंसा, दौड़ना, कूदना आदि क्रिया, प्रमाद या कल्प का सेवन करनेवाले या द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव मुताबिक प्रतिसेवन-करनेवाले पुरुष (ईस प्रकार पड़िसेवण यानि निषिद्ध चीज को सेवन करनेवाले कहा ।)

[७५] जिस प्रकार मैंने जीत व्यवहार अनुसार प्रायश्चित् दान कहा । वो क्या प्रमाद सहित सेवन करनेवाले को यानि निषिद्ध चीज सेवन करनेवाले को भी दे ? इस प्रायश्चित् में प्रमाद-स्थान सेवन करके एक स्थान वृद्धि करना यानि सामान्य से जो प्रायश्चित् निवि से अट्ठम पर्यन्त कहा उसके बजाय प्रमाद से सेवन करनेवाले को पुरीमड्ढ से चार उपवास पर्यन्त (क्रमशः एक ज्यादा तप) देना चाहिए ।

[७६] हिंसा करनेवाले को एकासणा से पाँच उपवास देना या छ स्थान या मूल प्रायश्चित् दो । कल्प पड़िसेवन करके यानि यतना पूर्वक सेवन किया हो तो प्रतिक्रमण प्रायश्चित् या तदुभय-आलोचना और प्रतिक्रमण-प्रायश्चित् देना ।

[७७] आलोचनकाल में भी यदि गोपवे या छल करे तो उस संकिलष्ट परिणामी को पुनः अधिक प्रायश्चित् दो । यदि यदि संवेग परीणाम से निंदा-गर्हा करे तो वो विशुद्ध भाव जानकर कम प्रायश्चित् दो मध्यम परिणामी को उतना ही प्रायश्चित् दी ।

[७८] उस प्रकार ज्यादा गुणवान द्रव्य-क्षेत्र-काल भाववाले दिखे तो गुरु सेवार्थे ज्यादा प्रायश्चित् दो । यदि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावहीन लगे तो कम प्रायश्चित् दो और अति अल्प लगे तो प्रायश्चित् न दो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[७९] जीत व्यवहार से ज्यादा अन्य तप अच्छी तरह से करनेवाले को अन्य प्रायश्चित् देकर जीत व्यवहा प्रायश्चित् नहीं देना चाहिए । वैयावच्चकारी वैयावच्च करता हो तब थोड़ा प्रायश्चित् देना चाहिए ।

(अब छेद प्रायश्चित्त कहते है ।)

[८०] तप गर्वित या तप में असमर्थ, तप की अश्रद्धा करनेवाले, तप से भी जो निग्रह नहीं कर शकते, अतिपरिणामी-अपवाद सेवी, अल्पसंगी इन सबको छेद प्रायश्चित् दो।

[८१-८२] ज्यादातर उत्तरगुण भंजक, बार-बार छेयावत्ति यानि छेद आवृत्ति करे, जो पासत्था, ओसन्न कुशील आदि हो, तो भी जो बार-बार संविग्न साधु की वैयावच्च करे, उत्कृष्ट तप भूमि यानि वीर प्रभु के शासन में छ मासी तप करे, जो अवशेष चारित्रवाला हो उसे पाँच, दश, पंद्रह साल से छ मास पर्यन्त या जितने पर्याय धारण करे उस तरह से छेद प्रायश्चित् दो।

(अब मूल प्रायश्चित्त बताते है ।)

[८३] प्राणातिपात, पंचेन्द्रिय का घात, अरुचि या गर्व से मैथुनसेवन, उत्कृष्ट से मृषावाद-अदत्तादान या परिग्रह का सेवन करे इस तरह बार-बार करनेवाले को मूल प्रायश्चित्।

[८४] तप गर्विष्ठ, तप सेवन में असमर्थ, तप की अश्रद्धा करते, मूल-उत्तर गुण में दोष लगानेवाले या भंजक, दर्शन और चारित्र से पतीत दर्शन आदि कर्तव्य को छोड़नेवाला, ऐसा शैक्ष को भी (शैक्ष आदि सर्व को) मूल प्रायश्चित् आता है ।

[८५-८६] अति अवसन्न, गृहस्थ या अन्यतिर्थिक के भेद को हिंसा आदि कारण से सेवन करनेवाला, स्त्री गर्भ का आदान या विनाश करनेवाला ऐसा साधु-उसे जो तप बताया गया है ऐसा तप-छेद या मूल, अनवस्थाप्य या पारंचित प्रायश्चित् उसे अतिक्रमे तो पर्याय छेद, अनवस्थाप्य, पारंचित तप पूरा होने पर उसे मूल प्रायश्चित् में स्थापना करना । मूल की आपत्ति में बार-बार मूल प्रायश्चित् आता है ।

(अब अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त बताते है ।)

[८७] उत्कृष्ट से बार-बार द्वेषवाले, चित्त से चोरी करनेवाला, स्वपक्ष या परपक्ष को घोर परीणाम से और निरपेक्षपन से निष्कारण प्रहार करे तो अनवस्थाप्य प्रायश्चित् ।

[८८] सर्व अपराध के लिए जहाँ-जहाँ काफी कुछ करके पारंचित प्रायश्चित् आता है वहाँ उपाध्याय को अनावस्थाप्य प्रायश्चित् देना, जहाँ काफी कुछ करके अनवस्थाप्य प्रायश्चित् आता हो वहाँ भी अनवस्थाप्य प्रायश्चित् दो ।

[८९] लिंग, क्षेत्र, काल और तप उस चार भेद से अनवस्थाप्य कहा है जो व्रत या लिंग-यानि वेश में स्थापना न कर शके, प्रवज्या के लिए अनुचित लगे उसे अनवस्थाप्य प्रायश्चित् दो । लिंग के दो भेद द्रव्य और भाव, द्रव्यलिंग यानि रजोहरण और भावलिंग यानि महाव्रत ।

[९०] स्वपक्ष-परपक्ष के घात में उद्यत ऐसे द्रव्य या भाव लिंगी को और ओसन्न आदि भावलिंग रहित को अनवस्थाप्य प्रायश्चित् । जिन-जिन क्षेत्र से दोष लगे उसे उसी क्षेत्र में अनवस्थाप्य प्रायश्चित् ।

[९१] जो जितने काल के लिए दोष में रहे उसे उतने काल के लिए अनवस्थाप्य । अनवस्थाप्य दोष के दो भेद आशातना और पाडिसेवणा-निषिद्ध कार्य करना वो । उसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशातना अनवस्थाप्य प्रायश्चित् जघन्य से छ मास और उत्कृष्ट से एक साल, पड़िसेवण अनवस्थाप्य प्रायश्चित् जघन्य से एक साल उत्कृष्ट से बारह शाल ।

[९२] उत्सर्ग से पड़िसेवण कारण से बारह साल का अनवस्थाप्य प्रायश्चित् आए और अपवाद से अल्प या अल्पतर प्रायश्चित् दो या सर्वथा छोड़ दो ।

[९३] वो (अनवस्थाप्य प्रायश्चित् सेवन करके) खुद शैक्ष को भी वंदन करे । लेकिन उसे कोई वंदन न करे, वो प्रायश्चित् सेवन करके परिहार तप का अच्छी तरह से सेवन करे, उसके साथ संवास हो शके लेकिन उसके साथ संवाद या वंदन आदि क्रिया न हो शके ।

(अब पारंचित प्रायश्चित्त कहते है ।)

[९४] तिर्थंकर, प्रवचन, श्रुत, आचार्य, गणधर, महर्द्धिक उन सबकी आशातना कई अभिनिवेष-कदाग्रह से करे उसे पारंचीत प्रायश्चित् आता है ।

[९५] जो स्वलिंग-वेश में रहा हो वैसे कषायदुष्ट या विषयदुष्ट और राग को वश होकर बार-बार प्रकट रूप से राजा की अग्रमहिषी का सेवन करे उसे पारंचित प्रायश्चित् ।

[९६] थिणद्धि निद्रा के उदय से महादोषवाला, अन्योन्य मैथुन आसक्त, बार-बार पारिंचित के उचित्त प्रायश्चित् में प्रवृत्त को पारंचित प्रायश्चित् आता है ।

[९७] वो पारंचित चार तरह से है । लिंग, क्षेत्र, काल और तप से, उसमें अन्योन्य पड़िसेवन करके और थिणद्धि महादोषवाले को पारंचित प्रायश्चित् ।

[९८-९९] क्षेत्र से वसति, निवेस, पाडो, वृक्ष, राज्य आदि के प्रवेशस्थान नगर, देश, राज्य में जिस दोष का जिसने सेवन किया हो उसे उस दोष के लिए वहीं पारंचिक करो ।

[१००] जो जितने काल के लिए जिस दोष का सेवन करे उसे उतने काल के लिए पारंचित् प्रायश्चित् वो पारंचित दो तरह से आशातना और पड़िसेवणा, आशातना पारंचित छ मास से एक साल, पड़िसेवणा प्रायश्चित् एक साल से बारह साल ।

[१०१] पारंचित प्रायश्चित् सेवन करके महासत्त्वशाली को अकेले जिनकल्पी की तरह और क्षेत्र के बाहर अर्ध योजन रखना और तप के लिए स्थापन करना, आचार्य प्रतिदिन उसका अवलोकन करे ।

[१०२] अनवस्थाप्य तप और पारंचित तप दोनो प्रायश्चित् अंतिम चौदह पूर्वधर आचार्य भद्रबाहु स्वामी से विच्छेद हुए है । बाकी के प्रायश्चित् शासन है तब तक रहेंगे ।

[१०३] इस प्रकार यह जीत कल्प-जीत व्यवहार संक्षेप से, सुविहित साधु की अनुकंपा बुद्धि से कहा । उसी मुताबिक अच्छी तरह से गुण जानकर प्रायश्चित् दान करना ।

जीतकल्प-छेदसूत्र-५-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

३९/१ महानिशीथ

छेदसूत्र-६/१- हिन्दी अनुवाद

अध्ययन-१-शल्यउद्धरण

[१] तिर्थ को नमस्कार हो, अरहंत भगवंत को नमस्कार हो ।

आयुष्मान् भगवंत के पास मैंने इस प्रकार सुना है कि, यहाँ जो किसी छद्मस्थ क्रिया में वर्तते ऐसे साधु या साध्वी हो वो–

इस परमतत्त्व और सारभूत चीज को साधनेवाले अति महा अर्थ गर्भित, अतिशय श्रेष्ठ, ऐसे ''महानिसीह''–श्रुतस्कंध श्रुत के मुताबिक त्रिविध (मन, वचन, काया) त्रिविध (करण, करावण, अनुमोदन) सर्व भाव से और अंतर-अभावी शल्यरहित होकर आत्मा के हित के लिए–

अति घोर, वीर, उग्र, कष्टकारी तप और संयम के अनुष्ठान करने के लिए सर्व प्रमाद के आलम्बन सर्वथा छोड़कर सारा वक्त रात को और दिन को प्रमाद रहित सतत खिन्नता के सिवा, अनन्य, महाश्रद्धा, संवेग और वैरागमार्ग पाए हुए, नियाणारहित, वल-वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम को छिपाए बिना, ग्लानि पाए बिना, वोसिराऐ-त्याग किए देहवाले, सुनिश्चित् एकाग्र चित्तवाले होकर बारबार तप संयम आदि अनुष्ठान में रमणता करनी चाहिए ।

[२] लेकिन राग, द्वेष, मोह, विषय, कषाय, ज्ञान आलम्बन के नाम पर होनेवाले कई प्रमाद, ऋद्धि, रस, शाता इन तीनों तरह के गारव, रौद्रध्यान, आर्त्तध्यान. विकथा, मिथ्यात्व, अविरति (मन, वचन, काया के) दुष्टयोग, अनायतन सेवन, कुशील आदि का संसर्ग, चुगली करना, झूठा आरोप लगाना, कलह करना, जाति आदि आठ तरह से मद करना, इर्ष्या, अभिमान, क्रोध, ममत्वभाव, अहंकार अनेक भेद में विभक्त तामसभाव युक्त हृदय से–

हिंसा, चोरी, झुठ, मैथुन, परिग्रह का आरम्भ, संकल्प आदि अशुभ परीणामवाले घोर, प्रचंड, महारौद्र, गाढ़, चिकने पापकर्म-मल समान लेप से खंडित आश्रव द्वार को बन्द किए बगैर न होना ।

यह बताए हुए आश्रव में साधु-साध्वी को प्रवृत्त न होना ।

[३] (इस प्रकार जब साधु या साध्वी उनके दोष जाने तब) एक पल, लव, मुहूर्त्त, आँख की पलक, अर्ध पलक, अर्ध पलक के भीतर के हिस्से जितना काल भी शल्य से रहित है-वो इस प्रकार है–

[४-६] जब मैं सर्व भाव से उपशांत बनूँगा और फिर सर्व विषय में विरक्त बनूँगा, राग, द्वेष और मोह का त्याग करूँगा...तब संवेग पानेवाला आत्मा परलोक के पंथ को एकाग्र मन से सम्यक् तरह से सोचे, अरे ! मैं यहाँ मृत्यु पाकर कहाँ जाऊँगा ?...मैंने कौन-सा धर्म प्राप्त किया है ? मेरे कौन-से व्रत-नियम है ? मैंने कौन-से तप का सेवन किया है ? मैंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसा शील धारण किया है ? मैंने क्या दान दिया है ?

[७-९] कि जिसके प्रभाव से मैं हीन, मध्यम या उत्तम कुल में स्वर्ग या मानव लोक में सुख और समृद्धि पा शकू ? या विषाद करने से क्या फायदा ? आत्मा को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ, मेरा दुश्चरित्र और मेरे दोष एवं गुण है वो सब मैं जानता हूँ । इस तरह घोर अंधकार से भरपूर ऐसे पाताल-नर्क में ही मै जाऊँगा कि जहाँ लम्बे अरसे तक हजारो दुःख मुझे सहने पड़ेंगे ।

[१०-११] इस तरह सर्व जीव धर्म-अधर्म, सुख-दुःख आदि जानते है । गौतम ! उसमें कुछ प्राणी ऐसे होते है कि जो आत्महित करनेवाले धर्म का सेवन मोह और अज्ञान की कारण से नहीं करते । और फिर परलोक के लिए आत्महित रूप ऐसा धर्म यदि कोई माया-दंभ से करेगा तो भी उसका फायदा महसूस नहीं करेगा ।

[१२-१४] यह आत्मा मेरा ही है । मैं मेरे आत्मा को यथार्थ तरह से जानता हूँ । आत्मा की प्रतीति करना दुष्कर है । धर्म भी आत्म साक्षी से होता है । जो जिसे हितकारी या प्रिय माने वो उसे सुन्दर पद पर स्थापन करते है । (क्योंकि) शेरनी अपने क्रूर बच्चे को भी ज्यादा प्रिय मानती है । जगत् के सर्व जीव "अपनी तरह ही दुसरे की आत्मा है", इस तरह सोचे बिना आत्मा को अनात्मा रूप से कल्पना करते हुए अपने दुष्ट वचन, काया, मन से चेष्टा सहित व्यवहार करता है...जब वो आत्मा निर्दोष कहलाती है । जो कलुषता रहित है । पक्षपात को छोड़ दिया है । पापवाले और कलुषित दिल जिससे काफी दूर हुए है । और दोष समान जाल से मुक्त है ।

[१५-१६] परम अर्थयुक्त, तत्त्व स्वरूप में सिद्ध हुए, सद्भूत चीज को साबित कर देनेवाले ऐसे, वैसे पुरुषो ने किए अनुष्ठान द्वारा वो (निर्दोष) आत्मा खुद को आनन्दित करता है । वैसे आत्मा में उत्तमधर्म होता है उत्तम तप संपत्ति-शील चारित्र होते है इसलिए वो उत्तम गति पाते है ।

[१७-१८] हे गौतम ! कुछ ऐसे भी प्राणी होते है कि जो इतनी उत्तम कक्षा तक पहुँचे हो, लेकिन फिर भी मन में शल्य रखकर धर्माचरण करते है, लेकिन आत्महित नहीं समझ शकते । शल्यसहित ऐसा जो कष्टदायक, उग्र, घोर, वीर कक्षा का तप देवताई हजार साल तक करे तो भी उसका वो तप निष्फल होता है ?

[१९] जिस शल्य की आलोचना नहीं होती । निंदा या गर्हा नहीं की जाती या शास्त्रोक्त प्रायश्चित् नहीं किया जाता । तो वो शल्य भी पाप कहलाता है ।

[२०] माया, दंभ, छल करने के उचित नहीं है । बड़े-गुप्त पाप करना, अजयणा अनाचार सेवन करना, मन में शल्य रखना, वो आँठ कर्म का संग्रह करवाता है ।

[२१-२६] असंयम, अधर्म, शील और व्रत रहितता, कषाय सहितता, योग की अशुद्धि यह सभी सुकृत पुण्य को नष्ट करनेवाले और पार न पा शके वैसी दुर्गति में भ्रमण करवानेवाले हो और फिर शारीरिक मानसिक दुःख पूर्ण अंत रहित संसार में अति घोर व्याकुलता भुगतनी पड़े, कुछ को रूप की बदसूरती मिले, दारिद्रय, दुर्भगता, हाहाकार करवानेवाली वेदना, पराभाव पानेवाला जीवित, निर्दयता, करुणाहीन, क्रुर, दयाहीन, निर्लज्जता, गूढ़हृदय, वक्रता, विपरीत चितता, राग, द्वेष, मोह, घनघोर मिथ्यात्व, सन्मार्ग का नाश, अपयश प्राप्ति, आज्ञाभंग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अबोधि, शल्यरहितपन यह सब भवोभव होते है...इस प्रकार पाप शल्य के एक अर्थवाले कई पर्याय बताए ।

[२७-३०] एक बार शल्यवाला हृदय करनेवाले को दुसरे कई भव में सर्व अंग ओर उपांग बार-बार शल्य वेदनावाले होते है । वो शल्य दो तरीके का बताया है । सूक्ष्म और बादर। उन दोनों के भी तीन तीन प्रकार है । घोर, उग्र और उग्रतर...घोर माया चार तरह की है । जो घोर उग्र मानयुक्त हो और माया, लोभ और क्रोधयुक्त भी हो । उसी तरह उग्र और उग्रतर के भी यह चार भेद समजना । सूक्ष्म और बादर भेद-प्रभेद सहित इन शल्य को मुनि उद्धार करके जल्द से नीकाल दे । लेकिन पलभर भी मुनि शल्यवाला न रहे ।

[३१-३२] जिस तरह साँप का बच्चा छोटा हो, सरसप प्रमाण केवल अग्नि थोड़ा हो और जो चिपक जाए तो भी विनाश करता है । उसका स्पर्श होने के बाद वियोग नहीं कर शकते । उसी तरह अल्प या अल्पतर पाप-शल्य उद्धरेल न हो तो काफी संताप देनेवाले और क्रोड़ भव की परम्परा बढ़ानेवाले होते है ।

[३३-३७] हे भगवन् ! दुःख से करके उद्धर शके ऐसा और फिर दुःख देनेवाला यह पाप शल्य किस तरह उद्धरना वो भी कुछ लोग नहीं जानते । हे गौतम ! यह पापशल्य सर्वथा जड़ से ऊखेड़ना कहा है । चाहे कितना भी अति दुर्धर शल्य हो उसे सर्व अंग उपांग सहित भेदना बताया है...प्रथम सम्यग्दर्शन, दुसरा सम्यग्ज्ञान, त्रीसरा सम्यक्चारित्र यह तीनो जब एकसमान इकट्ठे हो, जीव जब शल्य का क्षेत्रीभूत बने और पापशल्य अति गहन में पहुँचा हो, देख भी न शकते हो, हड्डियाँ तक पहुँचा हो और उसके भीतर रहा हो, सर्व अंग-उपांग में फँसा हो, भीतर और बाहर के हिस्से में दर्द उत्पन्न करता हो वैसे शल्य को जड़ से उखेड़ना चाहिए ।

[३८-४०] क्रिया बिना ज्ञान निरर्थक है और फिर ज्ञान बिना क्रिया भी सफल नहीं होतो । जिस तरह देखनेवाला लंगड़ा और दौड़नेवाला अंधा दावानल में जल मरे । इसलिए हे गौतम ! दोनों का संयोग हो तो कार्य की सिद्धि हो । एक चक्र या पहिये से रथ नहीं चलता। जब अंधा और लगड़ा दोनों एक रूप बने यानि लंगड़े ने रास्ता दिखाया और अंधा उस मुताबिक चला तो दोनों दावानलवाले जंगल को पसार करके इच्छित नगर में निर्विघ्न सही सलामत पहुँचे । ज्ञान प्रकाश देते है, तप आत्मा की शुद्धि करते है, और संयम इन्द्रिय और मन को आड़े-टेढ़े रास्ते पर जाने से रोकते है । इस तीनों का यथार्थ संयोग हो तो हे गौतम! मोक्ष होता है । अन्यथा मोक्ष नहीं होता ।

[४१-४२] उक्त-उस कारण से निशल्य होकर, सर्व शल्य का त्याग करके जो कोई नि-शल्यपन से धर्म का सेवन करते है, उसका संयम सफल गिना है । इतना ही नहीं लेकिन जन्म-जन्मान्तर में विपुल संपत्ति और ऋद्धि पाकर परम्परा से शाश्वत सुख पाते है ।

[४३-४७] शल्य यानि अतिचार आदि दोष उद्धरने की इच्छावाली भव्यात्मा सुप्रशस्त-अच्छे योगवाले शुभ दिन, अच्छी तिथि-करण-मुहूर्त्त और अच्छे नक्षत्र और बलवान चन्द्र का योग हो तब उपवास या आयंबिल तप दश दिन तक करके आँठसों पंचमंगल (महाश्रुतस्कंध) का जप करना चाहिए । उस पर अट्ठम-तीन उपवास करके पारणे आयंबिल करना चाहिए । पारणे के दिन चैत्य-जिनालय और साधुओ को वंदन करना । सर्व तरह से आत्मा को क्रोध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहित और क्षमावाला बनाना । जो कोई भी दुष्ट व्यवहार किया हो उन सबका त्रिविध मन, वचन और काया से निःशल्यभाव से "मिच्छामिदुक्कड्म्" देना चाहिए ।

[४८-५०] फिर से चैत्यालय में जाकर वित्तराग परमात्मा की प्रतिमा की एकाग्र भक्तिपूर्ण हृदय से हरएक की वंदना-स्तवना करे । चैत्य को सम्यग् विधि सहित वंदना करके छट्ठ भक्त तप करके चैत्यालय में यह श्रुतदेवता नामक विद्याका लाख प्रमाण जप करे । सर्वभाव से उपशान्त होनेवाला, एकाग्रचित्तवाला, दृढ़ निश्चयवाला, उपयोगवाला, ड़ामाडोल चित्त रहित, राग-रति-अरति से रहित बनकर चैत्यालय की पवित्र जगह में विधिवत् जप करे।

[५१] (इस सूत्र में मंत्राक्षर है । जिसका हिन्दी अनुवाद नहीं हो शकता जिज्ञासुओ को हमारा आगमसुत्ताणि भाग-३९ महानिसीह पृष्ठ-५ देखना चाहिए)

[५२] सिद्धांतिओ ने यह विद्या सूत्र-५१ में मूल अर्धमागधी में दी हुई महाविद्या लीपी शब्द से लिखी है । शास्त्र के मर्म को समजा न हो और कुशीलवाला हो उन्हे गीतार्थ श्रुतधर को यह प्रवचन विद्या न देना या उनको प्ररूपना नहीं चाहिए ।

[५३-५५] यह श्रेष्ठ विद्यासे सभी तरीके से खुद को अभिमंत्रित करके उस क्षमावान् इन्द्रिय का दमन करनेवाले और जितेन्द्रय सो जाए नींद में जो शुभ या अशुभ सपना आए उसे अच्छी तरह से अवधारण करे, याद रखे, वहाँ जिस तरह का सपना देखा हो उसके अनुसार शुभ या अशुभ बने...यदि सुंदर सपना हो तो यह महा परमार्थ-तत्तत्त्व सारभूत शल्योद्धार बने ऐसा समजना ।

[५६-५७] इस तरह आँठ मद को और लोक के अग्र हिस्से बिराजमान सिद्ध को स्तवता हो वैसे निःशल्य होने की अभिलाषावाले आत्मा को शुद्ध आलोचना देना । अपने पाप की आलोचना करके, गुरु के पास प्रकट करके शल्यरहित बने । उसके बाद भी चैत्य और साधु को वंदन करके साधु को विधिवत् खमाए ।

[५८-६२] पापशल्य को खमाकर फिर से विधिवत् देव-असुर सहित जगत को आनन्द देते हुए निर्मूल पन से शल्य का उद्धार करते है । उस मुताबिक शल्यरहित होकर सर्व भाव से फिर से विधि सहित चैत्य को वांदे और साधर्मिक को खमाए । खास करके जिसके साथ एक उपाश्रय वसति में वास किया है । जिसके साथ गाँव-गाँव विचरण किया हो, कठिन वचन से जिन्होंने सारणादिक प्रेरणा दी हो, जिन किसी को भी कार्य अवसर या कार्य बिना कठिन, कड़े, निष्ठुर वचन सुनाए हो, उसने भी सामने कुछ प्रत्युत्तर दिया है, वो शायद जिन्दा या मरा हुआ हो तो उसे सर्व भाव से खमाए, यदि जिन्दा हो तो वहाँ जाकर विनय से खमाए, मरे हुए हो तो साधु साक्षी से खमाए ।

[६३-६५] उस प्रकार तीन भुवन को भी भाव से क्षामणा करके मन, वचन, काया के योग से शुद्ध होनेवाला वो निश्चयपूर्वक इस प्रकार घोषित करे, "मैं सर्व जीव को खमाता हूँ । सर्व जीव मुझे क्षमा दो । सर्व जीव के साथ मुजे मैत्री भाव है । किसी भी जीव के साथ मुजे बैर-भाव नहीं...भवोभव में हरएक जीव के सम्बन्ध में आनेवाला मैं मन, वचन, काया से सर्वभाव से सर्व तरह से सबको खमाता हूँ ।

[६६] इस प्रकार स्थापना, घोषणा करके चैत्यवंदना करे, साधु की साक्षी पूर्वक गुरु की भी विधिवत् क्षमा याचना करे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६७-६८] सम्यक् तरह से गुरु भगवंत को खमाकर अपनी शक्ति अनुसार ज्ञान की महिमा करे । फिर से वंदन विधि सहित वंदन करे । परमार्थ, तत्त्वभूत और सार समान यह शल्योद्धरण किस तरह करना वो गुरु मुख से सुने । सुनकर उस मुताबिक आलोचना करे, कि जिसकी आलोचना करने से केवलज्ञान उत्पन्न हो ।

[६९-७०] ऐसे सुन्दर भाव में रहे हो और निःशल्य आलोचना की हो कि जिससे आलोचना करते-करते वहीं केवलज्ञान उत्पन्न हो । हे गौतम ! वैसे कुछ महासत्त्वशाली महापुरुष के नाम बताते है कि जिन्होंने भाव से आलोचना करते-करते केवलज्ञान उत्पन्न किया।

[७१-७५] हाँ, मैंने दुष्ट काम किया, दुष्ट सोचा, हाँ मैंने झूठी अनुमोदना की...उस तरह संवेग से और भाव से आलोचना करनेवाला केवलज्ञान पाए । इर्यासमिति पूर्वक पाँव स्थापन करते हुए केवली बने, मुहपत्ति प्रतिलेखन से केवलि बने, सम्यक् तरह से प्रायश्चित् ग्रहण करने से केवली बने, "हा-हा मैं पापी हूँ" ऐसा विचरते हुए केवली बने । "हा हा मैंने उन्मत्त बनकर उन्मार्ग की प्ररूपणा करके ऐसे पश्चाताप करते हुए केवली बने । अणागाररूप में केवली बने, सावद्य योग से सेवन मत करना" - उस तरह से अखंड़ितशील पालन से केवली बने, सर्व तरह से शील का रक्षण करते हुए, कोडी-करोड़ तरह से प्रायश्चित् करते हुए भी केवली बने ।

[७६-७८] शरीर की मलिनता साफ करने समान निष्पतिकर्म करते हुए, न खुजलानेवाले, आँख की पलक भी न झपकाते केवली बने, दो प्रहर तक एक बगल में रहकर, मौनव्रत धारण करके भी केवली बने, "साधुपन पालने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ इसलिए अनशन में रहूँ" ऐसा करते हुए केवली बने, नवकार गिनते हुए केवली बने, "मैं धन्य हूँ कि मैंने ऐसा शासन पाया, सब सामग्री पाने के बाद भी मैं केवली क्यों न हुआ ?" ऐसी भावना से केवली बने ।

[७९-८०] (जब तक दृढ़प्रहारी की तरह लोग मुझे) पाप-शल्यवाला बोले तब तक काऊस्सग्ग पारुंग नहीं उस तरह केवली बने, चलायमान काष्ठ-लकड़े पर पाँव पड़ने से सोचे कि अरे रे ! अजयणा होगी, जीव-विराधना होगी ऐसी भावना से केवली बने, शुद्ध पक्ष में प्रायश्चित् करुँ ऐसा कहने से केवली बने । "हमारा जीवन चंचल है" - "यह मानवता अनित्य और क्षणविनाशी है" उस भाव से केवली बने ।

[८१-८३] आलोचना, निंदा, वंदना, घोर और दुष्कर प्रायश्चित् सेवन - लाखो उपसर्ग सहन करने से केवली बने, (चंदनबाला का हाथ दूर करने से जिस तरह केवलज्ञान हुआ वैसे) हाथ दूर करने से, निवासस्थान करते, अर्धकवल यानि कुरगडुमुनि की तरह खाते-खाते, एक दाना खाने समान तप प्रायश्चित् करने से दस साल के बाद केवली बने । प्रायश्चित् शुरू करनेवाले, अर्द्धप्रायश्चित् करनेवाले केवली, प्रायश्चित् पूरा करनेवाला, उत्कृष्ट १०८ गिनतीमें ऋषभ आदि की तरह केवल पानेवाले केवली ।

[८४-८७] "शुद्धि और प्रायश्चित् बिना जल्द केवली बने तो कितना अच्छा" ऐसी भावना करने से केवली बने । "अब ऐसा प्रायश्चित् करूँ कि मुजे तप आचरण न करने पड़े" ऐसा विचरने से केवली बने । "प्राण के परित्याग से भी मैं जिनेश्वर परमात्मा की आज्ञा का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लंघन नहीं करूँगा उस तरह से केवली बने । यह मेरा शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है। मुझे सम्यक्त्व हुआ है । इस प्रकार की भावना से केवल ज्ञान होता है ।

[८८-९०] अनादि काल से आत्मा से जुडे पापकर्म के मैल को मैं साफ कर दुं ऐसी भावना से केवल ज्ञान होता है । अब प्रमाद से मैं कोई अन्य आचरण नहीं करुंगा इस भावना से केवल ज्ञान होता है । देह का क्षय हो तो मेरे शरीर-आत्मा को निर्जरा हो, संयम ही शरीर का निष्कलंक सार है । ऐसी भावना से केवली बने । मन से भी शील का खंड़न हो तो मुझे प्राणधारण नहीं करना और फिर वचन और काया से मैं शील का रक्षण करूँगा ऐसी भावना से केवली बने ।

(इस तरह कौनकौन-सी अवस्था में केवलज्ञान हुआ वो बताया)

[९१-९५] उस प्रकार अनादि काल से भ्रमण करते हुए भ्रमण करके मुनिपन पाया। कुछ भव में कुछ आलोचना सफल हुई । हे गौतम ! किसी भव में प्रायश्चित् चित्त की शुद्धि करनेवाला बना...क्षमा रखनेवाला, इन्द्रिय का दमन करनेवाला, संतोषी, इन्द्रिय को जीतनेवाला, सत्यभाषी, छ काय जीव के समारम्भ से त्रिविध से विरमित, तीन दंड़-मन, वचन काया दंड़ से विरमित स्त्री के साथ भी बात न करनेवाला, स्त्री के अंग-उपांग को न देखनेवाला, शरीर की ममता न हो, अप्रतिबद्ध विहारी यानि विहार के क्षेत्रकाल या व्यक्ति के लिए राग न हो, महा-सारा आशयवाला स्त्री के गर्भ वास में रहने से भयभीत, संसार के कई दुःख और भय से त्रस्त...इस तरह के भाव से (गुरु समक्ष अपने दोष प्रकट करने आनेवाला) आलोचक को आलोचना देना । आलोचक ने (भी) गुरु को दिया प्रायश्चित् करना - जिस क्रम से दोष सेवन किंया हो उस क्रम से प्रायश्चित् करना चाहिए ।

[९६-९८] आलोचना करनेवाले को माया दंभ-शल्य से कोई आलोचना नही करनी चाहिए । उस तरह की आलोचना से संसार की वृद्धि होती है...अनादि अनन्तकाल से अपने कर्म से दुर्मतिवाले आत्मा ने कई विकल्प समान कल्लोलवाले संसार समुद्र में आलोचना करने के बाद भी अधोगति पानेवाले के नाम बताऊँ उसे सुन कि जो आलोचना सहित प्रायश्चित् पाए हुए और भाव दोष से कलुषित चितवाले हुए है ।

[९९-१०२] शल्य सहित आलोचना-प्रायश्चित् करके पापकर्म करनेवाले नराधम, घोर अति दुःख से सह शके वैसे अति दुःसह दुःख सहते हुए वहाँ रहते है । भारी असंयम सेवन करनेवाला और साधु को नफरत करनेवाला, दृष्ट और वाणी विषय से शील रहित और मन से भी कुशीलवाले, सूक्ष्म विषय की आलोचना करनेवाले, "दुसरों ने ऐसा किया उसका क्या प्रायश्चित् ? ऐसा पूछकर खुद प्रायश्चित् करे थोड़ी-थोड़ी आलोचना करे, थोड़ी भी आलोचना न करे, जिसने दोष सेवन नहीं किया उसकी या लोगो के रंजन के लिए दुसरों के सामने आलोचना करे," मैं प्रायश्चित् नहीं करूँगा" वैसे सोचकर या छल पूर्वक आलोचना करे ।

[१०३-१०५] माया, दंभ और प्रपंच से पूर्वे किए गए तप और आचरण की बाते करे, मुझे कोई भी प्रायश्चित् नहीं लगता ऐसा कहे या किए हुए दोष प्रकट न करे, पास में किए दोष प्रकट करे...छोटे-छोटे प्रायश्चित् माँगे, हम ऐसी चेष्टा प्रवृत्ति करते है कि आलोचना लेने का अवकाश नहीं रहता । ऐसा कहे कि शुभ बंध हो वैसी आलोचना माँगे । मैं बड़ा प्रायश्चित् करने के लिए अशक्त हूँ । अगर मुजे ग्लान-बिमारी की सेवा करनी है ऐसा कहकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके आलम्बन से प्रायश्चित् न करे आलोचना करनेवाला साधु सूना-अनसूना करे ।

[१०६-१०८] तुष्टि करनेवाले छूटे-छूटे प्रायश्चित् मैं नहीं करूँगा, लोगों को खुश करने के लिए जीह्वा से प्रायश्चित् नहीं करूँगा ऐसा कहकर प्रायश्चित् न करे । प्रायश्चित् अपनाने के बाद लम्बे अरसे के बाद उसमें प्रवेश करे - अर्थात् आचरण करे या प्रायश्चित् कबुल करने के बाद अन्यथा - अलग ही कुछ करे । निर्दयता से बार-बार महापाप का आचरण करे । कंदर्प यानि कामदेव विषयक अभिमान "चाहे कितना भी प्रायश्चित् दे तो भी मैं करने के लिए समर्थ हूँ" ऐसा गर्व करे । और फिर जयणा रहित सेवन करे तो सूना-अनसूना करके प्रायश्चित् करे ।

[१०९-११३] किताब में देखकर वहां बताया हुआ प्रायश्चित् करे, अपनी मति कल्पना से प्रायश्चित् करे । पूर्व आलोचना की हो उस मुताबिक प्रायश्चित् कर ले...जातिमद, कुलमद, जातिकुलउभयमद, श्रुतमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद, तपमद, पंड़िताई का मद, सत्कार मद आदि में लुब्ध बने । गारव से उत्तेजित होकर (आलोचना करे) मैं अपूज्य हूँ । एकाकी हूँ ऐसा सोचे । मैं महापापी हूँ ऐसी कलुषितता से आलोचना करे । दुसरों के द्वारा या अविनय से आलोचना करे । अविधि से आलोचना करे । इस प्रकार कहे गए या अन्य वैसे ही दुष्ट भाव से आलोचना करे ।

[११४-११६] हे गौतम ! अनादि अनन्त काल से भाव-दोष सेवन करनेवाले आत्मा को दुःख देनेवाले साधु नीचे भीतर साँतवी नरक भूमि तक गए है...हे गौतम ! अनादि अनन्त ऐसे संसार में ही साधु शल्य सहित होते है । वो अपने भाव-दोष समान विरस-कटु फल भुगतते है । अभी भी-शल्य से शल्यित होनेवाले वो भावि में भी अनन्तकाल तक विरस कटु फल भुगतते रहेंगे । इसलिए मुनि को जरा भी शल्यधारण नहीं करना चाहिए ।

[११७] हे गौतम ! श्रमणी की कोई गिनती नहीं जो कलुषिततारहित, शल्यरहित, विशुद्ध, शुद्ध, निर्मल, विमल मानसवाली होकर, अभ्यंतर विशोधि से आलोचना करके साफ अतिचार आदि सर्व भावशल्य को यथार्थ तपोकर्म सेवन करके, प्रायश्चित् पूरी तरह आचरण करके, पाप कर्म के मल के लेप समान कलंक धोकर-साफ करके उत्पन्न किए दिव्य-उत्तम केवलज्ञानवाली, महानुभाग, महायशा, महासत्त्व, संपन्ना, सुग्रहित, नामधारी, अनन्त उत्तम सुखयुक्त मोक्ष पाई हुई है ।

[११८-१२०] हे गौतम ! पुण्यभागी ऐसी कुछ साध्वी के नाम कहते है कि जो आलोचना करते हुए केवलज्ञान पाए हुए होती है...अरेरे मैं पापकर्म करनेवाली पापिणी-पापमती वाली हूँ । सचमुच पापीणी में भी अधिक पाप करनेवाली, अरेरे मैंने काफी दुष्ट चिन्तवन किया, क्योंकि इस जन्म में मुजे स्त्रीभाव पैदा हुआ तो भी अब घोर, वीर, उग्र कष्टदायक तप संयम धारण करूँगी ।

[१२१-१२५] अनन्ती पापराशि इकट्ठी हो तब पापकर्म के फल समान शुद्ध स्त्रीपन मिलता है । अब स्त्रीपन के उचित इकट्ठे हुए पापकर्म के समूह को ऐसे पतले करूँ कि जिससे स्त्री न बनू और केवल-ज्ञान पाऊँ...नजर से भी अब शीयल खंड़न नहीं करूँगी, अब मैं श्रमण-केवली बनूँगी । अरेरे ! पूर्वे मन से भी मैंने कोई आहट्ट-दोहट्ट अति दुष्ट सोचा होगा। उसकी आलोचना करके मैं जल्द उसकी शुद्धि करूँगी और श्रमणी-केवली बनूँगी । मेरा रूप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लावण्य देखकर और कान्ति, तेज, शोभा देखकर कोई मानव समान तितली अधम होकर क्षय न हो उसके लिए अनशन अपनाकर मैं श्रमणी पन में केवली बनूँगी । अब निश्चय से वायरा के अलावा किसी दुसरे का स्पर्श नहीं करूँगी ।

[१२६-१२९] अब छ काय जीव का आरम्भ-समारम्भ नहीं करूँगी श्रमणी-केवली बनूँगी । मेरे देह, कमर, स्तन, जाँघ, गुप्त स्थान के भीतर का हिस्सा, नाभि, जघनान्तर हिस्सा आदि सर्वांग ऐसे गोपन करूँगी कि वो जगह माँ को भी नहीं बताऊँगी । ऐसी भावना से साध्वी केवली बने । अनेक क्रोड़ भवान्तर मैंने किए, गर्भावास की परम्परा करते वक्त मैंने किसी तरह से पाप-कर्म का क्षय करनेवाला ज्ञान और चारित्रयुक्त सुन्दर मनुष्यता पाई है । अब पल-पल सर्व भावशल्य की आलोचना-निंदा करूँगी । दुसरी बार वैसे पाप न करने की भावना से प्रायश्चित् अनुष्ठान करूँगी ।

[१३०-१३२] जिसे करने से प्रायश्चित् हो वैसे मन, वचन, काया के कार्य, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पतिकाय और बीजकाय का समारम्भ, दो-तीन, चार-पाँच इन्द्रियवाले जीव का समारम्भ यानि हत्या नहीं करूँगी, झूठ नहीं बोलूंगी, धूल और भस्म भी न दिए हुए ग्रहण नहीं करूँगी, सपने में भी मन से मैथुन की प्रार्थना नहीं करूंगी, परिग्रह नहीं करूँगी जिससे मूल गुण उत्तर-गुण की स्खलना न हो ।

[१३३-१३६] मद, भय, कषाय, मन, वचन, काया समान तीन दंड़, उन सबसे रहित होकर गुप्ति और समिति में रमण करूँगी और इन्द्रियजय करूँगी, अट्ठारह हजार शीलांगोसे युक्त शरीरवाली बनूँगी, स्वाध्याय-ध्यान और योग में रमणता करूँगी । ऐसी श्रमणी केवली बनूँगी...तीन लोक का रक्षण करने में समर्थ स्तंभ समान धर्म तिर्थंकर ने जो लिंग-चिह्न धारण किया है उसे धारण करनेवाली मैं शायद यंत्र में पीसकर मेरे शरीर के बीच में से दो खंड किए जाए, मुजे फाड़ या चीर दे ! भड़भड़ अग्नि में फेंका जाए, मस्तक छेदन किया जाए तो भी मैंने ग्रहण किए नियम-व्रत का भंग या शील और चारित्र का एक जन्म की खातिर भी मन से भी खंड़न नहीं करूँगा ऐसी श्रमणी होकर केवली बनूँगी ।

[१३७-१३९] गंधे, ऊँट, कूत्ते आदि जातिवाले भव में रागवाली होकर मैंने काफी भ्रमण किया । अनन्ता भव में और भवान्तर में न करने लायक कर्म किए । अब प्रवज्या में प्रवेश करके भी यदि वैसे दुष्ट कर्म करूँ तो फिर घोर-अंधकारवाली पाताल पृथ्वी में से मुझे नीकलने का अवकाश मिलना ही मुश्किल हो । ऐसा सुन्दर मानव जन्म राग दृष्टि से विषय में पसार किए जाए तो कई दुःख का भाजन होता है ।

[१४०-१४४] मानव भव अनित्य है, पल में विनाश पाने के स्वभाववाला, कई पाप-दंड़ और दोष के मिश्रणवाला है । उसमें मैं समग्र तीन लोक जिसकी निंदा करे वैसे स्त्री बनकर उत्पन्न हुई, लेकिन फिर भी विघ्न और अंतराय रहित ऐसे धर्म को पाकर अब पाप-दोष से किसी भी तरह उस धर्म का विराधन नहीं करूँगी अब शृंगार, राग, विकारयुक्त, अभिलाषा की चेष्टा नहीं करूँगी, धर्मोपदेशक को छोड़कर किसी भी पुरुष की ओर प्रशान्त नजर से भी नहीं देखूँगी । उसके साथ आलाप संलाप भी नहीं करूँगी, न बता शके उस तरह का महापाप करके उससे उत्पन्न हुए शल्य की जिस प्रकार आलोचना दी होगी उस प्रकार पालन करूँगी । ऐसी भावना रखकर श्रमणी-केवली बनूँगी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४५-१४८] उस प्रकार शुद्ध आलोचना देकर-(पाकर) अनन्त श्रमणी निःशल्य होकर, अनादि काल में हे गौतम ! केवलज्ञान पाकर सिद्धि पाकर, क्षमावती-इन्द्रिय का दमन करनेवाली संतोषकर-इन्द्रिय को जीतनेवाली सत्यभाषी-त्रिविध से छ काय के समारम्भ से विरमित तीन दंड़ के आश्रव को रोकनेवाली - पुरुषकथा और संग की त्यागी-पुरुष के साथ संलाप और अंगोपांग देखने से विरमित-अपने शरीर की ममता रहित महायशवाली-द्रव्यक्षेत्र काल भाव प्रति अप्रतिबद्ध यानि रागरहित, औरतपन, गर्भावस्था और भवभ्रमण से भयभीत इस तरह की भावनावाली (साध्वीओ को) आलोचना देना ।

[१४९-१५१] जिस तरह इस श्रमणीओ ने प्रायश्चित् किया उस तरह से प्रायश्चित् करना, लेकिन किसी को भी माया या दंभ से आलोयणा नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से पापकर्म की वृद्धि होती है...अनादि अनन्त काल से माया-दंभ-कपट दोष से आलोचना करके शल्यवाली बनी हुई साध्वी, हुकुम उठाना पड़े जैसा सेवकपन पाकर परम्परा से छट्ठी नारकी में गई हैं ।

[१५२-१५३] कुछ साध्वी के नाम कहता हूँ उसे समज-मान कि जिन्होंने आलोचना की है । लेकिन (माया-कपट समान) भाव-दोष का सेवन करने से विशिष्ट तरह से पापकर्ममल से उसका संयम और शील के अंग खरडाये हुए है...उस निःशल्यपन की प्रशंसा की है जो पलभर भी परम भाव विशुद्धि रहित न हो ।

[१५४-१५५] इसलिए हे गौतम ! कुछ स्त्रीयों को अति निर्मल, चित्त-विशुद्धि भवान्तर में भी नहीं होती कि जिससे वो निःशल्य भाव पा शके...कुछ श्रमणी छट्ठ-अट्ठम, चार उपवास, पाँच उपवास इस तरह बारबार उपवास से शरीर सूखा देते है तो भी सराग भाव की आलोचना करती नहीं-छोडती नहीं ।

[१५६-१५७] अनेक प्रकार के विकल्प देकर कल्लोल श्रेणी तरंग में अवगाहन करनेवाले दुःख से करके अवगाह किया जाए, पारश पा शके वैसे मन समान सागर में विचरनेवाले को जानना नामुमकीन है । जिसके चित्त स्वाधीन नहीं वो आलोचना किस तरह दे (ले) शके ? ऐसे शल्यवाले का शल्य जो उद्धरते है वो पल-पल वंदनीय है ।

[१५८-१६०] स्नेह-राग रहितपन से, वात्सल्यभाव से, धर्मध्यान में उल्लसित करनेवाले, शील के अंग और उत्तम गुण स्थानक को धारण करनेवाला स्त्री और दुसरे कई बंधन से मुक्त, गृह, स्त्री आदि को कैदखाना माननेवाले, सुविशुद्ध अति निर्मल चित्तयुक्त और जो शल्यरहित करे वो महाशयवाला पुरुष दर्शन करने के योग्य, वंदनीय और उत्तम ऐसे वो देवेन्द्र को भी पूजनीय है । कृतार्थी संसारिक सर्व चीज का अनादर करके जो उत्तर ऐसे विरति स्थान को धारण करता है । वो दर्शनीय-पूजनीय है ।

[१६१-१६३] (जिस साध्वीओ ने शल्य की आलोचना नहीं की वो किस तरह से संसार के कटु फल पाती है ये बताते है ।)...मैं आलोचना नहीं करूँगी, किस लिए करूँ ? या साध्वी थोड़ी आलोचना करे, कई दोष न करे, साध्वीओ ने जो दोष देखे हो वो ही दोष कहे, मैं तो निरवद्य-निष्पाप से - कहनेवाली हूँ, ज्ञानादिक आलम्बन के लिए दोष सेवन करना पड़े उसमें क्या आलोचना करना ? प्रमाद की क्षमापना माँग लेनेवाली श्रमणी, पाप करनेवाली श्रमणी, बल-शक्ति नहीं है ऐसी बातें करनेवाली श्रमणी, लोकविरुद्ध कथा करनेवाली श्रमणी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"दुसरो ने ऐसा पाप किया है उसे कितनी आलोचना है" ऐसा कहकर खुद की आलोचना लेनेवाली, किसी के पास वैसे दोष का प्रायश्चित् सुना हो उस मुताबिक करे लेकिन अपने दोष का निवेदन न करे और फिर जाति आदि आँठ तरह के मद से शंकित हुई श्रमणी...(इस तरह शुद्ध आलोचना न ले)

[१६४-१६५] झूठ बोलने के बाद पकड़े जाने के भय से आलोचना न ले, रस ऋद्धि शाता गारव से दुषित हुई हो और फिर इस तरह के कईं भाव दोष के आधीन, पापशल्य से भरी ऐसी श्रमणी अनन्ता संख्या प्रमाण और अनन्ताकाल से हुई है । वो अनन्ती श्रमणी कईं दुःखवाले स्थान में गई हुई है ।

[१६६-१६७] अनन्ती श्रमणी जो अनादि शल्य से शल्यित हुई है । वो भावदोष रूप केवल एक ही शल्य से उपार्जित किए घोर, उग्र-उग्रतर ऐसे फल के कटु फूल के विरस-रस की वेदना भुगतते हुए आज भी नरक में रही है और अभी भावि में भी अनन्ता काल तक वैसी शल्य से उपार्जन किए कटु फल का अहेसास करेगी । इसलिए श्रमणीओ को पलभर के लिए भी सूक्ष्म से सूक्ष्म शल्य भी धारण नहीं करना चाहिए ।

[१६८-१६९] धग धग ऐसे शब्द से प्रजवलित ज्वाला पंक्ति से आकुल महाभयानक भारित महाअग्नि में शरीर सरलता से जलता है...अंगार के ढ़ग में एक डूबकी लगा के फिर जल में, उसमें से स्थल में, उसमें से शरीर फिर से नदी में जाए ऐसे दुःख भुगते कि उससे तो मरना अच्छा लगे ।

[१७०-१७१] परमाधामी देव शस्त्र से नारकी जीव के शरीर के छोटे-छोटे टुकड़े कर दे, हंमेशा उसे सलुकाई से अग्नि में होमे, सख्त, तिक्ष्ण करवत से शरीर फाड़कर उसमें लूण-उस-साजीखार भरे इससे अपने शरीर को अति शुष्क कर दे तो भी जीने तक अपने शल्य को उतारने के लिए समर्थ नहीं हो शकता ।

[१७२-१७३] जव-खार, हल्दी आदि से अपना शरीर लींपकर मृतःप्राय करना सरल है । अपने हाथों से मस्तक छेदन करके रखना सरल है । लेकिन ऐसा संयम तप करना दुष्कर है, कि जिससे निःशल्य बना जाए ।

[१७४-१७७] अपने शल्य से दुःखी, माया और दंभ से किए गए शल्य-पाप छिपानेवाला वो अपने शल्य प्रकट करने के लिए समर्थ नहीं हो शकता । शायद कोई राजा दुश्चरित्र पूछे तो सर्वस्व और देह देने का मंजुर हो । लेकिन अपना दुश्चरित्र कहने के लिए समर्थ नहीं हो शकता...शायद राजा कहे कि तुम्हें समग्र पृथ्वी दे दूँ लेकिन तुम अपना दुश्चरित्र प्रकट करो । तो भी कोई अपना दुश्चरित्र कहने के लिए तैयार न हो । उस वक्त पृथ्वी को भी तृण समान माने-लेकिन अपना दुश्चरित्र न कहे । राजा कहे कि तेरा जीवन काट देता हूँ इसलिए तुम्हारा दुश्चरित्र कहो । तब प्राण का क्षय हो तो भी अपना दुश्चरित्र नहीं कहते । सर्वस्व हरण होता है, राज्य या प्राण जाए तो भी कोई अपना दुश्चरित्र नहीं कहते । मैं भी शायद पाताल-नरक में जाऊँगा लेकिन मेरा दुश्चरित्र नहीं कहूँगा ।

[१७८-१७९] जो पापी-अधम बुद्धिवाले एक जन्म का पाप छिपानेवाले पुरुष हो वो स्व दुश्चरित्र गोपते है । वो महापुरुष नहीं कहलाते । चरित्र में सत्पुरुष उसे कहा है कि जो शल्य रहित तप करने में लीन हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१८०-१८३] आत्मा खुद पाप-शल्य करने की इच्छावाला न हो और अर्धनिमिष आँख के पलक से भी आधा वक्त जितने काल में अनन्त गुण पापभार से तूट जाए तो निर्दंभ और मायारहित का ध्यान, स्वाध्याय, घोर तप और संयम से वो अपने पाप का उसी वक्त उद्धार कर शकते है । निःशल्यपन से आलोचना करके, निंदा करके, गुरु साक्षी से गर्हा करके उस तरह का दृढ़ प्रायश्चित् करे जिससे शल्य का अन्त आ जाए । दुसरे जन्म में पूरी तरह उपार्जन किए और आत्मा में दृढ़ होकर क्षेत्रीभूत हुए, लेकिन पलक या अर्ध पलक में क्षण-मुहूर्त्त या जन्म पूरा होने तक जुरुर पाप शल्य का अन्त करनेवाला होता है ।

[१८४-१८५] वो वाकई सुभट है, पुरुष है, तपस्वी है, पंड़ित है, क्षमावाला है, इन्द्रिय को बँस मे करनेवाला, संतोषी है । उसका जीवन सफल है...वो शूरवीर है, तारीफ करने के लायक है । पल-पल दर्शन के लायक है कि जिसने शुद्ध आलोचना करने के लिए तैयार होकर अपने अपराध गुरु के पास प्रकट करके अपने दुश्चरित्र को साफ बताया है ।

[१८६-१८९] हे गौतम ! जगत में कुछ ऐसे प्राणी-जीव होते है, जो अर्धशल्य का उद्धार करे और माया, लज्जा, भय, मोह की कारण से मृषावाद करके अर्धशल्य मन में रखे...हीन सत्त्ववाले ऐसे उनको उससे बड़ा दुःख होता है । अज्ञान दोष से उनके चित्त में शल्य न उद्धरने की कारण से भावि में जुरुर दुःखी होगा ऐसा नहीं सोचते । जिस तरह किसी के शरीर में एक या दो धारवाला शल्य-काँटा आदि घुसने के बाद उसे बाहर न नीकाले तो वो शल्य एक जन्म में, एक स्थान में रहकर दर्द दे या वो माँस समान बन जाए । लेकिन यदि पाप शल्य आत्मा में घुस जाए तो, जिस तरह असंख्य धारवाला वज्र पर्वत को भेदना है उसी तरह यह शल्य असंख्यात भव तक सर्वांग को भेदता है ।

[१९०-१९२] हे गौतम ! ऐसे भी कुछ जीव होते है कि जो लाख भव तक स्वाध्याय-ध्यान-योग से और फिर घोर तप और संयम से, शल्य का उद्धार करके दुःख और क्लेश से मुक्त हुए फिर से दुगुने-तीगुने प्रमाद की कारण से शल्य से पूर्ण होता है । और फिर कई जन्मान्तर जाए तब तप से जला देनेवाले कर्मवाला शल्योद्धार करने के लिए सामर्थ्य पा शकता है ।

[१९३-१९६] उस प्रकार फिर से भी शल्योद्धार करने की सामग्री किसी भी तरह पाकर, जो कोई प्रमाद के बँस में होता है । वो भवोभव के कल्याण प्राप्ति के सर्व साधन हर तरह से हार जाता है । प्रमादरूपी चोर कल्याण की समृद्धि लूँट लेता है । हे गौतम ! ऐसे भी कुछ जीव होते है कि जो प्रमाद के आधीन होकर घोर तप का सेवन करने के बावजूद भी सर्व तरह से अपना शल्य छिपाते है । लेकिन वो यह नहीं जानते कि यह शल्य उसने किससे छिपाया ? क्योंकि पाँच लोकपाल, अपनी आत्मा और पाँच इन्द्रिय से कुछ भी गुप्त नहीं है । सुर और असुर सहित इस जगत में पाँच बड़े लोकपाल आत्मा और पाँच इन्द्रिय उन ग्यारह से कुछ भी गुप्त नहीं है ।

[१९७] हे गौतम ! चार गति समान संसार में मृगजल समान संसार के सुख से ठगित, भाव दोष समान शल्य से धोखा खाता है और संसार में चारो गति में घुमता है ।

[१९८-२००] इतना विस्तार से कहा समजकर दृढ़ निश्चय और दिल से धीरज रखनी चाहिए । और फिर महा उत्तम सत्व समान भाले से माया राक्षसी को भेदना चाहिए । कई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरल भाव से कई तरह माया को निर्मथन-विनाश करके विनय आदि अंकुश से फिर मान गजेन्द्र को बँस में करे, मार्दव-सरलता समान मुसल-साँबिल से सेंकड़ो विषयो का चूर्ण कर देना और क्रोध-लोभ आदि मगर-मत्स्य को दूर से लड़ते हुए देखकर उसकी निंदा करे ।

[२०१-२०५] निग्रह न किया हुआ क्रोध और मान, वृद्धि पानेवाले माया और लोभ ऐसे चार समग्र कषाय अतिशय दुःख से करके उद्धर न शके वैसे शल्य आत्मा में प्रवेश करे तब क्षमा से-उपशम से क्रोध को हर ले, नम्रता से मान को जीत ले, सरलता से माया को और संतोष के लोभ को जीतना...इस प्रकार कषाय जीतकर जिसने सात भयस्थान और आठ मदस्थान का त्याग किया है, वो गुरु के पास शुद्ध आलोचना ग्रहण करने के लिए तैयार हो। जिस प्रकार दोष, अतिचार, शल्य लगे हो उस मुताबिक अपना सर्व दुश्चरित्र शंका रहित, क्षोभ रखे बिना, गुरु से निर्भय होकर निवेदन करे...भूत-प्रेत ने घैरा हो या बच्चे की तरह अति सरलता से बोले वैसे गुरु सन्मुख जिस मुताबिक शल्य-पाप हुआ हो उस प्रकार सब यथार्थ निवेदन करे-आलोचना करे ।

[२०६-२०७] पाताल में प्रवेश करके, पानी के भीतर जाकर, घर के भीतर गुप्त जगह में, रात को या अंधेरे में या माँ के साथ भी जो किया हो वो सब और उसके अलावा भी अन्य के साथ अपने दुष्कृत्य एक बार या बार-बार जो कुछ किए हो वो सब गुरु समक्ष यथार्थ कहकर बताना जिससे पाप का क्षय हो ।

[२०८] गुरु महाराज भी उसे तिर्थंकर परमात्मा की आज्ञा के अनुसार प्रायश्चित् कहे, जिससे शल्यरहित होकर असंयम का परिहार करो ।

[२०९-२१०] असंयम पाप कहलाता है और वो कई तरह से बताया है । वो इस प्रकार हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह । शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श ऐसे पाँच इन्द्रिय के विषय, क्रोध, मान, माया, लोभ वो चार कषाय, मन, वचन, काया ऐसे तीन दंड़ । इन पाप का त्याग किए बिना निःशल्य नहीं हो शकता ।

[२११] पृथ्वी-अप्-तेऊ, वायु वनस्पति ये पाँच स्थावर, छट्ठे त्रस जीव या नव-दश अथवा चौदह भेद से जीव । या काया के विविध भेद से बताते कई तरह के जीव के हिंसा (के पाप की आलोचना करे ।)

[२१२] हितोपदेश छोड़कर सर्वोत्तम और पारमार्थिक तत्त्वभूत धर्म का मृषावचन कई तरह का है उस मृषारूप सर्व शल्य (की आलोचना करे ।)

[२१३] उद्गम उत्पादना एषणा भेदरूप आहार पानी आदि के बयांलीस और पाँच मांड़ली के दोष से दुषित ऐसे जो भाजन-पात्र उपकरण पानी-आहार और फिर यह सब नौ कोटी- (मन, वचन, काया से करण, करावण, अनुमोदन) से अशुद्ध हो तो उसका भोगवटा करे तो चोरी का दोष लगे । (उसकी आलोचना करे ।)

[२१४-२१५] दिव्यकाम, रतिसुख यदि मन, वचन, काया से करे, करवाए, अनुमोदना करे, ऐसे त्रिविध-त्रिविध से रतिसुख पाए या औदारिक रतिसुख मन से भी चिन्तवन करे तो उसे अ-ब्रह्मचारी मानो । ब्रह्मचर्य की नौ तरह की गुप्ति की जो कोई साधु या साध्वी विराधना करे या रागवाली दृष्टि करे तो वो ब्रह्मचर्य का पापशल्य पाती है । (उसकी आलोचना करना।)

[२१६] गण के प्रमाण से ज्यादा धर्म-उपकारण का संग्रह करे, वो परिग्रह है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२१७-२१८] कषाय सहित क्रूर भाव से जो कलुषित भाषा बोले, पापवाले दोषयुक्त वचन से जो उत्तर दे, वो भी मृषा-असत्य वचन जानना चाहिए । रज-धूल से युक्त बिना दिया हुआ जो ग्रहण करे वो चोरी । हस्तकर्म, शब्द आदि विषय का सेवन वो मैथुन, जिस चीज में मूर्च्छा, लालच, कांक्षा, ममत्वभाव हो वो परिग्रह उणोदरी न करना, आकंठ भोजन करना उसे रात्रि भोजन कहा है ।

[२१९-२२१] इष्ट शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श में राग और अनिष्ट शब्द आदि में द्वेष, पलभर के लिए भी मुनि न करे, चार कषाय चतुष्क को मन में ही उपशान्त कर दे, दुष्ट मन, वचन, काया के दंड़ का परिहार करे, अप्रासुक-सचित्त पानी का परिभोग न करे-उपभोग न करे, बीज-स्थावरकाय का संघट्ट-स्पर्श न करे...

[२२२-२२४]...ऊपर कहे गए इस महापाप का त्याग न करे तब तक शल्यरहित नहीं होता । इस महा-पाप में से शरीर के लिए एक छोटा-सूक्ष्म पाप करे तब तक वो मुनि शल्यरहित न बने । इसलिए गुरु समक्ष आलोचना यानि पाप प्रकट करके, गुरु महाराज ने दिया प्रायश्चित् करके, कपट-दंभ-शल्य रहित तप करके जो देव या मानव के भव में उत्पन्न हो वहाँ उत्तम जाति, उत्तम समृद्धि, उत्तम सिद्धि, उत्तम रूप, उत्तम सौभाग्य पाए...यदि उस भवे सिद्धि न पाए तो यह सब उत्तम सामग्री जुरुर पाए...उस मुताबिक भगवंत के पास जो मैंने सुना वो कहता हूँ ।

[२२५] यहाँ श्रुतधर को कुलिखित का दोष न देना । लेकिन जो इस सूत्र की पूर्व की प्रति लिखी थी । उसमें ही कहीं श्लोकार्ध भाग, कहीं पद-अक्षर, कहीं पंक्ति, कहीं तीन-तीन पन्ने ऐसे काफी ग्रन्थ हिस्सा क्षीण हुआ था ।

अध्ययन-२-कर्मविपाक-प्रतिपादन

उद्देशक-१

[२२६-२२७] हे गौतम ! सर्व भाव सहित निर्मूल शल्योद्धार करके सम्यग् तरह से यह प्रत्यक्ष सोचो कि इस जगत में जो संज्ञी हो, असंज्ञी हो, भव्य हो या अभव्य हो लेकिन सुख के अर्थी किसी भी आत्मा तिर्च्छी, उर्ध्व अधो, यहाँ वहाँ ऐसे दश दिशा में अटन करते है ।

[२२८-२२९] असंज्ञी जीव दो तरह के जानना, विकलेन्द्री यानि एक, दो, तीन, चार इतनी इन्द्रियवाले और एकेन्द्रिय, कृमि, कुंथु, माली उस क्रम से दो, तीन, चार इन्द्रियवाले विकलेन्द्रिय जीव और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति वो स्थावर एकेन्द्रिय असंज्ञी जीव है । पशु, पंछी, नारकी, मानव, देव वो सभी संज्ञी है । और वो मर्यादा में-सर्वजीव में भव्यता और अभव्यता होती है । नारकी में विकलेन्द्रि और एकेन्द्रियपन नहीं होता ।

[२३०-२३१] हमें भी सुख मिले (ऐसी इच्छा से) विकलेन्द्रिय जीव को गर्मी लगने से छाँव में जाता है और ठंड़ लगे तो गर्मी में जाता है । तो वहाँ भी उन्हें दुःख होता है । अति कोमल अंगवाले उनका तलवा पलभर गर्मी या दाह को पलभर ठंड़क आदि प्रतिकूलता सहन करने के लिए समर्थ नहीं हो शकते ।

[२३२-२३३] मैथुन विषयक संकल्प और उसके राग से-मोह से अज्ञान दोष से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय में उत्पन्न होनेवाले को दुःख या सुख का अहेसास नहीं होता । उन एकेन्द्रिय जीव का अनन्ताकाल परिवर्तन हो और वो बेईन्द्रियपन पाए, कुछ बेईन्द्रियपन नहीं पाते । कुछ अनादि काल के बाद पाते है ।

[२३४] शर्दी, गर्मी, वायरा, बारिस आदि से पराभव पानेवाले मृग, जानवर, पंछी, सर्प आदि सपने में भी आँख की पलक के अर्ध हिस्से की भीतर के वक्त जितना भी सुख नहीं पा शकते ।

[२३५] कठिन अनचाहा स्पर्शवाली तीक्ष्ण करवत और उसके जैसे दुसरे कठिन हथियार से चीरनेवाले, फटनेवाले, कटनेवाले, पल-पल कई वेदना का अहेसास करनेवाले नारकी में रहे बेचारे नारक को सुख कैसे मिले ?

[२३६-२३७] देवलोक में अमरता तो सबकी समान है तो भी वहाँ एक देव वाहन बने और दुसरा (ज्यादा शक्तिवाले) देव उस पर आरोहण हो ऐसा वहाँ दुःख होता है । हाथ, पाँव, तुल्य और समान होने के बावजूद भी वो दुःख करते है कि वाकई आत्म-बैरी बना । उस वक्त माया-दंभ करके मैं भव हार गया, धिक्कार हो मुझे, इतना तप किया तो भी आत्मा ठगित हुआ । और हल्का देवपन पाया ।

[२३८-२४१] मानवपन में सुख का अर्थी खेती कर्म सेवा-चाकरी व्यापार शिल्पकला हंमेशा रात-दिन करते है । उसमें गर्मी सहते है, उसमें उनको भी कौन-सा सुख है ? कुछ मूरख दुसरों के घर समृद्धि आदि देखकर दिल में जलते है । कुछ तो बेचारे पेट की भूख भी पूरी नहीं कर शकते । और कुछ लोगों की हो वो लक्ष्मी भी क्षीण होती है । पुण्य की वृद्धि हो-तो यश-कीर्ति और लक्ष्मी की वृद्धि होती है, यदि पुण्य कम होने लगे तो यश, कीर्ति और समृद्धि कम होने लगते है । कुछ पुण्यवंत लगातार हजार साल तक एक समान सुख भुगतते रहते है, जब कि कुछ जीव एक दिन भी सुख पाए बिना दुःख मैं काल निर्गमन करते है, क्योंकि मनुष्य ने पुण्यकर्म करना छोड़ दिया होता है ।

[२४२] यह तो जगत के सारे जीव का आम तोर पर संक्षेप से दुःख बताया । हे गौतम ! मानव जात में जो दुःख रहा है उसे सुन ।

[२४३] हर एक समय अहेसास करनेवाले सेंकड़ो तरह के दुःख से उद्वेग पानेवाले और ऊब जानेवाले कुछ मानव वैराग्य नहीं पाते ।

[२४४-२४५] संक्षेप से मानव को दो तरह का दुःख होता है, एक शारीरिक दुसरा मानसिक । और फिर दोनों के घोर प्रचंड़ और महा रौद्र ऐसे तीन-तीन प्रकार होते है । एक मुहूर्त्त में जिसका अंत हो उसे घोर दुःख कहा है । कुछ देर बीच में विश्राम-आराम मिले तो घोर प्रचंड़ दुःख कहलाता है । जिसमें विश्रान्ति बिना हर एक वक्त में एक समान दुःख हंमेशा सहना पड़े । उसे घोर प्रचंड़ महारौद्र कहते है ।

[२४६] मानव जाति को घोर दुःख हो । तिर्यंचगति में घोर प्रचंड़ और हे गौतम ! घोर प्रचंड़ महारौद्र दुःख नारक के जीव का होता है ।

[२४७] मानव को तीन प्रकार का दुःख होता है । जघन्य मध्यम उत्तम । तिर्यंच को जघन्य दुःख नहीं होता, उत्कृष्ट दुःख नारक को होता है ।

[२४८-२५०] मानव को जो जघन्य दुःख हो वो दो तरह का जानना –सूक्ष्म और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादर । दुसरे बड़े दुःख विभाग रहित जानना । समुर्च्छिम मानव को सूक्ष्म और देव के लिए बादर दुःख होता है । महर्द्धिक देव को च्यवनकाल से बादर मानसिक दुःख हो हुकुम उठानेवाले सेवक-आभियोगिक देव को जन्म से लेकर जीवन के अन्त तक मानसिक बादर दुःख होता है । देव को शारीरिक दुःख नहीं होता । देवता का वज्र समान अति बलवान वैक्रिय हृदय होता है । वरना मानसिक दुःख से १०० टुकड़े होकर उसका हृदय भग्न होता है ।

[२५१-२५२] बाकी के दो हिस्से रहित वो मध्यम और उत्तम दुःख । ऐसे दुःख गर्भज मानव के लिए मानो । अनगिनत साल की आयुवाले युगलीया को विमध्यम तरह का दुःख हो । गिनत साल के आयु वाले मानव को उत्कृष्ट दुःख ।

[२५३] अब दुःख के अर्थवाले पर्याय शब्द कहा है । असुख, वेदना, व्याधि, दर्द, दुःख, अनिवृत्ति, अणराग (बेचैनी) अरति, कलेश आदि कई अेकार्थिक पर्याय शब्द दुःख के लिए इस्तेमाल किए जाते है ।

अध्ययन-२ उद्देशक-२

[२५४] शारीरिक और मानसिक ऐसे दो भेदवाले दुःख बताए, उसमें अब हे गौतम ! वो शारीरिक दुःख अति स्पष्टतया कहता हूँ । उसे तुम एकाग्रता से सुनो ।

[२५५-२६२] केशाग्र का लाख-क्रोडवां भाग हो केवल उतने हिस्से को छूए तो भी निर्दोषवृत्तिवाले कुंथुआ के जीव को इतना सारा दर्द हो कि यदि हमें कोई करवत से काटे या हृदय को या मस्तक को शस्त्र से भेदे तो हम थर-थर काँपे, वैसे कुंथुआ के सर्व अंग केवल छूने से पीड़ा हो उसे भीतर और बाहर भारी पीड़ा हो । उसके शरीर में कंपारी होने लगे, वो पराधीन वाचा रहित होने से वेदना नहीं बता शकते । लेकिन भारेला अग्नि सुलगे वैसे उसका मानसिक और शारीरिक दुःख अतिशय होता है । सोचते है कि यह क्या है ? मुझे यह भारी दर्द देनेवाला दुःख प्राप्त हुआ है, लम्बे उष्ण निसाँसे लेते है । यह दुःख का अन्त कब होगा ? इस दर्द से कब छूटकारा मिलेगा ? इस दुःख के संकट से मुक्त होने के लिए क्या कोशीश करूँ ? कहाँ भाग जाऊँ ? क्या करूँ कि जिससे दुःख दूर हो और सुख मिले ? क्या करूँ ? या क्या आच्छादन करू ? क्या पथ्य करू ? इस प्रकार तीन कक्षा के व्यापार की कारण से तीव्र महादुःख के संकट में आकर फँस गया हूँ, संख्याती आवलिका तक मैं कलेशानुभव भुगतु, समजता हूँ कि यह मुजे खुजली आई है, किसी भी तरह यह खुजली शान्त नहीं होगी।

[२६३-२६५] यह अध्यवसायवाला मानव अब क्या करता है वो हे गौतम ! तुम सुनो अब यदि उस कुंथु का जीव कहीं ओर चला गया न होता तो वो खुजली खुजलाते खुजलाते उस कुंथु के जीव को मार डालते है । या दीवार के साथ अपने शरीर को घिसे यानि कुंथु का जीव क्लेश पाए यावत् मौत हो, मरते हुए कुंथुआ पर खुजलाते हुए वो मानव निश्चय से अति रौद्र ध्यान में पड़ा है । ऐसा समजो यदि वो मानव आर्त्त और रोद्र के स्वरूप को जाननेवाला हो तो ऐसा खुजलानेवाला शुद्ध आर्तध्यान करनेवाला है ऐसे समजो ।

[२६६] उसमें ही रौद्रध्यान में वर्तता हो वो उत्कृष्ट नरकायुष बाँधे और आर्त ध्यानवाला दुर्भगपन, स्त्रीपन, नापुरुषपन और तिर्यंचपन उपार्जन करे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२६७-२६९] कुंथुआ के पाँव के स्पर्श से उत्पन्न हुई खुजली से मुक्त होने की अभिलाषावाला बेचैन मानव फिर जो अवस्था पाता है वो कहते है । लावण्य चला गया है ऐसा अतिदीन, शोकमग्न, उद्वेगवाला, शून्यमनवाला, त्रस्त, मूढ़, दुःख से परेशान, धीमे, लम्बे निःसासे, छोडनेवाला, चित्त से आकुल, अविश्रांत दुःख की कारण से अशुभ तिर्यंच और नारकी के उचित कर्म बाँधकर भव परम्परा में भ्रमण करेगा ।

[२७०] इस प्रकार कर्म को क्षयोपशम से कुंथुआ के निमित्त से उत्पन्न हुए दुःख को किसी तरह से आत्मा को मजबूत बनाकर यदि पलभर समभाव पाए और कुंथु जीव कोन खुजलाए वो महाक्लेश के पार हुआ समजो ।

[२७१-२७५] शरण रहित उस जीव को क्लेश न देकर सुखी किया, इसलिए अति हर्ष पाए । और स्वस्थ चित्तवाला होकर सोचे-माने कि यदि एक जीव को अभयदान दिया और फिर सोचने लगे कि अब मैं निवृत्ति-शांति प्राप्त हुआ । खुजलाने से उत्पन्न होनेवाला पाप कर्म दुःख को भी मैंने नष्ट किया । खुजलाने से और उस जीव की विराधना होने से मैं अपनेआप नहीं जान शकता कि मैं रौद्र ध्यान में जाता या आर्त ध्यान में जाता ? रौद्र और आर्त ध्यान से उस दुःख का वर्ग गुणांक करने से अनन्तानन्त दुःख तक पहुँच जाए । एक वक्त के भी आंतरा रहित सतत जैसा दिन को ऐसा रात को लगातार दुःख भुगतते हुए मुजे बीच में थोड़ी शान्ति भी न मिल शके, नरक और तिर्यंच गति में ऐसा दुःख सागरोपम के और असंख्यातकाल तक भुगतना पड़े और उस वक्त हृदय रसरूप होकर दुःखरूप अग्नि से जैसे पीगल जाता हो ऐसा अहेसास करे ।

[२७६] कुंथुआ को छूकर उपार्जन किए दुःख भुगतने के वक्त मन मे ऐसा सोचे कि यह दुःख न हो तो सुन्दर, लेकिन उस वक्त चिंतवन करना चाहिए कि इस कुंथु के स्पर्श से उत्पन्न होनेवाली खुजली का दुःख मुजे कौन-से हिसाब में गिने जाए ?

[२७७] कुंथुआ के स्पर्श का या खुजली का दुःख यहाँ केवल उपलक्षण से बताया। संसार में सबको दुःख तो प्रत्यक्ष ही है । उसका अहेसास होने के बावजूद भी कुछ प्राणी नहीं जानते इसलिए कहता हूँ ।

[२७८-२७९] दुसरे लेकिन महाघोर दुःख सर्व संसारी जीव को होते है । हे गौतम ! वो कितने दुःख यहाँ बँयान करना ? जन्म-जन्मान्तर में केवल वाचा से इतना ही बोले कि, "हण लो-मारो" उतने वचन मात्र का जो यहाँ फल और पापकर्म का उदय होता है वो कहता हूँ ।

[२८०-२८३] जहाँ-जहाँ वो उत्पन्न होता है वहाँ-वहाँ कई भव-वन में हंमेशा मरनेवाला, पीटनेवाला, कूटनेवाला हंमेशा भ्रमण करता है । जो किसी प्राणी के या कीड़े तितली आदि जीव के अंग उपांग आँख, कान, नासिका, कमर, हड्डिया आदि शरीर के अवयव को तोड दे, अगर तुडवा दे या ऐसा करनेवाले को अच्छा माने तो वो किए कर्म के उदय से घाणी-चक्की या वैसे यंत्र में जैसे तल पीले जाए वैसे वो भी चक या वैसे यंत्र में पीले जाएगा । इस तरह एक, दो, तीन, बीस, तीस या सो, हजार, लाख नहीं लेकिन संख्याता भव तक दुःख की परम्परा प्राप्त करेगा ।

[२८४-२८६] प्रमाद या अज्ञान से अगर इर्ष्या दोष से जो कोई असत्य वचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोलता है, सामनेवाले को अच्छे न लगनेवाले अनिष्ट वचन सुनाते है-कामदेव के अगर शठपन के अभिमान से दुराग्रह से बार-बार बोले, कहलाए या उसकी अनुमोदना करे, क्रोध से लालच से, भय से, हास्य से, असत्य, अप्रिय, अनिष्ट वचन बोले तो उस कर्म के उदय से गूँगा, बूरे मुँहवाला, मूरख, बिमार, निष्फल वचनवाला हर एक भव में अपनी ही ओर से लाघव-लघुपन, अच्छे व्यवहारवाला होने के बावजुद हर एक जगह बार-बार झूठे कलंक पानेवाला होता है ।

[२८७] जीवनिकाय के हित के लिए यथार्थ वचन बोला गया हो वो वचन निर्दोष है और शायद-असत्य हो तो भी असत्य का दोष नहीं लगता ।

[२८८] ईस प्रकार चोरी आदि के फल जानना, खेत आदि आरम्भ के कर्म करके प्राप्त धन की इस भव में या पूर्व जन्म में किए पाप से हानि होती दिखती है ।

अध्ययन-२ उद्देशक-३

[२८९-२९१] उस प्रकार मैथुन के दोष से स्थावरपन भुगतकर कुछ अनन्तकाल मानव योनि में आए । मानवपन में भी कुछ लोगों की होजरी मंद होने से मुश्किल से आहार पाचन हो । शायद थोड़ा ज्यादा आहार भोजन करे तो पेट में दर्द होता है । या तो पल-पल प्यास लगे, शायद रास्ते में उनकी मौत हो जाए । बोलना बहुत चाहे इसलिए कोई पास में न बिठाए, सुख से किसी स्थान पर स्थिर न बैठ शके, मुश्किल से बैठे, स्थान मिले तो भी कला-विज्ञान रहित होने से कहीं आवकार न मिले, पाप उदयवाला वो बेचारा निद्रा भी न पा शके ।

[२९२-२९३] इस प्रकार परिग्रह और आरम्भ के दोष से नरकायुष बाँधकर उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम के काल तक नारकी की तीव्र वेदना से पीड़ित है । चाहे कितना भी-तृप्त हो उतना भोजन करने के बावजूद भी संतोष नहीं होता, मुसाफिर को जिस तरह शान्ति नहीं मिलती उसी तरह यह बेचारा भोजन करने के बाद भी तृप्त नहीं होता ।

[२९४-२९५] क्रोधादिक कषाय के दोष से घो आशीविष दृष्टिविष सर्पपन पाकर, उसके बाद रौद्रध्यान करनेवाला मिथ्यादृष्टि होता है, मिथ्यादृष्टिवाले मानवपन में धूर्त, छल, प्रपंच, दंभ आदि लम्बे अरसे तक करके अपनी महत्ता लोगों को दिखाते हुए उस छल करते हुए उन्होंने तिर्यंचपन पाया ।

[२९६-२९८] यहाँ भी कईं व्याधि रोग, दुःख और शोक का भाजन बने । दरिद्रता और क्लेश से पराभवित होनेवाला कईं लोगों की नफरत पाता है । उसके कर्म के उदय के दोष से हंमेशा फिक्र से क्षीण होनेवाले देहवाला इर्षा-विषाद समान अग्नि ज्वाला से हंमेशा धणधण-जल रहे शरीरवाले होते है । ऐसे अज्ञान बाल-जीव कईं दुःख से हैरान-परेशान होते है । उसमें उनके दुश्चरित्र का ही दोष होता है । इसलिए वो यहाँ किस पर गुस्सा करे ?

[२९९-३००] इस तरह व्रत-नियम को तोड़ने से, शील के खंड़न से, असंयम में प्रवर्तन करने से, उत्सूत्रप्ररूपणा मिथ्यामार्ग की आचरणा-पवर्ताव से, कईं तरह की प्रभु की आज्ञा से विपरीत आचरण करने से, प्रमादाचरण सेवन से, कुछ मन से या कुछ वचन से या कुछ अकेली काया से करने से करवाने से और अनुमोदन करने से मन, वयन, काया के योग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रमादाचरण सेवन से-दोष लगता है ।

[३०१] यह लगनेवाले दोष की विधिवत् त्रिविध से निंदा, गर्हा, आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित् किए बिना दोष की शुद्धि नहीं होती ।

[३०२] शल्यसहित रहने से अनन्ता बार गर्भ में १, २, ३, ४, ५, ६ मास तक उसकी हड्डियाँ, हाथ, पाँव, मस्तक आकृति न बने, उसके पहले ही गर्भ के भीतर विलय हो जाता है यानि गर्भ पीगल जाता है ।

[३०३-३०६] मानव जन्म मिलने के बावजूद वह कोढ़-क्षय आदि व्याधिवाला बने, जिन्दा होने के बावजुद भी शरीर में कृमि हो । कईं मक्खियाँ शरीर पर बैठे, बणबणकर उड़े, हंमेशा शरीर के सभी अंग सड़ जाए, हड्डियाँ कमजोर बने आदि ऐसे दुःख से पराभव पानेवाला अति शर्मीला, बुरा, गर्हणीय कईं लोगों को उद्वेग करवानेवाला बने, नजदीकी रिश्तेदारों को और बन्धुओ को भी अनचाहा उद्वेग करवानेवाला होता है । ऐसे अध्यवसाय- परिणाम विशेष से अकाम-निर्जरा से वो भूत-पिशाचपन पाए । पूर्व भव के शल्य से उस तरह के अध्यवसाय विशेष से कईं भव के उपार्जन किए गए कर्म से दशों दिशा में दूर-दूर फेंका जाए कि जहाँ आहार और जल की प्राप्ति मुश्किल हो, साँस भी नहीं ली जाए, ऐसे विरान अरण्य में उत्पन्न हो ।

[३०७-३०९] या तो एक-दुसरे के अंग-उपांग के साथ जुड़े हुए हो, मोह-मदिरा में चकचूर बना, सूर्य कब उदय और अस्त होता है उसका जिसे पता नहीं चलता ऐसे पृथ्वी पर गोल कृमिपन से उत्पन्न होते है । कृमिपन की वहाँ भवदशा और कायदशा भुगतकर कभी भी मानवता पाते हुए लेकिन नपुंसक उत्पन्न होता है । नपुंसक होकर अति क्रूर-घोर-रौद्र परीणाम का वहन करते और उस परीणामरूप पवन से जलकर-गीरकर मर जाता है और मरकर वनस्पतिकाय में जन्म लेता है ।

[३१०-३१३] वनस्पतिपन पाकर पाँव ऊपर और मुँह नीचे रहे वैसे हालात में अनन्तकाल बीताते हुए बेइन्द्रियपन न पा शके वनस्पतिपन की भव और कायदशा भुगतकर बाद में एक, दो, तीन, चार, (पाँच) इन्द्रियपन पाए । पूर्व किए हुए पाप शल्य के दोष से तिर्यंचपन में उत्पन्न हो तो भी महामत्स्य, हिंसक पंछी, साँढ जैसे बैल, शेर आदि के भव पाए । वहाँ भी अति क्रूरतर परीणाम विशेष से माँसाहार, पंचेन्द्रिय जीव का वध आदि पापकर्म करने की कारण से गहरा उतरता जाए कि साँतवी नरकी तक भी पहुँच जाए ।

[३१४-३१५] वहाँ लम्बे अरसे तक उस तरह के महाघोर दुःख का अहेसास करके फिर से क्रुरतिर्यंच के भव में पैदा होकर क्रुर पापकर्म करके वापस नारकी में जाए इस तरह नरक और तिर्यंच गति के भव का बारी-बारी परावर्तन करते हुए कई तरह के महादुःख का अहेसास करते हुए वहाँ हुए के जो दुःख हे उनका वर्णम करोड़ साल बाद भी कहने के लिए शक्तिमान न हो शके ।

[३१६-३१८] उसके बाद गधे, ऊँट, बैल आदि के भव-भवान्तर करते हुए गाड़ी का बोज उठाना, भारवहन करना, कीलकयुक्त लकड़ी के मार का दर्द सहना, कीचड़ में पाँव फँस जाए वैसे हालात में बोज उठाना । गर्मी, ठंडी, बारीस के दुःख सहना, वध बँधन, अंकन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निशानी करने के लिए कान-नाक छेदन, निर्लांछन, ड़ाम, सहना, घुंसरी में जुड़कर साथ चलना, परोणी, चाबूक, अंकुश आदि से मार खाने से लगातार भयानक दुःख जैसा रात को ऐसा दिन में ऐसे सर्वकाल जीवन पर्यन्त दुःख सहना यह और उसके जैसे दुसरे कई दुःखसमूह को चीरकाल पर्यन्त महसूस करके दुःख से पीड़ित आर्तध्यान करते हुए महा मुश्किल से प्राण का त्याग करता है ।

[३१९-३२३] और फिर वैसे किसी शुभ अध्यवसाय विशेष से किसी भी तरह मनुष्यत्व पाए लेकिन अभी पूर्व किए गए शल्य के दोष से मनुष्य में आने के बाद भी जन्म से ही दरिद्र के वहाँ उत्पन्न होता है । वहाँ व्याधि, खस, खुजली आदि रोग से घैरे हुए रहता है और सब लोग उसे न देखने में कल्याण मानते है । यहाँ लोगों की लक्ष्मी हड़प लेने की दृढ़ मनोभावना से दिल में जलता रहता है । जन्म सफल किए बिना वापस मर जाए अध्यवसाय विशेष को आश्रित करके वैसे पृथ्वी आदि स्थावरकाय में घुमे या तो दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रियवाले भव में उस तरह का अति रौद्र घोर भयानक महादुःख भुगतते हुए चारों गति समान संसार अटवी में दुःसह दर्द सहते हुए (हे गौतम !) वो जीव सर्व योनि में भव और काय दशा खपाते हुए घुमता रहता है ।

[३२४] जो आगे एक बार पूर्व भव में शल्य या पाप दोष का सेवन किया था, उस कारण से चारो गति में भ्रमण करते हुए और हर एक भव में जन्मधारण, अनेक व्याधि, दर्द, रोग, शोक, दरिद्रता, क्लेश, झूठे कलंक पाना, गर्भावास आदि के दुःख समान अग्नि में जलनेवाला बेचारा "क्या नहीं पा शकता" वो बताता है ।...निर्वाण गमन उचित आनन्द महोत्सव स्वरूप सामर्थ्ययोग, मोक्ष दिलानेवाला अट्ठारह हजार शीलांग रथ और सर्व पापराशि एवं आँठ तरह के कर्म के विनाश के लिए समर्थ ऐसे अहिंसा के लक्षणवाला वीतराग सर्वज्ञकथित धर्म और बोधि-सम्यक्त्व नहीं पा शकता ।

[३२५-३२७] परिणाम विशेष को आश्रित करके कोइ आत्मा लाख पुद्गल परिवर्तन के लम्बे अरसे के बाद महा मुसीबत से बोधि प्राप्त करे । ऐसा अति दुर्लभ सर्व दुःख का क्षय करनेवाला बोधि रत्न प्राप्त करके जो कोई प्रमाद करे वो फिर से इस तरह के पहले बताए उस योनि में उसी क्रम में उसी मार्ग में जाते है और वैसे ही दुःख पाते है ।

[३२८-३२९] उस प्रकर सर्व पुद्गल के सर्व पर्याय सर्व वणान्तर सर्व गंधरूप से, रसरूप से, स्पर्शपन से, संस्थानपन से अपने शरीररूप में, परीणाम पाए, भवस्थिति और कायस्थिति के सर्वभाव लोक के लिए परिणामान्तर पाए, उतने पुद्गल परावर्तन काल तक बोधि पाए या न पाए ।

[३३०-३३१] इस प्रकार व्रत-नियम का भंग करे, व्रत-नियम तोड़नेवाले की उपेक्षा करे, उसे स्थिर न करे, शील-खंड़न करे, अगर शील खंड़न करनेवाले की उपेक्षा करे, वो संयम विराधना करे या संयम विराधककी उपेक्षा करे, उन्मार्ग का प्रवर्तन करे और ऐसा करते हुए न रोके, उत्सूत्र का आचरण करे और सामर्थ्य होते हुए भी उसे न रोके या उपेक्षा करे, वो सब आगे वर्णित क्रम से चारों गतिरूप संसार मैं परिभ्रमण करता है ।

[३३२-३३३] सामनेवाला आदमी क्रोधित बने या तोषायमान बने, झहर खाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरण की बातें करे या भय बताता हो तो भी हंमेशा स्वपक्ष को गुण करनेवाला खुद को या दुसरों का हित हो वैसी ही भाषा बोलनी इस तरह हितकारी वचन बोलनेवाला बोध पाए या पाए हुए बोधि को निर्मल करता है ।

[३३४-३३५] खुले आश्रव द्वारवाले जीव प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और रस से कर्म की चिकनाईवाले होते है । वैसी आत्मा कर्म का क्षय या निर्जरा कर शके इस तरह घोर आँठ कर्म में मल में फँसे हुए सर्व जीव को दुःख से छूटकारा किस तरह मिले ? पूर्व दुष्कृत्य पाप कर्म किए हो, उस पाप का प्रतिक्रमण न किया हो ऐसे खुद के किए हुए कर्म भुगते बिना अघोर तप का सेवन किए बिना उस कर्म से मुक्त नहीं हो शकते ।

[३३६-३३७] सिद्धात्मा, अयोगी और शैलेशीकरण में रहे सिवाय तमाम संसारी आत्मा हरएक वक्त कर्म बाँधते है । कर्मबँध बिना कोई जीव नहीं है । शुभ अध्यवसाय से शुभ कर्म, अशुभ अध्यवसाय से अशुभ कर्मबँध, तीव्रतर परीणाम से तीव्रतर रसस्थितिवाले और मंद परीणाम से मंदरस और अल्प स्थितिवाले कर्म उपार्जित करे ।

[३३८] सर्व पापकर्म इकट्ठे करने से जितना रासिढ़ग हो, उसे असंख्यात गुना करने से जितना कर्म का परिमाण हो उतने कर्म, तप, संयम, चारित्र का खंड़न और विराधना करने से और उत्सूत्र मार्ग की प्ररूपणा, उत्सूत्र मार्ग की आचरणा और उसकी उपासना करने से उपार्जन होता है ।

[३३९] यदि सर्व दान आदि स्व-पर हित के लिए आचरण किया जाए तो अ-परिमित महा, ऊँचे, भारी, आंतरा रहित गाढ पापकर्म का ढ़ग भी क्षय हो जाए । और संयम-तप के सेवन से दीर्धकाल के सर्व पापकर्म का विनाश हो जाता है ।

[३४०-३४४] यदि सम्यक्त्व की निर्मलता सहित आनेवाले आश्रवद्वार बंध करके जब जहाँ अप्रमादी वने तव वहाँ वँध अल्प करे और काफी निर्जरा करे, आश्रवद्वार बंध करके जब प्रभु की आज्ञा का खंड़न न करे और ज्ञान-दर्शन चारित्र से दृढ़ वने तब पहले के बाँधे हुए सर्व कर्म खपा दे और अल्पस्थितिवाले कर्म वाँधे, उदय न हुए हो वैसे वैसे कर्म भी घोर उपसर्ग परिषह सहकर उदीरणा करके उसका क्षय करे और कर्म पर जय पाए । इस प्रकार आश्रव की कारण को रोककर सर्व आशातना का त्याग करके स्वाध्याय ध्यान योग में और फिर धीर वीर ऐसे तप में लीन बने, सम्पूर्ण संयम मन, वचन, काया से पालन करे तब उत्कृष्ट बंध नहीं करता और अनन्त गुण कर्म की निर्जरा करता है ।

[३४५-३४८] सर्व आवश्यक क्रिया में उद्यमवन्त बने हुए, प्रमाद, विषय, राग, कषाय आदि के आलम्बन रहित बाह्य अभ्यंन्तर सर्व संग से मुक्त, रागद्वेष मोह सहित, नियाणा रहित बने, विषय के राग से निवृत्त बने, गर्भ परम्परा से भय लगे, आश्रव द्वार का रोध करके क्षमादि यतिधर्म और यमनियमादि में रहा हो, उस शुक्ल ध्यान की श्रेणी में आरोहण करके शैलेषीकरण प्राप्त करता है, तब लम्बे अरसे से बाँधा हुआ समग्र कर्म जलाकर भस्म करता है, नया अल्प कर्म भी नहीं बाँधता । ध्यानयोग की अग्नि में पाँच ह्रस्वाक्षर बोले जाए उतने कम समय में भव तक टिकनेवाले समग्र कर्म को जलाकर राख कर देता है ।

[३४९-३५०] इस प्रकार जीव के वीर्य और सामर्थ्य योग से परम्परा से कर्म कलंक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कवच से सर्वथा मुक्त होनेवाले जीव एक समय में शाश्वत, पीडा रहित रोग, बुढ़ापा, मरण से रहित, जिसमें किसी दिन दुःख या दारिद्र न देखा जाता हो । हंमेशा आनन्द का अहेसास हो वैसे सुखवाला शिवालय-मोक्षस्थान पाता है ।

[३५१-३५३] हे गौतम ! ऐसे जीव भी होते है कि जो आस्रव द्वार को बन्ध करके क्षमादि दशविध संयम स्थान आदि पाया हुआ हो तो भी दुःख मिश्रित सुख पाता है । इसलिए जब तक समग्र आँठ कर्म घोर तप और संयम से निर्मूल-सर्वथा जलाए नहीं । तब तक जीव को सपने में भी सुख नहीं हो शकता । इस जगत में सर्व जीव को पूरी विश्रान्ति बिना दुःख लगातार भुगतना होता है । एक समय भी ऐसा नहीं कि जिसमें इस जीव ने आया हुआ दुःख समता से सहा हो ।

[३५४-३५५] कुंथुआ के जीव का शरीर कितना ? हे गौतम वो तु "यदि" सोचे छोटे से छोटा, उससे भी छोटा उससे भी काफी अल्प उसमें कुंथु । इसका पाँव कितना ? पाँव की धार तो केवल एक छोटे से छोटा हिस्सा, उसका हिस्सा भी यदि हमारे शरीर को छू ले या किसी के शरीर पर चले तो भी हमारे दुःख की कारण न बने । लाख कुंथुआ के शरीर को इकट्ठे करके छोटे तराजु से तोल-नाप करके उसका भी एक पल (मिलिग्राम) न बने, तो एक कुंथु का शरीर कितना हो ? ऐसे छोटे एक कुंथुआ के पाँव की धार के हिस्से के स्पर्श को सह नहीं शकते और पादाग्र हिस्से को छूने से आगे कहे अनुसार वैसी दशा जीव सहते है । तो हे गौतम ! वैसे दुःख के समय कैसी भावना रखनी वो सुन ।

[३५६-३६५] कुंथु समान छोटा जानवर मेरे मलीन शरीर पर भ्रमण करे, संचार करे, चले तो भी उसको खुजलाकर नष्ट न करे लेकिन रक्षण करे यह हंमेशां यहाँ नहीं रहेगा । शायद दुसरे ही पल में चला जाए, दुसरे पल में नहीं रहेगा । शायद दुसरे पल में न चला जाए तो हे गौतम ! इस प्रकार भावना रखनी या यह कुंथु राग से नहीं बँसा या मुज पर उसे द्वेष नहीं हुआ, क्रोध से, मत्सर से, इर्ष्या से, बैर से मुजे डँसता नहीं या क्रीड़ा करने की इच्छा से मुजे डँसता नहीं कुंथु वैर भाव से किसी के शरीर पर नहीं चड़ता वो तो किसी के भी शरीर पर ऐसे ही चड़ जाता है । विकलेन्द्रिय हो, बच्चा हो, दुसरे किसी जानवर हो, या जलता हुआ अग्नि और वावड़ी के पानी में भी प्रवेश करे । वो कभी भी यह न सोचे कि यह मेरे पूर्व का बैरी है या मेरा रिश्तेदार है इसलिए आत्मा को ऐसा सोचना चाहिए कि इसमें मेरी आशातना-पाप का उदय हुआ है ।

ऐसे जीव के प्रति मैंने कौन-सी अशाता का दुःख किया होगा पूर्वभव में किए गए पाप कर्म के फल भुगतने का या उस पाप पुंज का अन्त लाने के लिए मेरे आत्मा के हित के लिए यह कौन-सा तिर्च्छी, उर्ध्व, अधो दिशा और विदिशा में मेरे शरीर पर इधर-उधर घुमता है । इस दुःख को समभाव से सहन करूँगा तो मेरे पापकर्म का अन्त होगा शायद कुंथु को शरीर पर घुमते-घुमते महावायरा की झपट लगी हो तो उस कुंथु को शारीरिक दुस्सह दुःख और रौद्र और आर्तध्यान का महादुःख वृद्धि पाए । ऐसे वक्त में सोचो कि इस कुंथुआ के स्पर्श से तुजे थोड़ा भी दुःख हुआ है वो भी तुम सह नहीं शकते और आर्त रौद्र ध्यान में चला जाता है तो उस दुःख की कारण से तू शल्य का आरम्भ करके मनोयोग, वचनयोग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काययोग, समय, आवलिका, मुहूर्त तक शल्यवाला होकर उसका फल तुम्हें दीर्घकाल तक सहना पड़ेगा उस वक्त वैसे दुःख को तू किस तरह सह शकेगा ?

[३६६] वो दुःख कैसे होगे ? चार गति और ८४ लाख योनि स्वरूप कई भव और गर्भावास सहना पड़ेगा, जिसमें रात-दिन के प्रत्येक समय सतत घोर, प्रचंड़ महा भयानक दुःख सहना पड़ेगा - हाहा-अरेरे - मर गया रे ऐसे आक्रन्द करना पड़ेगा ।

[३६७] नारक और तिर्यंच गति में कोइ रक्षा करनेवाला या शरणभूत नहीं होते । बेचारे अकेले-अपने शरीर को किसी सहाय करनेवाला न मिले, वहाँ कटु और कठिन विरस पाप के फल भुगतना पड़े ।

[३६८] नारकी तलवार की धार समान पत्रवाले पेड़ के बन में छाँव की इच्छा से जाए तो पवन से पत्ते शरीर पर भी पड़े यानि शरीर के टुकड़े हो । लहूँ, परु, चरबी केशवाले दुर्गंधयुक्त प्रवाहवाली वैतरणी नदी में डूबना, यंत्र में पीलना, करवत से कटना । कंटकयुक्त शाल्मली पेड़ के साथ आलिंगन, कुंभी में पकाना, कौओ आदि पंछी की चौंच की मार सहना, शेर आदि जानवर के चबाने के दुःख और वैसे कई दुःख नरकगति में पराधीन होकर भुगतना पड़े ।

[३६९-३७०] तिर्यंच को नाक-कान वींधना, वध, बँधन, आक्रंदन करनेवाले प्राणी के शरीर में से माँस काटे, चमड़ी उतारे, हल-गाड़ी को खींचना, अति बोझ वहन करने के लिए, धारवाली परोणी भोंकना, भूख प्यास का, लोह की कठिन नाल, पाँव में खीली लगाई है, बलात्कार से बाँधकर शस्त्र से अग्नि के ड़ाम देकर अंकित करे । जलन उत्पन्न करनेवाली चीज के अंजन आँख में लगाए, आदि पराधीनपन के निर्दयता से कई दुःख तिर्यंच के भव में भुगतना पड़े ।

[३७१] कुंथुआ के पाँव के स्पर्श से उत्पन्न होनेवाली खुजली का दुःख तू यहाँ सहने के लिए समर्थ नहीं बन शकता तो फिर उपर कहे गए नरक तिर्यंचगति के अति भयानक महादुःख आएंगे तब उसका निस्तार-पार किस तरह पाएंगे ?

[३७२-३७४] नारकी और तिर्यंच के दुःख और कुंथुआ के पाँव के स्पर्श का दुःख वो दोनों दुःख का अंतर कितना है ? तो कहते है मेरु पर्वत के परमाणु को अनन्त गुने किए जाए तो एक परमाणु जितना भी कुंथु के पाँव के स्पर्श का दुःख नहीं है । यह जीव भव के भीतर लम्बे अरसे से सुख की आकांक्षा कर रहे है । उसमें भी उसे दुःख की प्राप्ति होती है । और फिर भूतकाल के दुःख का स्मरण करने से वो अति दुःखी हो जाता है । इस प्रकार कई दुःख के संकट में रहे लाख आपदा से भरा ऐसे संसार में जीव बँसा है । उसमें अचानक मध्यबिन्दु प्राप्त हो जाए तो मिला हुआ सुख कोई न जाने दे, लेकिन...

[३७५] ...जो आत्मा पथ्य और अपथ्य, कार्य और अकार्य, हित और अहित सेव्य-असेव्य और आचरणीय - अनाचारणीय के फर्क का विवेक नहीं करता (धर्म-अधर्म को नहीं जानता) वो बेचारे आत्मा की भावि में कैसी स्थिति हो ?

[३७६] इसलिए यह सर्व हकीकत सुनकर दुःख का अन्त करनेवाले को स्त्री, परिग्रह और आरम्भ का त्याग करके संयम और तप की आसेवना करनी चाहिए ।

[३७७-३८४] अलग आसन पर बैठी हुई, शयन में सोते हुई, मुँह फिराकर, अलंकार पहने हो या न पहने हो, प्रत्यक्ष न हो लेकिन तस्वीर में बताई हो उनकों भी प्रमाद से देखे तो दुर्बल मानव को आकर्षण करते है । यानि देखकर राग हुए विना नहीं ग्हता । इसलिए गर्मी वक्त के मध्याह के सूर्य को देखकर जिस तरह दृष्टि बंध हो जाए, वैसे स्त्री को चित्रामणवाली दीवार या अच्छी अलंकृत हुइ स्त्री को देखकर तुरन्त नजर हटा लेना । कहा है कि जिसके हाथ पाँव कट गए हो, कान, नाक, होठ छेदन हुए हो, कोढ़ रोग के व्याधि से सड़ गई हो । वैसी स्त्री को भी ब्रह्मचारी पुरुष काफी दूर से त्याग करे । बुढ़ी भार्या या जिसके पाँच अंग में से शृंगार टपक रहा हो वैसी यौवना, बड़ी उम्र की कँवारी कन्या, परदेश गई हुई पतिवाली, बालविधवा और अंतःपुर की स्त्री स्वमत्त-परमत के पाखंड़ धर्म को कहनेवाली दीक्षित साध्वी, वेश्या या नपुंसक ऐसे विजातीय मानव हो, उतना ही नहीं लेकिन तिर्यंच, कुत्ती, भेंस, गाय, गधी, खचरी, बोकड़ी, घेटी, पत्थर की बनी स्त्री की मूरत हो, व्यभिचारी स्त्री, जन्म से बिमार स्त्री । इस तरह से परिचित हो या अनजान स्त्री हो, चाहे जैसी भी हो और रात को आती जाती है, दिन में भी एकान्त जगह में रहती है वैसे निवास स्थान को, उपाश्रय को, वसति को सर्व उपाय से अत्यंत रूप से अति दूर से ब्रह्मचारी पुरुष त्याग करे ।

[३८५] हे गौतम ! उनके साथ मार्ग में सहवास-संलाप-बातचीत न करना, उसके सिवा बाकी स्त्रीयों के साथ अर्धक्षण भी वार्तालाप न करना । साथ मत चलना ।

[३८६] हे भगवंत ! क्या स्त्री की ओर सर्वथा नजर ही न करना ? हे गौतम ! ना, स्त्री की ओर नजर नहीं करनी या नहीं देखना, हे भगवंत ! पहचानवाली हो, वस्त्रालंकार से विभूषित हो वैसी स्त्री को न देखना या वस्त्रालंकार रहित हो उसे न देखना ? हे गौतम ! दोनो तरह की स्त्री को मत देखना । हे भगवंत ! क्या स्त्रीयों के साथ आलाप-संलाप भी न करे ? हे गौतम ! नहीं, स्त्री के साथ वार्तालाप भी मत करना । हे भगवंत ! स्त्री के साथ अर्धक्षण भी संवास न करना ? हे गौतम ! स्त्री के साथ क्षणार्ध भी संवास मत करो । हे भगवंत ! क्या रास्ते में स्त्री के साथ चल शकते है ? –हे गौतम ! एक ब्रह्मचारी पुरुष अकेली स्त्री के साथ मार्ग में नहीं चल शकता ।

[३८७] हे भगवंत ! आप ऐसा क्या कहते हो कि–स्त्री के मर्म अंग-उपांग की ओर नजर न करना, उसके साथ बात न करना, उसके साथ वास न करना, उसके साथ मार्ग में अकेले न चलना ? हे गौतम ! सभी स्त्री सर्व तरह से अति उत्कट मद और विषयाभिलाष के राग से उत्तेजित होती है । स्वभाव से उसका कामाग्नि हंमेशा सुलगता रहता है । विषय की ओर उसका चंचल चित्त दौड़ता रहता है । उसके हृदय में हंमेशा कामाग्नि दर्द ही देता है, सर्वदिशा और विदिशा में वो विषय की प्रार्थना करता है । इसलिए सर्व तरह से पुरुष का संकल्प और अभिलाष करनेवाली होती है ।

उस कारण से जहाँ सुन्दर कंठ से कोई संगीत गाए तो वो शायद मनोहर रूपवाला या बदसूरत हो, तरो-ताजा जवानीवाला या बीती हुई जवानीवाला हो । पहले देखा हुआ हो या अनदेखा हो । ऋद्धिवाला या रहित हो, नई समृद्धि पाई हो या न पाई हो, कामभोग से ऊँब गया हो या विषय पाने की अभिलाषावाला हो, बुढ्ढे देहवाला या मजबूत शरीरवाला हो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासत्त्वशाली हों या हीन सत्त्ववाला हो, महापराक्रमी हो या कायर हो, श्रमण हो या गृहस्थ हो, ब्राह्मन हो या निन्दित, अधम-नीच जातिवाला हो वहाँ अपनी श्रोत्रेन्द्रिय के उपयोग से, चक्षु-इन्द्रिय के उपयोग से, रसनेन्द्रिय के उपयोग से, घ्राणेन्द्रिय के उपयोग से, स्पर्शेन्द्रिय के उपयोग से तुरन्त ही विषय प्राप्ति के लिए, तर्क, वितर्क, विचार और एकाग्र चितवाली बनेगी। एकाग्र चित्तवाली होकर उसका चित्त क्षोभायमान होगा । और फिर चित्त में मुजे यह मिलेगा या नहीं ? ऐसी द्वीधा में रहेंगे । उसके बाद शरीर में पसीना छूटेगा । उसके बाद आलोक-परलोक में ऐसी अशुभ सोच से नुकशान होगा । उसके विपाक मुझे कम-ज्यादा प्रमाण में भुगतने पड़ेगे वो बात उस वक्त उसके दिमाग से नीकल जाए तब लज्जा, भय, अपयश, अपकीर्ति, मर्यादा का त्याग करके ऊँचे स्थान से नीचे स्थान में बैठ जाते है । जितने में ऊँचे स्थान से नीचे स्थान पर परीणाम की अपेक्षा से हलके परीणामवाली उस स्त्री की आत्मा होती है । उतने में असंख्यात समय और आवलिका बीत जाते है ।

जितने में असंख्यात समय और आवलिका चली जाती है । उतने में प्रथम समय से जो कर्म की दशा होती है । और दुसरे समय तीसरे समय उस प्रकार प्रत्येक समय यावत् संख्याता समय असंख्यात समय, अनन्त समय क्रमशः पसार होता है । तब आगे के समय पर संख्यातगुण, असंख्यातगुण, अनन्तगुण कर्म की दशा इकट्ठी करता है । यावत् असंख्यात उत्सर्पिणी - अवसर्पिणी पुरी हो तब तक नारकी और तिर्यंच दोनों गति के लिए उत्कृष्ट कर्म स्थिति उपार्जन करे । इस प्रकार स्त्री विषयक संकल्पादिक योग से करोड़ लाख उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तक भुगतना पड़े वैसे नरक तिर्यंच के उचित कर्मदशा उपार्जन करे ।

वहाँ से नीकलने के बाद भवान्तर में कैसे हालात सहने पड़ते है वो बताते है कि स्त्री की ओर दृष्टि या कामराग करने से उस पाप की परम्परा से कद्रुपता, श्याम देहवाला, तेज, कान्ति रहित, लावण्य और शोभा रहित, नष्ट होनेवाले तेज और सौभाग्यवाला और फिर उसे देखकर दुसरे उद्वेग पाए वैसे शरीरवाला होता है उसकी स्पर्शइन्द्रिय सीदती है । उसके बाद उसके नेत्र-अंग उपांग देखने के लिए रागवाले और अरुण-लाल वर्णवाले होते है । विजातीय की ओर नेत्र रागवाले होते है । जितने में नयनयुगल कामराग के लिए अरुणवर्णवाले मदपूर्ण बनते है ।

काम के रागांधपन से अति महान भारी दोष और ब्रह्मव्रत भंग, नियमभंग को नहीं गिनते, अति महान घोर पाप कर्म के आचरण को, शीलखंड़न को नही गिनते अति महान सबसे भारी पापकर्म के आचरण, संयम विराधना की परवा नहीं करते । घोर अंधेरे समान नारकी रूप परलोक के भय को नहीं गिनते । आत्मा को भूल जाते है, अपने कर्म और गुणस्थानक को नहीं गिनते । देव और असुर सहित समग्र जगत को जिसकी आज्ञा अलंघनीय है उसकी भी परवा नहीं । ८४ लाख योनि में लाख बार परीवर्तन और गर्भ की परम्परा अनन्त बार करनी पड़ेगी । वो बात भी भूल जाते है । अर्ध पलक जितना काल भी जिसमें सुख नहीं है । और चारों गति में एकान्त दुःख है । यह जो देखनेलायक है वो नहीं दिखते और न देखनेलायक देखते है ।

सर्वजन समुदाय इकट्ठे हुए है । उनके बीच बैठी हुई या खड़ी होनेवाली, भूमि पर लैटी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुई - सोई हुई या चलती हुई, सर्व लोग से दिखनेवाली झगमग करते सूर्य की किरणों के समूह से दश दिशामें तेज राशि फैल गई है तो भी जैसे खुद ऐसा मानती हो कि सर्व दिशा में शून्य अंधेरा ही है । रागान्ध और कामान्ध बनी खुद जैसे ऐसा न मानती हो कि जैसे कोई देखता या जानता नहीं । जब कि वो रागांध हुई अति महान भारी दोषवाले व्रतभंग, शीलखंड़न, संयम विराधना, परलोक भय, आज्ञा का भंग, आज्ञा का अतिक्रमण, संसार में अनन्त काल तक भ्रमण करने समान भय नहीं देखती या परवा नहीं करती । न देखनेलायक देखती है । सब लोगों को प्रकट दिखनेवाला सूर्य हाजिर होने के बाद भी सर्व दिशा में जैसे अंधेरा फैला हो ऐसा मानते है ।

जिसका सौभाग्यातिशय सर्वथा ऊड़ गया है, मुँह लटकानेवाली, लालीमावाली थी वो फीके-मुर्झा गए, दुर्दशनीय नहीं देखनेलायक, वदनकमलवाली होती है । उस वक्त काफी तड़पती थी । और फिर उसके कमलपुर, नितम्ब, वत्सप्रदेश, जघन, बाहुलतिका, वक्षस्थल, कंठप्रदेश धीरे-धीरे स्फुरायमान होते है । उसके बाद गुप्त और प्रकट अंग विकारवाले बना देते है । उसके अंग सर्व उपांग कामदेव के तीर से भेदित होकर जर्जरित होते है । पूरे देह पर का रोमांच खड़ा होता है, जितने में मदन के तीर से भेदित होकर शरीर जर्जरित होता है । उतने में शरीर में रही धातु कुछ चलायमान होती है उसके बाद शरीर पुद्गल नितम्ब साँथल बाहुलतिका कामदेव के तीर से पीड़ित होती है । शरीर पर का काबू स्वाधीन नहीं रहता । नितम्ब और शरीर को महा मुसीबत से धारण कर शकते है । और ऐसा करते हुए अपने शरीर अवस्था की दशा खुद पहचान या समज नहीं शकती । वैसी अवस्था पाने के बाद बारह समय में कुछ शरीर से निश्चेष्ट दशा हो जाती है । साँस प्रतिस्खलित होती है । फिर मंद-मंद साँस ग्रहण करते है ।

इस प्रकार कही हुई इतनी विचित्र तरह की अवस्था काम की चेष्टा पाती है । और वो जैसे किसी पुरुष या स्त्री को ग्रह का वलगाड़ चिपका हो । होंशियार पिशाच ने शरीर में प्रवेश किया हो तब चाहे कुछ भी बोला करे । इधर-ऊधर का मन चाहे ऐसा बकवास करे उसकी तरह कामपिशाच या ग्रस्त होनेवाली स्त्री भी कामावस्था में चाहे वैसे असंबद्ध वचन बोले कामसमुद्र के विषमावर्त में भटकती, मोह उत्पन्न करनेवाले काम के वचन से देखे हुए या अनदेखे मनोहर रुपवाले या बगैर रूपवाले, जवान या बुढ्ढे पुरुष की खीलती जवानीवाली या महा पराक्रमी हो वैसे को हीन सत्त्ववाले या सत्त्पुरुप को या दुसरे किसी भी निन्दित अधम हीन जातिवाले पुरुष को काम के अभिप्राय से भय पानेवाली सिकुड़कर आमंत्रित करके बुलाती है ऐसे संख्याता भेदवाले रागयुक्त स्वर और कटाक्षवाली नजर से उस पुरुष को बुलाती है, उसका राग से निरीक्षण करती है ।

उस वक्त नारकी और तिर्यंच दोनों गति को उचित असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी करोड़ लाख साल या कालचक्र प्रमाण की उत्कृष्ट-दशावाले पाप कर्म उपार्जन करे यानि कर्म बाँधे, लेकिन कर्मबँध स्पृष्ट न करे । अब वो जिस वक्त पुरुष के शरीर के अवयव को छूने के लिए सन्मुख हो, लेकिन अभी स्पर्श नहीं किया उस वक्त कर्म की दशा बद्ध स्पृष्ट करे। लेकिन बद्ध स्पृष्ट निकाचित न करे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३८८] हे गौतम ! अब ऐसे वक्त में जो पुरुष संयोग के आधीन होकर उस स्त्री का योग करे और स्त्री के आधीन होकर काम सेवन करे वो अधन्य है । संयोग करना या न करना पुरुष आधीन है । इसलिए जो उत्तम पुरुष संयोग को आधीन न हो वो धन्य है ।

[३८९] हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहलाता है कि जो पुरुष उस स्त्री के साथ योग न करे वो धन्य और योग करे वो अधन्य ? हे गौतम ! बद्धस्पृष्ट-कर्म की अवस्था तक पहुँची हुई वो पापी स्त्री पुरुष का साथ प्राप्त हो तो वो कर्म निकाचितपन में बदले, यानि बद्धस्पृष्ट निकाचित कर्म से बेचारी उस तरह के अध्यवसाय पाकर उसकी आत्मा पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय स्थावरपन में अनन्तकाल तक परिभ्रमण करे लेकिन दो इन्द्रियपन न पाए । उस प्रकार महा मुश्किल से कईं क्लेश सहकर अनन्ता काल तक एकेन्द्रियपन की भवदशा भुगतकर एकेन्द्रियपन का कर्म खपाते है और कर्म करके दो-तीन और चार इन्द्रियपन कलेश से भुगतकर पंचेन्द्रिय में मनुष्यत्व में शायद आ जाए तो भी बदनसीब स्त्रीरूप को प्राप्त करनेवाला होता है ।

नपुंसकरूप से उत्पन्न हो । और फिर तिर्यंचपन में बेशूमार वेदना भुगतना पड़ता । हंमेशा हाहाकार करनेवाले जहाँ कोई शरणभूत नहीं होता । सपने में भी सुख की छाँव जिस गति में देखने को नहीं मिलता । हंमेशा संताप भुगतते हुए और उद्वेग पानेवाले रिश्तेदार स्वजन बँधु आदि से रहित जन्मयपर्यन्त कुत्सनीय, गर्हणीय, निन्दनीय, तिरस्करणीय ऐसे कर्म करके कईं लोगों की तारीफ करके सेंकड़ों मीठे वचन से बिनती करके उन लोगों के पराभव के वचन सुनकर मुश्किल से उदर पोषण करते करते चारों गति में भटकना पड़ता है ।

हे गौतम ! दुसरी बात यह समजो कि जिस पापी स्त्री ने बद्ध, स्पृष्ट और निकाचित कर्म दशा उपार्जन करके उस स्त्री की अभिलाषा करनेवाला पुरुष भी उतनी ही नहीं लेकिन उसके हालात से भी उत्कृष्ट या उत्कृष्टतम ऐसी अनन्त कर्मदशा उपार्जन करे और एसे बद्ध स्पृष्ट और निकाचित करे, इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि जो पुरुष उसका संग नहीं करता वो धन्य है और संग करता है वो अधन्य है ।

[३९०] हे भगवंत ! कितने तरह के पुरुष है जिससे आप इस प्रकार कहते हो ?

हे गौतम ! पुरुष छ तरह के बताए है वो इस प्रकार १. अधमाधम, २. अधम, ३. विमध्यम, ४. उत्तम, ५. उत्तमोत्तम ६. सर्वोत्तम ।

[३९१] उसमें जिसे सर्वोत्तम पुरुष कहा, वो जिसके पाँव अंग उत्तम रूप लावण्य युक्त हो । नवयौवनवय पाया हो । उत्तम रूप लावण्य कान्ति युक्त ऐसी स्त्री मजबूरी से भी अपने गोद में सो साल तक बिठाकर कामचेष्टा करे तो भी वो पुरुष उस स्त्री की अभिलाषा न करे । और फिर जो उत्तमोत्तम नाम पुरुष बताए वो खुद स्त्री की अभिलाषा न करे । लेकिन शायद मुट्ठी के तीसरे हिस्से जितना अल्प मन से केवल एक समय की अभिलाषा करे लेकिन दुसरे ही पल मन को रोककर अपने आत्मा को निन्दकर गर्हणा करे, लेकिन दुसरी बार उस जन्म में स्त्री की मन से भी अभिलाषा न करे ।

[३९२] और फिर जो उत्तमोत्तम तरह के पुरुष हो वो अभिलाषा करनेवाली स्त्री को देखकर पलभर या मुहूर्त्त तक देखकर मन से उसकी अभिलाषा करे, लेकिन पहोर या अर्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहोर तक उस स्त्री के साथ अनुचित्त कर्म का सेवन न करे ।

[३९३] यदि वो पुरुष ब्रह्मचारी या अभिग्रह प्रत्याख्यान किया हो । या ब्रह्मचारी न हो या अभिग्रह प्रत्याख्यान किए न हो तो अपनी पत्नी के विषय में भजना-विकल्प समजने के कामभोग में तीव्र अभिलाषावाला न हो । हे गौतम ! इस पुरुष को कर्म का बँध हो लेकिन वो अनन्त संसार में घुमने के उचित कर्म न बाँधे ।

[३९४] और फिर जो विमध्यम तरह के पुरुष हो वो अपनी पत्नी के साथ इस प्रकार कर्म का सेवन करे लेकिन पराई स्त्री के साथ वैसे अनुचित्त कर्म का सेवन न करे। लेकिन पराई स्त्री के साथ ऐसा पुरुष यदि पीछे से उग्र ब्रह्मचारी न हो तो अध्यवसाय विशेष अनन्त संसारी बने या न बने । अनन्त संसारी कौन न बने ? तो कहते है कि उस तरह का भव्य आत्मा जीवादिक नौ तत्त्व को जाननेवाला हुआ हो । आगम आदि शस्त्र के मुताबिक उत्तम साधु भगवन्त को धर्म में उपकार करनेवाला, आहारादिक का दान देनेवाला, दान, शील, तप और भावना समान चार तरह के धर्म का यथाशक्ति अनुष्ठान करता हो । किसी भी तरह चाहे कैसी भी मुसीबत में भी ग्रहण किए गए नियम और व्रत का भंग न करे तो शाता भुगतते हुए परम्परा में उत्तम मानवता या उत्तम देवपन और फिर सम्यक्त्व से प्रतिपतित हुए बिना निसर्ग सम्यकत्व हो या—अभिगमिक सम्यकत्व द्वारा उत्तरोत्तर अट्ठारह हजार शीलांग धारण करनेवाला होकर आश्रवद्वार बन्ध करके कर्मरज और पापमल रहित होकर पापकर्म खपाकर सिद्धगति पाए ।

[३९५] जो अधम पुरुष हो वो अपनी या पराई स्त्री में आसक्त मनवाला हो । हरएक वक्त में क्रुर परीणाम जिसके चित्त में चलता हो आरम्भ और परिग्रहादिक के लिए तल्लीन मनवाला हो । और फिर जो अधमाधम पुरुष हो वो महापाप कर्म करनेवाले सर्व स्त्री की मन, वचन, काया से त्रिविध त्रिविध से प्रत्येक समय अभिलाषा करे । और अति क्रुर अध्यवसाय से परिणमित चित्तवाला आरम्भ परिग्रह में आसक्त होकर अपना आयुकाल गमन करता है । इस प्रकार अधम और अधमाधम दोनों का अनन्त संसारी पन समजो ।

[३९६] हे भगवंत ! जो अधम और अधमाधम पुरुष दोनों का एक समान अनन्त संसारी इस तरह बताया तो एक अधम और अधमाधम उसमें फर्क कौन-सा समझे ? हे गौतम ! जो अधम पुरुष अपनी या पराई स्त्री में आसक्त मनवाला क्रुर-परीणामवाले चित्तवाला आरम्भ परिग्रह में लीन होने के बावजूद भी दिक्षित साध्वी और शील संरक्षण करने की इच्छावाली हो । पौषध, उपवास, व्रत, प्रत्याख्यान करने में उद्यमवाली दुःखी गृहस्थ स्त्रीं के सहवास में आ गए हो वो अनुचित अतिचार की माँग करे, प्रेरणा करे, आमंत्रित करे, प्रार्थना करे तो भी कामवश होकर उसके साथ दुराचार का सेवन न करे ।

लेकिन जो अधमाधम पुरुष हो अपनी माँ-भगिनी आदि यावत् दिक्षित साध्वी के साथ भी शारीरिक अनुचित अनाचार सेवन करे । उस कारण से उसे महापाप करनेवाला अधमाधम पुरुष कहा । हे गौतम ! इन दोनों में इतना फर्क है ।

और फिर जो अधम पुरुष है वो अनन्त काल से बोधि प्राप्त कर शकता है । लेकिन महापाप कर्म करनेवाले दिक्षीत साध्वी के साथ भी कुकर्म करनेवाले अधमाधम पुरुष अनन्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बार अनन्त संसार में घुमे तो भी बोधि पाने के लिए अधिकारी नहीं बन शकता । यह दुसरा भेद मानो ।

[३९७] इन छ पुरुष में सर्वोत्तम पुरुष उसे मानो कि जो छद्मस्व वीतरागपन पाया हो जिसे उत्तमोत्तम पुरुष बताए है वो उन्हें जानना कि जो ऋद्धि रहित इत्यादि से लेकर उपशामक और क्षपक मुनिवर हो । और फिर उत्तम उन्हें मानो कि जो अप्रमत्त मुनिवर हो इस प्रकार इन पुरुष की निरुपणा करना ।

[३९८] और फिर जो मिथ्यादृष्टि होकर उग्र ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला हो हिंसा-आरम्भ परिग्रह का त्याग करनेवाला वो मिथ्यादृष्टि ही है । सम्यकदृष्टि नहीं, उनको जीवादिक नौ तत्व के सद्भाव का ज्ञान नहीं होता वो उत्तम चीज मोक्ष का अभिनन्दन या प्रशंसा नहीं करते, वो ब्रह्मचर्य हिंसा आदि पाप का परिहार करके उस धर्म के बदले में आगे के भव के लिए तप ब्रह्मचर्य के बदले में नियाणा करके देवांगना पाए उतने ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट बने संसार के पौद्गलिक सुख पाने की इच्छा से नियाणा करे ।

[३९९] विमध्यम पुरुप उसे कहते है कि जो उस तरह का अध्यवसाय अंगीकार करके श्रावक के व्रत अपनाए हो ।

[४००] और जो अधम और अधमाधम वो जिस मुताबिक एकान्त में स्त्रीयों के लिए कहा उस मुताबिक कर्म स्थिति उपार्जन करे । केवल पुरुष के लिए इतना विशेष समजो कि पुरुष को स्त्री के राग उत्पन्न करवानेवाले स्तन-मुख ऊपर के हिस्से के अवयव योनि आदि अंग पर अधिकतर राग उत्पन्न होता है । इस प्रकार पुरुष के छ तरीके बताए ।

[४०१] हे गौतम ! कुछ स्त्री भव्य और दृढ़ सम्यक्त्ववाली होती है उनकी उत्तमता सोचे तो सवोत्तम ऐसे पुरुष की कक्षा में आ शकते है । लेकिन सभी स्त्री वैसी नहीं होती।

[४०२] हे गौतम ! उसी तरह जिस स्त्री को तीन काल पुरुष संयोग की प्राप्ति नहीं हुई । पुरुष संयोग संप्राप्ति स्वाधीन होने के बावजुद भी तेरहवे-चौदहवे, पंद्रहवे समय में भी पुरुष के साथ मिलाप न हुआ । यानि संभोग कार्य आचरण न किया । तो जिस तरह कई काष्ठ लकड़े, ईंधण से भरे किसी गाँव नगर या अरण्य में अग्नि फैल उठा और उस वक्त प्रचंड़ पवन फेंका गया तो अग्नि विशेष प्रदीप्त हुआ । जला-जलाकर लम्बे अरसे के बाद वो अग्नि अपने-आप बुझकर शान्त हो जाए । उस प्रकार हे गौतम ! स्त्री का कामाग्नि प्रदीप्त होकर वृद्धि पाते है । लेकिन चौथे वक्त शान्त हो उस मुताबिक इक्कीसवे बाईसवे यावत् सत्ताईसवे समय में शान्त बने, जिस तरह दीए की शिखा अदृश्य दिखे लेकिन फिर तेल ड़ालने से अगर अपने आप अगर उस तरह के चूर्ण के योग से वापस प्रकट होकर चलायमन होकर जलने लगे । उसी तरह स्त्री भी पुरुप के दर्शन से या पुरुष के साथ बातचीत करने से उसके आकर्पण से, मद से, कंदर्प से उसके कामाग्नि से सत्तेज होती है । फिर से भी जाग्रत होती है ।

[४०३] हे गौतम ! ऐसे वक्त में यदि वो स्त्री भय से, लज्जा से, कुल के कलंक के दोप से, धर्म की श्रद्धा से, काम का दर्द सह ले और असभ्य आचरण सेवन न करे वो स्त्री धन्य है । पुन्यवंती है, वंदनीय है । पूज्य है । दर्शनीय है, सर्व लक्षणवाली है, सर्व कल्याण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधनेवाली है । सर्वोत्तम मंगल की निधि है । वो श्रुत देवता है, सरस्वती है । पवित्र देवी है; अच्युता देवी है, इन्द्राणी है, परमपवित्रा उत्तमा है । सिद्धि मुक्ति शाश्वत शिवगति नाम से संबोधन करने के लायक है ।

[४०४] यदि वो स्त्री वेदना न सहे और अकार्याचरण करे तो वो स्त्री, अधन्या, अपुण्यवंती, अवंदनीय, अपूज्य न देखनेलायक विना लक्षण के तूटे हुए भाग्यवाली, सर्व अमंगल और अकल्याण के कारणवाली, शीलभ्रष्टा, भ्रष्टाचारवाली, निन्दनीया, नफरतवाली, धृणा करनेलायक पापी, पापी में भी महा पापीणी, अपवित्रा है । हे गौतम ! स्त्री होंशियारी से, भय से, कायरता से, लोलुपता से, उन्माद से, कंदर्प से, अभिमान से, पराधीनता से, बलात्कार से जान-बुझकर यह स्त्री संयम और शील में भ्रष्ट होती है । दूर रहे रास्ते के मार्ग में, गाँव में, नगर में, राजधानी में, वेश त्याग किए विना स्त्री के साथ अनुचित आचरण करे, बार-बार पुरुष भुगतने की इच्छा करे, पुरुष के साथ क्रीड़ा करे तो आगे कहने के मुताबिक वो पापिणी देखने लायक भी नहीं है ।

उसी प्रकार किसी साधु ऐसी स्त्री को देखे फिर उन्माद से, अभिमान से, कंदर्प से, पराधीनता से, स्वेच्छा से, जानबुझकर पाप का ड़र रखे बिना कोई आचार्य, सामान्य साधु, राजा से तारिफ पाए गए, वायु लब्धिवाले, तप लब्धिवाले, योग लब्धिवाले, विज्ञान लब्धिवाले, युग प्रधान, प्रवचन प्रभावक ऐसे मुनिवर भी यदि वो अगर दुसरी स्त्री के साथ रमण क्रीड़ा करे, उसकी अभिलाषा करे । भुगतना चाहे या भुगते बार-बार भुगते यावत् अति राग से न करने लायक आचार सेवन करे तो वो मुनि अति दुष्ट, तुच्छ, क्षुद्र, लक्षणवाला अधन्य, अवंदनीय, अदर्शनीय अहितकारी, अप्रशस्त, अकल्याणकर, मंगल, निंदनीय, गर्हणीय, नफरत करनेलायक दुगंच्छनीय है, वो पापी है और पापी में भी महापापी है वो अति महापापी है, भ्रष्टशीलवाला, चारित्र से अति भ्रष्ट होनेवाला महापाप कर्म करनेवाला है ।

इसलिए जब वो प्रायश्चित् लेने के लिए तैयार हो तब वो उस मंद जाति के अश्व की तरह वज्रऋषभनाराचसंघयणवाले उत्तम पराक्रमवाले, उत्तम सत्त्ववाले, उत्तम तत्त्व के जानकार । उत्तमवीर्य सामर्थ्यवाले, उत्तम संयोगवाले, उत्तम धर्म-श्रद्धावाले प्रायश्चित् करते वक्त उत्तम तरह के समाधि मरण की दशा का अहेसास करते है । हे गौतम ! इसलिए वैसे साधुओ की महानुभाव अठ्ठारह पाप स्थानक का परिहार करनेवाले नव ब्रह्मचर्य की गुप्ति का पालन करनेवाले ऐसे गुणयुक्त उन्हें शास्त्र में बताए है ।

[४०५] हे भगवंत् ! क्या प्रायश्चित् से शुद्धि होती है ? हे गौतम ! कुछ लोगों की शुद्धि होती है और कुछ लोगों की नहीं होती । हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हो कि एक की होती है और एक की नहीं होती ? हे गौतम ! यदि कोई पुरुष माया, दंभ, छल ठगाई के स्वभाववाले हो, वक्र आचारवाला हो, वह आत्मा शल्यवाले रहकर, प्रायश्चित् का सेवन करते है । इसलिए उनके अंतःकरण विशुद्धि न होने से कलुषित आशयवाले होते है । इसलिए उनकी शुद्धि नहीं होती । कुछ आत्मा सरलतावाली होती है, जिससे जिस प्रकार दोष लगा हो उस प्रकार यथार्थ गुरु को निवेदन करते है । इसलिए वो निशल्य, निःशंक पूरी तरह साफ दिल से प्रकट आलोचना अंगीकार करके यथोक्त नजरिये से प्रायश्चित् का सेवन करे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वो निर्मलता निष्कलुषता से विशुद्ध होते है इस कारण से ऐसै कहा जाता है कि एक निःशल्य आशयवाला शुद्ध होता है और शल्यवाला शुद्ध नहीं हो शकता ।

[४०६-४०७] हे गौतम ! यह स्त्री, पुरुष के लिए सर्व पाप कर्म की सर्व अधर्म की धनवृष्टि समान वसुधारा समान है मोह और कर्मरज के कीचड़ की खान समान सद्गति के मार्ग की अर्गला-विघ्न करनेवाली, नरक में उतरने के लिए सीड़ी समान, बिना भूमि के विषवेलड़ी, अग्नि रहित उंबाडक-भोजन बिना विसूचिकांत बिमारी समान, नाम रहित व्याधि, चेतना बिना मूर्छा, उपसर्ग बिना मरकी, बेड़ी बिना कैद, रस्सी बिना फाँसी, कारण बिना मौत या अकस्मात मौत, बताई हुई सर्व उपमा स्त्री को लग शकती है । इस तरह के बदसूरत उपनामवाली स्त्री के साथ पुरुष को मन से भी उसके भोग की फिक्र न करना, ऐसा अध्यावसाय न करना, प्रार्थना, धारणा, विकल्प या संकल्प अभिलाषा स्मरण त्रिविध त्रिविध से न करना।

हे गौतम ! जैसे कोई विद्या या मंत्र के अधिष्ठायक देव उसके साधक की बुरी दशा कर देते है । उसी तरह यह स्त्री भी पुरुष की दुर्दशा करके कलंक उत्पन्न करवानेवाली होती है । पाप की हत्या के संकल्प करनेवाले को जिस तरह धर्म का स्पर्श नहीं होता वैसे उनका संकल्प करनेवाले को धर्म नहीं छूता । चारित्र में स्खलना हुई हो तो स्त्री के संकल्पवाले को आलोचना, निंदा, गर्हा प्रायश्चित्त् करने का अध्यवसाय नहीं होता । आलोचना आदि न करने की कारण से अनन्तकाल तक दुःख समूहवाले संसार में घुमना पड़ता है । प्रायश्चित् की विशुद्धि की होने के बावजूद भी फिर से उनके संसर्ग में आने से असंयम की प्रवृत्ति करनी पड़ती है । महापाप कर्म के ढ़ग समान साक्षात् हिंसा पिशाचिणी समान, समग्र तीन लोक से नफरत पाई हुई । परलोक के बड़े नुकशान को न देखनेवाले, घोर अंधकार पूर्ण नरकावास समान हंमेशा कई दुःख के निधान समान । स्त्री के अंग उपांग मर्म स्थान या उसका रूप लावण्य, उसकी मीठी बोली या कामराग की वृद्धि करनेवाला उसके दर्शन का अध्यवसाय भी न करना ।

[४०८] हे गौतम ! यह स्त्री प्रलय काल की रात की तरह जिस तरह हंमेशा अज्ञान अंधकार से लिपीत है । बीजली की तरह पलभर में दिखते ही नष्ट होने के स्नेह स्वभाववाली होती है । शरण में आनेवाले का घात करनेवाले लोगों की तरह तत्काल जन्म दिए बच्चे के जीव का ही भक्षण करनेवाले समान महापाप करनेवाली स्त्री होती है, सञ्जक पवन के योग से घुंघवाते उछलते लवणसमुद्र के लहर समान कई तरह के विकल्प-तरंग की श्रेणी की तरह जैसे एक स्थान में एक स्वामी के लिए स्थिर मन करके न रहनेवाली स्त्रीं होती है । स्वयंभुरमण समुद्र काफी गहरा होने से उसे अवगाहन करना अति कठिन होता है । वैसे स्त्रीं के दिल अति छल से भरे होते है । जिससे उसके दिल को पहचानना काफी मुश्किल है । स्त्रीं पवन समान चंचल स्वभाववाली होती है, अग्नि की तरह सबका भक्षण करनेवाली, वायु की तरह सबको छूनेवाली स्त्रीं होती है, चोर की तरह पराई चीज पाने की लालसावाली होती है । कुत्ते को रोटी का टुकड़ा दे उतने वक्त दोस्त बन जाए । उसकी तरह जब तक उसे अर्थ दो तब तक मैत्री रखनेवाली यानि सर्वस्व हड़प करनेवाली और फिर बैरिणी होती है । मत्स्य लहरों में इकट्ठे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो, किनारे पर अलग हो जाए, उसके पास हो तब तक स्नेह रखनेवाली, दूर जाने के बाद भूल जानेवाली होती है । इस तरह कई लाख दोष से भरपूर ऐसे सर्व अंग और उपांगवाली बाह्य और अभ्यंतर महापाप करनेवाली अविनय समान । विष की वेलड़ी, अविनय की कारण से अनर्थ समूह के उत्पन्न करनेवाली स्त्री होती है ।

जिस स्त्री के शरीर से हंमेशा नीकलते बदबूवाले अशुचि सड़े हुए कुत्सनीय, निन्दनीय, नफरत के लायक सर्व अंग उपांगवाली और फिर परमार्थ से सोचा जाए तो उसके भीतर और बाहर के शरीर के अवयव से ज्ञात महासत्त्ववाली कामदेव से ऊँबनेवाले और वैराग्य पाकर आत्मा से ज्ञात, सर्वोत्तम और उत्तम पुरुष को और धर्माधर्म का रूप अच्छी तरह से समजे हो उनको वैसी स्त्री के लिए पलभर भी कैसे अभिलाषा हो ?

[४०९-४१०] जिसकी अभिलाषा पुरुष करता है, उस स्त्री की योनि में पुरुष के एकसंयोग के समय नौ लाख पंचेन्द्रिय समूर्च्छिम जीव नष्ट होते है । वो जीव अति सूक्ष्म स्वरूप होने से चर्मचक्षु से नहीं देख शकते । इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि स्त्री के साथ एक बार या बार बार बोलचाल न करना । और फिर उसके अंग या उपांग रागपूर्वक निरीक्षण न करना । यावत् ब्रह्मचारी पुरुष को मार्ग में स्त्री के साथ गमन नहीं करना ।

[४११] हे भगवंत ! स्त्री के साथ बातचीत न करना, अंगोपांग न देखना या मैथुन सेवन का त्याग करना ? हे गौतम ! दोनों का त्याग करो ।

हे भगवंत ! क्या स्त्री का समागम करने समान मैथुन का त्याग करना या कई तरह के सचित्त अचित्त चीज विषयक मैथुन का परीणाम मन, वचन, काया से त्रिविध से सर्वथा यावज्जीवन त्याग करे ? हे गौतम ! उसे सर्व तरीके से त्याग करो ।

[४१२] हे भगवंत ! जो कोई साधु-साध्वी मैथुन सेवन करे वो दुसरों के पास वन्दन करवाए क्या ?

हे गौतम ! यदि कोई साधु-साध्वी दीव्य, मानव या तिर्यंच संग से यावत् हस्तकर्म आदि सचित्त चीज विषयक दुष्ट अध्यवसाय करके मन, वचन, काया से खुद मैथुन सेवन करे, दुसरों को प्रेरणा उपदेश देकर मैथुन सेवन करवाए, सेवन करनेवाले को अच्छा माने, कृत्रिम और स्वाभाविक उपकरण से उसी मुताबिक त्रिविध-त्रिविध मैथुन का सेवन करे, करवाए या अनुमोदना करे वो साधु-साध्वी दुरन्त बूरे विपाकवाले पंत-असुंदर, अति बुरा, मुख भी जिसका देखनेलायक नहीं है । संसार के मार्ग का सेवन करनेवाला, मोक्षमार्ग से दूर, महापाप कर्म करनेवाला वो वंदन करने लायक नहीं है । वंदन करवाने लायक नहीं है । वंदन करनेवाले को अच्छा मानने लायक नहीं है, त्रिविधे वंदन के उचित नहीं या जहाँ तक प्रायश्चित् करके विशुद्धि न हो, तब तक दुसरे वंदन करते हो तो खुद वंदन न करना ।

हे भगवंत ! ऐसे लोगों को जो वंदन करे वो क्या पाए ? हे गौतम ! अठारह हजार शीलांग धारण करनेवाले महानुभाव तीर्थंकर भगवंत की महान् आशातना करनेवाला होता है । और आशातना के परीणाम को आश्रित करके यावत् अनन्त संसारीपन पाता है ।

[४१३-४१५] हे गौतम ! ऐसे कुछ जीव होते है कि जो स्त्री का त्याग अच्छी तरह से कर शकते है । मैथुन को भी छोड़ देते है । फिर भी वो परिग्रह की ममता छोड़ नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शकते। सचित्त अचित्त या उभययुक्त बहुत या थोड़ा जितने प्रमाण में उसकी ममता रखते है, भोगवटा करते है, उतने प्रमाण में वो संगवाला कहलाता है । संगवाला प्राणी ज्ञान आदि तीन की साधना नहीं कर शकता, इसलिए परिग्रह का त्याग करो ।

[४१६] हे गौतम ! ऐसे जीव भी होते है कि जो परिग्रह का त्याग करते है, लेकिन आरम्भ का नहीं करते, वो भी उसी तरह भव परम्परा पानेवाले कहलाते है ।

[४१७] हे गौतम ! आरम्भ करने के लिए तैयार हुआ और एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय जीव के संघट्टन आदि कर्म करे तो हे गौतम ! वो जिस तरह का पापकर्म बाँधे उसे तू समज।

[४१८-४२०] किसी बेइन्द्रिय जीव को बलात्कार से उसी अनिच्छा से एक वक्त के लिए हाथ से पाँव से दुसरे किसी सली आदि उपकरण से अगाढ़ संघट्ट करे । संघट्टा करवाए, ऐसा करनेवाले को अच्छा माने । हे गौतम ! यहाँ इस प्रकार बाँधा हुआ कर्म जब वो जीव के उदय में आता है, तब उसके विपाक बड़े कलेश से छ महिने तक भुगतना पड़ता है । वो ही कर्म गाढ़पन से संघट्ट करने से बारह साल तक भुगतना पड़ता है । अगाढ़ परितापे करे तो एक हजार साल तक और गाढ़ परिताप करे तो दश हजार साल तक, अगाढ़ कीलामणा करे तो एक लाख साल गाढ़ कीलामणा करे तो दश लाख साल तक उसके परीणाम-विपाक जीव को भुगतने पड़ते है । मरण पाए तो एक करोड़ साल तक उस कर्म की वेदना भुगतनी पड़े । उसी तरह तीन, चार, पाँच इन्द्रियवाले जीव के लिए भी समजो । हे गौतम ! सूक्ष्म पृथ्वी काय के एक जीव की जिसमें विराधना होती है उसे सर्व केवली अल्पारंभ कहते है । हे गौतम ! जिसमें सूक्ष्म पृथ्वीकाय को विनाश होता है, उसे सर्व केवली महारंभ कहते है ।

[४२१] हे गौतम ! उस तरह उत्कट कर्म अनन्त प्रमाण में इकट्ठे होते है । जो आरम्भ में प्रवर्तते है वो आत्मा उस कर्म से बँधता है ।

[४२२-४२३] आरम्भ करनेवाला वद्ध, स्पृष्ट और निकाचित अवस्थावाले कर्म बाँधते है इसलिए आरम्भ का त्याग करना चाहिए । पृथ्वीकाय आदि जीव का सर्व भाव से सर्व तरह से अंत लानेवाले आरम्भ का जिसने त्याग किया हो वो सत्त्वरे जन्म-मरम, जरा सर्व तरह के दारिद्रय और दुःख से मुक्त होते है ।

[४२४-४२६] हे गौतम ! जगत में ऐसे भी जीव है कि जो यह जानने के बाद भी एकान्त सुखशीलपन की कारण से सम्यग् मार्ग की आराधना में प्रवृत्ति नहीं हो शकते । किसी जीव सम्यग् मार्ग में जुड़कर घोर और वीर संयम तप का सेवन करे लेकिन उसके साथ यह जो पाँच बाते कही जाएगी उसका त्याग न करे तो उसके सेवन किए गए संयम तप सर्व निरर्थक है । १. कुशील, २. ओसन्न-शिथिलपन ऐसा कठिन संयम जीवन ? ऐसा बोल उठे। ३. यथाच्छंद-स्वच्छंद, ४. सबल-दूषित चारित्रवाले, ५. पासत्थो । इन पाँच को दृष्टि से भी न देखे ।

[४२७] सर्वज्ञ भगवन्त ने उपदेश दीया हुआ मार्ग सर्व दुःख को नष्ट करनेवाला है। और शाता गौरव में फँसा हुआ, शिथिल आचार सेवन करनेवाला, भगवन्त ने बताए मोक्षमार्ग को छोड़नेवाला होता है ।

[४२८] सर्वज्ञ भगवन्त ने बताए एक पद या एक शब्द को भी जो न माने, रुचि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न करे और विपरीत प्ररूपणा करे उसे जुरुर मिथ्यादृष्टि समझो ।

[४२९] इस प्रकार जानकर उस पाँच का संसर्ग दर्शन, बातचीत करना, पहचान, सहवास आदि सर्व बात हित के-कल्याण के अर्थी सर्व उपाय से वर्जन करना ।

[४३०] हे भगवंत ! शील भ्रष्ट का दर्शन करने का आप निषेध करते हो और फिर प्रायश्चित् तो उसे देते हो । यह दोनों बात किस तरह संगत हो शके ?

[४३१] हे गौतम ! शीलभ्रष्ट आत्मा को संसार सागर पार करना काफी मुश्किल है । इसलिए यकीनन वैसे आत्मा की अनुकंपा करके उसे प्रायश्चित् दिया जाता है ।

[४३२] हे भगवंत ! क्या प्रायश्चित् करने से नरक का बँधा हुआ आयु छेदन हो जाए ? गौतम ! प्रायश्चित् करके भी कईं आत्माए दुर्गति में गई है ।

[४३३-४३४] हे गौतम ! जिन्होंने अनन्त संसार उपार्जन किया है । ऐसे आत्मा यकीनन प्रायश्चित् से उसे नष्ट करते है । तो फिर वो नरक की आयु क्यों न तोड़ दे ? इस भुवन में प्रायश्चित् से किसी भी चीज असाध्य नहीं है । एक बोधिलाभ सिवा जीव को प्रायश्चित् से किसी चीज असाध्य नहीं है । यानि कि एक बार पाया हुआ बोधिलाभ हार जाए तो फिर से मिलना मुश्किल है ।

[४३५-४३६] अप्काय का परिभोग एवं अग्निकाय का आरम्भ और मैथुन सेवन अबोधि लाभ-कर्म बँधानेवाले है, इसलिए उसका वर्जन करना । अबोधि बँधानेवाले मैथुन, अप्काय्, अग्निकाय का परिभाग संयत आत्माए कोशीश पूर्वक त्याग करे ।

[४३७] हे भगवंत ! उपर बताए हुए कार्य से अबोधि लाभ हो तो वो गृहस्थ हंमेशा वैसे कार्य में प्रवृत्त होते है । उन्हें शिक्षाव्रत, गुणव्रत और अणुव्रत धारण करना निष्फल माना जाए क्या ?

[४३८-४४३] हे गौतम ! मोक्ष मार्ग दो तरह का बताया है । एक उत्तम श्रमण का और दुसरा उत्तम श्रावक का । प्रथम महाव्रतधारी का और दुसरा अणुव्रतधारी का । साधुओ ने त्रिविध त्रिविध से सर्व पाप व्यापार का जीवन पर्यन्त त्याग किया है । मोक्ष के साधनभूत घोर महाव्रत का श्रमण ने स्वीकार किया है । गृहस्थ ने परिमित काल के लिए द्विविध, एकविध या त्रिविध स्थूल पन से सावद्य का त्याग किया है, यानि श्रावक देश से व्रत अंगीकार करते है । जब कि साधुओने त्रिविध त्रिविध से मूर्च्छा, इच्छा, आरम्भ, परिग्रह का त्याग किया है । पाप वोसिराकर जिनेश्वर के लिंग-चिन्ह या वेश धारण किया है । जब गृहस्थ इच्छा आरम्भ परिग्रह के त्याग किए बिना अपनी स्त्री में आसक्त रहकर जिनेश्वर के वेश को धारण किए बिना श्रमण की सेवा करते है, इसलिए है गौतम ! एकदेशसे गृहस्थ पाप त्याग व्रत का पालन करते है, इसलिए उसके मार्ग की गृहस्थ को आशातना नहीं होती ।

[४४४-४४५] जिन्होंने सर्व पाप का प्रत्याख्यान किया है । पंच महाव्रत धारण किया है, प्रभु के वेश को स्वीकार किया है । वो यदि मैथुन अप्काय अग्निकाय सेवन का त्याग न करे तो उनको बड़ी आशातना बताई है । उसी कारण से जिनेश्वर इन तीन में बड़ी आशातना कहते है । इसलिए उन तीन का मन से भी सेवन के लिए अभिलाषा मत करो।

[४४६-४४७] हे गौतम ! काफी दृढ़ सोचकर यह कहा है कि यति अबोधिलाभ का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म बाँधे और गृहस्थ अबोधिलाभ न बाँधे । और फिर संयत मुनि इन तीन आशय से अबोधिलाभ कर्म बाँधते है । १. आज्ञा का उल्लंघन २. व्रत का भंग और ३. उन्मार्ग प्रवर्तन।

[४४८] मैथुन, अप्काय और तेऊकाय इन तीन के सेवन से अबोधिक लाभ होता है । इसलिए मुनि को कोशीश करके सर्वथा इन तीनों का त्याग करना चाहिए ।

[४४९] जो आत्मा प्रायश्चित् का सेवन करे और मन में संक्लेश रखे और फिर जो कहा हो उसके अनुसार न करे, तो वो नरक में जाए ।

[४५०] हे गौतम ! जो मंद श्रद्धावाला हो, वो प्रायश्चित् न करे, या करे तो भी क्लिष्ट मनवाला होकर करता है । तो उनकी अनुकंपा करना विरुद्ध न माना जाए ?

[४५१-४५२] हे गौतम ! राजादिक जब संग्राम में युद्ध करते है, तब उसमें कुछ सैनिक घायल होते है । तीर शरीर में जाता है तब तीर बाहर नीकालने से या शल्य का उद्धार करने से उसे दुःख होता है । लेकिन शल्य का उद्धार करने की अनुकंपा में विरोध नहीं माना जाता । शल्य का उद्धार करनेवाला अनुकंपा रहित नहीं माना जाता, वैसे संसार समान संग्राम में अंगोपांग के भीतर या बाहर के शल्य-भाव शल्य रहे हो उसका उद्धार करने में अनुपम अनुकंपा भगवंत ने बताइ है ।

[४५३-४५५] हे भगवंत ! जब तक शरीर में शल्य रहा हो तब तक जीव दुःख का अहेसास करते है, जब शल्य नीकाल देते है तब वो सुखी होते है । उसी प्रकार तीर्थंकर, सिद्धभगवंत, साधु और धर्म को धोखा देकर विपरीत बनकर जो कुछ भी उसने अकार्य आचरण किया हो उसका प्रायश्चित् करके सुखी होता है । भावशल्य दूर होने से सुखी हो, वैसे आत्मा के लिए प्रायश्चित् करने से कौन-सा गुण होगा ? वैसे बेचारे दीन पुरुष के पास दुष्कर और दुःख में आचरण किया जाए वैसे प्रायश्चित् क्यों दे ?

[४५६-४५७] हे गौतम ! शरीर में से शल्य बाहर नीकाला लेकिन झख्म भरने के लिए जव तक मल्हम लगाया न जाए, पट्टी न बाँधी जाए तब तक वो झख्म नहीं भरता । वैसे भावशल्य का उध्धार करने के बाद यह प्रायश्चित् मल्हम पट्टी और पट्टी बाँधने समान समजो। दुःख से करके रूझ लाई जाए वैसे पाप रूप झख्म की जल्द रूझ लाने के लिए प्रायश्चित् अमोघ उपाय है ।

[४५८-४६०] हे भगवंत ! सर्वज्ञ ने बताए प्रायश्चित् थोड़े से भी आचरण में, सुनने में या जानने में क्या सर्व पाप की शुद्धि होती है ? हे गौतम ! गर्मी के दिनों में अति प्यास लगी हो, पास ही में अति स्वादिष्ट शीतल जल हो, लेकिन जब तक उसका पान न किया जाए तब तक तृषा की शान्ति नहीं होती उसी तरह प्रायश्चित् जानकर जब तक निष्कपट भाव से सेवन न किया जाए तब तक उस पाप की वृद्धि होती है लेकिन कम नहीं होता ।

[४६१] हे भगवंत ! क्या प्रमाद से पाप की वृद्धि होती है ? क्या किसी वक्त आत्मा सावध हो जाए और पाप करने से रुक जाए तो वो पाप उतना ही रहें या तो वृद्धि होते रूक न जाए ?

[४६२] हे गौतम ! जैसे प्रमाद से साँप का डंख लगा हो लेकिन जरुरतवाले को पीछे से विष की वृद्धि हो वैसे पाप की भी वृद्धि होती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४६३-४६५] हे भगवंत ! जो परमार्थ को जाननेवाले होते है, तमाम प्रायश्चित् का ज्ञाता हो उन्हें भी क्या अपने अकार्य जिस मुताबिक हुए हो उस मुताबिक कहना पड़े ? हे गौतम ! जो मानव तंत्र मंत्र से करोड़ को शल्य बिना और इंख रहित करके मुर्च्छित को खड़ा कर देते है, ऐसा जाननेवाले भी इंखवाले हुए हो, निश्चेष्ट बने हो, युद्ध में बरछी के घा से घायल - हुए हो उन्हें दुसरे शल्य रहित मूर्च्छा रहित बनाते है । उसी तरह शील से उज्ज्वल साधु भी निपुण होने के बावजुद भी यथार्थ तरह से दुसरे साधु से अपना पाप प्रकाशित करे। जिस तरह अपना शिष्य अपने पास पाप प्रकट करे तब वो विशुद्ध होते है । वैसे खुद को शुद्ध होने के लिए दुसरों के पास अपनी आलोचना प्रायश्चित् विधिवत् करना चाहिए ।

अध्ययन-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

[४६६] यह ''महानिसीह'' सूत्र के दोनों अध्ययन की विधिवत् सर्व श्रमण (श्रमणी) को वाचना देनी यानि पढाना ।

अध्ययन-३-कुशील-लक्षण

[४६७] जब यह तीसरा अध्ययन चारों को (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका को) सुना शके उस प्रकार का है । क्योंकि अति बड़े और अति श्रेष्ठ आज्ञा से श्रद्धा करने के लायक सूत्र और अर्थ है । उसे यथार्थ विधि से उचित शिष्य को देना चाहिए ।

[४६८-४६९] जो कोई इसे प्रकटपन से प्ररूपे, अच्छी तरह से बिना योग करनेवाले को दे, अब्रह्मचारी से पढ़ाए, उद्देशादिक विधि रहित को पढ़ाए वो उन्माद, पागलपन पाए या लम्बे-अरसे की बिमारी-आतंक के दुःख भुगते, संयम से भ्रष्ट हो, मरण के वक्त आराधना नहीं पाते ।

[४७०-४७३] यहाँ प्रथम अध्ययन में पूर्व विधि बताई है । दुसरे अध्ययन में इस तरह का विधि कहना और बाकी के अध्ययन की अविधि समजना, दुसरे अध्ययन में पाँच आयंबिल उसमें नौ उदेशा होते है । तीसरे में आँठ आयंबिल और साँत उदेशो, जिस प्रकार तीसरे में कहा उस प्रकार चौथे अध्ययन में भी समजना, पाँचवे अध्ययन में छ आयंबिल, छट्ठे में दो, साँतवे में तीन, आँठवे में दश आयंबिल ऐसे लगातार आयंबिल तप संलग्न आऊत्तवायणा सहित आहार पानी ग्रहण करके यह महानिशीथ नाम के श्रेष्ठ श्रुतस्कंध को वहन धारण करना चाहिए ।

[४७४] गम्भीरतावाले महा बुद्धिशाली तप के गुण युक्त अच्छी तरह से परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हो, काल ग्रहण विधि की हो उन्हें वाचनाचार्य के पास वाचना ग्रहण करनी चाहिए।

[४७५-४७६] हंमेशा क्षेत्र की शुद्धि सावधानी से जब करे तब यह पढ़ाना । वरना किसी क्षेत्र देवता से हैरान हो । अंग और उपांग आदि सूत्र का यह सारभूत श्रेष्ठ तत्त्व है । महानिधि से अविधि से ग्रहण करने में जिस तरह धोखा खाती है वैसे इस श्रुतस्कंध से अविधि से ग्रहण करने में ठगाने का अवसर उत्पन्न होता है ।

[४७७-४७८] या तो श्रेयकारी-कल्याणकारी कार्य कईं विघ्नवाले होते है । श्रेय में भी श्रेय हो तो यह श्रुतस्कंध है, इसलिए उसे निर्विघ्न ग्रहण करना चाहिए । जो धन्य है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्यवंत है वो ही इसे पढ़ शकते है ।

[४७९] हे भगवंत ! उस कुशील आदि के लक्षण किस तरह के होते है ? कि जो अच्छी तरह जानकर उसका सर्वथा त्याग कर शके ।

[४८०-४८१] हे गौतम ! आम तोर पर उनके लक्षण इस प्रकार समजना और समजकर उसका सर्वथा संसर्ग त्याग करना, कुशील दो सौ प्रकार के जानना, ओसन्न दो तरह के बताए है । ज्ञान आदि के पासत्था, बाईश तरह से और शबल चारित्रवाले तीन तरह के है । हे गौतम ! उसमें जो दो सौ प्रकार के कुशील है वो तुम्हें पहले कहता हूँ कि जिसके संसर्ग से मुनि पलभर में भ्रष्ट होता है ।

[४८२-४८४] उसमें संक्षेप से कुशील दो तरहका है । १. परम्परा कुशील, २. अपरम्परा कुशील, उसमें जो परम्परा कुशील है वो दो तरह का है । १. साँत-आँठ गुरु परम्परा कुशील और २. एक, दो, तीन गुरु परम्परा कुशील । और फिर जो अपरम्परा कुशील है वो दो तरीके का है । आगम से गुरु परम्परा से क्रम या परिपाटी में जो कोई कुशील थे वो ही कुशील माने जाते है ।

[४८५-४८६] नोआगम से कुशील कईं तरह के है वो इस प्रकार ज्ञान कुशील, दर्शन कुशील, चारित्र कुशील, तप कुशील, वीर्याचार में कुशील । उसमें जो ज्ञान कुशील है वो तीन प्रकार के है । प्रसस्ताप्रशस्त ज्ञानकुशील, अप्रशस्त ज्ञान कुशील और सुप्रशस्त ज्ञान कुशील।

[४८७] उसमें जो प्रशस्ताप्रशस्त ज्ञान कुशील है उसे दो तरह के जानो आगमसे और नो आगमसे । उसमें आगमसे विभंग ज्ञानी के प्ररूपेल प्रशस्ताप्रशस्त चीज समूहवाले अध्ययन पढ़ाना वह अध्ययन कुशील, नोआगम से कईं तरह के प्रशस्ता-प्रशस्त परपाखंड़ के शास्त्र के अर्थ समूह को पढ़ना, पढ़ाना, वाचना, अनुप्रेक्षा करने समान कुशील ।

[४८८] उसमें जो अप्रशस्त ज्ञान कुशील है वो २९ प्रकार के है । वो इस तरह–

१. सावद्यवाद विषयक मंत्र, तंत्र का प्रयोग करने समान कुशील ।

२. विद्या-मंत्र-तंत्र पढ़ाना-पढ़ना यानि वस्तुविद्या कुशील ।

३. ग्रहण-क्षत्र चार ज्योतिष शास्त्र देखना, कहना, पढ़ाना समान लक्षण कुशील ।

४. निमित्त कहना । शरीर के लक्षण देखकर कहना, उसके शास्त्र पढ़ाना समान लक्षण कुशील ।

५. शकुन शास्त्र लक्षण शास्त्र कहना पढ़ाना समान लक्षण कुशील ।

६. हस्ति शिक्षा बतानेवाले शास्त्र पढ़ना पढ़ाना समान लक्षण कुशील ।

७. धनुर्वेद की शिक्षा लेना उसके शास्त्र पढ़ाना समान लक्षण कुशील ।

८. गंधर्ववेद का प्रयोग शीखलाना यानि रूप कुशील ९. पुरुष-स्त्री के लक्षण कहनेवाले शास्त्र पढ़ानेवाले रूपकुशील ।

१०. कामशास्त्र के प्रयोग कहनेवाले, पढ़ानेवाले रूप कुशील ।

११. कौतुक इन्द्रजाल के शस्त्र का प्रयोग करनेवाले पढ़ानेवाले कुशील ।

१२. लेखनकला, चित्रकला शीखलानेवाले रूप कुशील ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. लेपकर्म विद्या पढ़ानेवाले रूप कुशील ।

१४. वमन विरेचन के प्रयोग करना, करवाना शीखलाना, कई तरह की वेलड़ी उसकी जड़ नीकालने के लिए कहना, प्रेरणा देना, वनस्पति-वेल तोड़ना, कटवाने के समान कई दोषवाली वैदक विद्या के शस्त्र अनुसार प्रयोग करना, वो विद्या पढ़ना, पढ़ाना यानि रूप कुशील ।

१५. उस प्रकार अंजन प्रयोग । १६. योगचूर्ण, १७. सुवर्ण धातुवाद, १८. राजदंड़नीति १९. शास्त्र अस्त्र अग्नि बीजली पर्वत, २०. स्फटिक रत्न, २१. रत्न की कसौटी, २२. रस वेध विषयक शास्त्र, २३. अमात्य शिक्षा, २४. गुप्त तंत्र-मंत्र, २५. काल देशसंधि करवाना ।

२६. लड़ाई करवाने का उपदेश । २७. शस्त्र, २८. मार्ग, २९. जहाज व्यवहार । आदि यह निरुपण करनेवाले शास्त्र का अर्थ कथन करना करवाना यानि अप्रशस्त ज्ञान कुशील। इस प्रकार पाप-श्रुत की वाचना, विचारणा, परावर्तन, उसकी खोज, संशोधन, उसका श्रवण करना अप्रशस्त ज्ञान कुशील कहलाता है ।

[४८९] उसमें जो सुप्रशस्तज्ञानकुशील है वो भी दो तरह के जान लेने आगम से और नोआगम से । उसमें आगम से सुप्रशस्त ज्ञान ऐसे पाँच तरह के ज्ञान की या सुप्रशस्तज्ञान धारण करनेवालो की आशातना करनेवाला यानि सुप्रशस्तज्ञान कुशील ।

[४९०] नोआगम से सुप्रशस्त ज्ञान कुशील आँठ तरह के -अकाल सुपशस्त ज्ञान पढ़े, पढ़ाए, अविनय से सुप्रशस्त ज्ञान ग्रहण करे, करवाए, अबहुमान से सुप्रशस्त ज्ञान पठन करे, उपधान किए बिना सुप्रशस्त ज्ञान पढ़ना, पढ़ाना, जिसके पास सुप्रशस्त सूत्र अर्थ पढ़े हो उसे छिपाए, वो स्वर-व्यंजन रहित, कम अक्षर, ज्यादा अक्षरवाले सूत्र पढ़ना, पढ़ाना, सूत्र, अर्थ विपरीतपन से पढ़ना, पढ़ाना । संदेहवाले सूत्रादिक पढ़ना-पढ़ाना ।

[४९१] उसमें यह आँठ तरह के पद को जो किसी उपधान वहन किए बिना सुप्रशस्त ज्ञान पढ़े या पढ़ाए, पढ़नेवाले या पढ़ानेवाले को अच्छे मानकर अनुमोदना करे वो महापाप कर्म सुप्रशस्त ज्ञान की महा आशातना करनेवाला होता है ।

[४९२] हे भगवंत ! यदि ऐसा है तो क्या पंच मंगल के उपधान करने चाहिए ? हे गौतम ! प्रथम ज्ञान और उसके बाद दया यानि संयम यानि ज्ञान से चारित्र-दया पालन होता है । दया से सर्व जगत के सारे जीव-प्राणी-भूत-सत्त्व को अपनी तरह देखनेवाला होता है । जगत के सर्व जीव, प्राणी, भूत सत्त्व को अपनी तरह सुख-दुःख होता है, ऐसा देखनेवाला होने से वो दुसरे जीव के संघट्ट करने के लिए परिताप या किलामणा-उपद्रव आदि दुःख उत्पन्न करना, भयभीत करना, त्रास देना इत्यादिक से दूर रहता है । ऐसा करने से कर्म का आश्रव नहीं होता । कर्म का आश्रव बन्द होने से कर्म आने के कारण समान आश्रव द्वार बन्द होते है । आश्रव के द्वार बन्द होने से इन्द्रिय का दमन और आत्मा में उपशम होता है ।

इसलिए शत्रु और मित्र के प्रति समानभाव सहितपन होता है । शत्रु मित्र के प्रति समानभाव सहितपन से रागद्वेष रहितपन उससे क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता होने से कषाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहितपन प्राप्त होता है । कषाय रहितपन होने से सम्यक्त्त्व उत्पन्न होता है । सम्यक्त्त्व होने से जीवादिक चीज का ज्ञान होता है । वो होने से सर्व ममतारहितपन होता है । सभी चीजों में ममता न रहने से अज्ञान मोह और मिथ्यात्व का क्षय होता है । यानि विवेक आता है। विवेक होने से हेय और उपादेय चीज की यथार्थ सोच और एकान्त मोक्ष पाने के लिए दृढ़ निश्चय होता है ।

इससे अहित का परित्याग और हित का आचरण हो वैसे कार्य में अति उद्यम करनेवाला बने । उसके बाद उत्तरोत्तर परमार्थ स्वरूप पवित्र उत्तम क्षमा आदि दश तरह के, अहिंसा लक्षणवाले धर्म का अनुष्ठान करने और करवाने में एकाग्र और आसक्त चित्रवाला होता है । उसके बाद यानि कि क्षमा आदि दश तरह के और अहिंसा लक्षण युक्त धर्म का-अनुष्ठान का सेवन करना और करवाना उसमें एकाग्रता और आसक्त चित्तवाले आत्मा को सर्वोत्तम क्षमा, सर्वोत्तम मृदुता, सर्वोत्तम सरलता, सर्वोत्तम बाह्य धन सुवर्ण आदि परिग्रह और काम क्रोधादिक अभ्यंतर परिग्रह स्वरूप सर्व संग का परित्याग होता है । और सर्वोत्तम बाह्य अभ्यन्तर ऐसे बारह तरह के अति घोर वीर उग्र कष्टवाले तप और चरण के अनुष्ठान में आत्मरमणता और परमानन्द प्रकट होता है ।

आगे सर्वोत्तम सत्तरा प्रकार के समग्र संयम अनुष्ठान परिपालन करने के लिए बद्धलक्षपन प्राप्त होता है । सर्वोत्तम सत्य भाषा बोलना, छ काय जीव का हित, अपना बल, विर्य पुरुषार्थ, पराक्रम छिपाए बिना मोक्ष मार्ग की साधना करने में कटिबद्ध हुए सर्वोत्तम स्वाध्याय ध्यान समान जल द्वारा पापकर्म समान मल के लेप को प्रक्षाल करनेवाला - धोनेवाला होता है । और फिर सर्वोत्तम अकिंचनता, सर्वोत्तम परमपवित्रता सहित, सर्व भावयुक्त सुविशुद्ध सर्व दोष रहित, नव गुप्ति सहित, १८ परिहार स्थानक से विरमित यानि १८ तरह के अब्रह्म का त्याग करनेवाला होता है ।

उसके बाद यह सर्वोत्तम क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता, तप, संयम, सत्य, शोच, आकिंचन्य, अतिदुर्धर, ब्रह्मवत् धारण करना इत्यादिक शुभ अनुष्ठान से सर्व समारम्भ का त्याग करनेवाला होता है । फिर पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति रूप स्थावर जीव दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रियवाले जीव का और अजीव काय का सरंभ, समारम्भ, आरम्भ को मन, वचन, काया के त्रिक से त्रिविध त्रिविध से श्रोत्रादि इन्द्रिय के विषय के संवरपूर्वक आहारादि चार संज्ञा का त्याग करके पाप को वोसिराता है ।

फिर निर्मल अट्ठारह हजार शीलांग धारण करनेवाला होने से अस्खलित, अखंड़ित, अमलिन, अविराधित, सुन्दर उग्र उग्रतर विचित्र आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला आभिग्रह का निर्वाह करनेवाला होता है । फिर देवता, मनुष्य, तिर्यंच के किए हुए घोर परिषह उपसर्ग को समता रखकर सहनेवाले होते है । उसके बाद अहोरात्र आदि प्रतिमा के लिए महा कोशीश करनेवाला होता है । फिर शरीर की-टापटीप रहित ममतारहित होता है । शरीर निष्प्रतिक्रमणवाला होने से शुक्ल ध्यान में अड़ोलपन पाता है ।

फिर अनादि भव परम्परा से इकट्ठे किए समग्र आँठ तरह के कर्म राशि का क्षय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनेवाला होता है । चार गति रूप भव के कैदखाने में से बाहर नीकलकर सर्व दुःख से विमुक्त होकर मोक्ष में गमन करनेवाला होता है । मोक्ष के भीतर सदा के लिए जन्म, बुढ़ापा, मरण, अनिष्ट का मिलन, इष्ट का वियोग, संताप, उद्वेग, अपयश, झूठा आरोप लगाना, बड़ी व्याधि की वेदना, रोग, शोक, दारिद्र, दुःख, भय, वैमनस्य आदि दुःख नहीं होते, फिर वहाँ एकान्तिक आत्यन्तिक निरुपद्रवतावाला, मिला हुआ वापस न चला जाए ऐसा, अक्षय, ध्रुव, शाश्वत हंमेशा रहनेवाला सर्वोत्तम सुख मोक्ष में होता है ।

यह सर्व सुख का मूल कारण ज्ञान है । ज्ञान से ही यह प्रवृत्ति शुरु होती है इसलिए हे गौतम ! एकान्तिक आत्यन्तिक, परम शाश्वत, ध्रुव, निरन्तर, सर्वोत्तम सुख की इच्छा वाले को सबसे पहले आदर सहित सामायिक सूत्र से लेकर लोकबिन्दुसार तक बारह अंग स्वरूप श्रुतज्ञान कालग्रहण विधिसहित आयंबिल आदि तप और शास्त्र में बताई विधिवाले उपधान वहन करने पूर्वक, हिंसादिक पाँच को त्रिविध त्रिविध से त्याग करके उसके पाप का प्रतिक्रमण करके सूत्र के स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिन्दु पद, अक्षर, कम ज्यादा न बोल शके वैसे पदच्छेद दोष, गाथाबद्ध, क्रमसर, पूर्वानुपूर्वी, आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी सहित सुविशुद्ध गुरु के मुख से विधिवत् विनय सहित ग्रहण किया हो ऐसा ज्ञान एकांते सुंदर समझना ।

हे गौतम ! आदि और बिना अन्त के किनारा रहित अति विशाल ऐसे स्वयंभूरमण समुद्र की तरह जिसमे दुःख से करके अवगाहन कर शकते है । समग्र सुख की परम कारण समान ही तो वो श्रुतज्ञान है । ऐसे ज्ञान सागर को पार करने के लिए इष्ट देवता को नमस्कार करना चाहिए । इष्ट देवता को नमस्कार किए बिना कोई उसको पार नहीं कर शकते इसलिए हे गौतम ! यदि कोई इष्ट देव हो तो नवकार । यानि कि पंचमंगल ही है । उसके अलावा दुसरे किसी इष्टदेव मंगल समान नहीं है । इसलिए प्रथम पंच मंगल का ही विनय उपधान करना जुरुरी है ।

[४९३] हे भगवंत ! किस विधि से पंचमंगल का विनय उपधान करे ? हे गौतम ! आगे हम बताएंगे उस विधि से पंच मंगल का विनय उपधान करना चाहिए ।

अति प्रशस्त और शोभन तिथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र, योग, लग्न, चन्द्रबल हो तब आँठ तरह के मद स्थान से मुक्त हो, शंका रहित श्रद्धासंवेग जिसके अति वृद्धि पानेवाले हो, अति तीव्र महान उल्लास पानेवाले, शुभ अध्यवसाय सहित, पूर्ण भक्ति और बहुमान से किसी भी तरह के आलोक या परलोक के फल की इच्छारहित बनकर लगातार पाँच उपवास के पच्चक्खाण करके जिन मंदिर में जन्तुरहित स्थान में रहकर जिसका मस्तक भक्तिपूर्ण बना है। हर्ष से जिसके शरीर में रोमांच उत्पन्न हुआ है, नयन समान शतपत्रकमल प्रफुल्लित होता है । जिसकी नजर प्रशान्त, सौम्य, स्थिर है । जिसके हृदय सरवर में संवेग की लहरे उठी है ।

अति तीव्र, महान, उल्लास पानेवाले कई, घन-तीव्र आंतरा रहित, अचिंत्य, परम शुभ, परिणाम विशेष से आनन्दित होनेवाले, जीव के वीर्य योग से हर वक्त वृद्धि पानेवाले, हर्षपूर्ण शुद्ध अति निर्मल स्थिर निश्चल अंतःकरणवाले, भूमि पर स्थापन किया हो उस तरह से श्री ऋषभ आदि श्रेष्ठ धर्म तीर्थंकर की प्रतिमा के लिए स्थापन किए नैन और मनवाला उसके लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकाग्र बने परीणामवाला आराधक आत्मा शास्त्र के जानकार दृढ़ चारित्रवाले गुण संपत्ति से युक्त गुरु लघुमात्रा सहित शब्दउच्चार करके अनुष्ठान करवाने के अद्वित्तीय लक्षवाले गुरु के वचन को बाधा न हो उस तरह जिसके वचन नीकलते हो । विनय आदि सम्मान हर्ष अनुकंपा से प्राप्त हुआ, कईं शोक संताप उद्वेग महा व्याधि का दर्द, घोर दुःख-दारिद्रय, क्लेश रोग-जन्म, जरा, मरण, गर्भावास आदि समान दुष्ट श्वापद (एक जीव विशेष) और मच्छ से भरपुर भव सागर में नाव समान ऐसे इस समग्र आगम की-शास्त्र की मध्य में व्यवहार करनेवाले, मिथ्यात्व दोष से वध किए गए, विशिष्ट बुद्धि से खुद ने कल्पना किए हुए कुशास्त्र और उसके वचन जिसमें समग्र आशय-दृष्टांत युक्ति से घटीत नहीं होते ।

इतना ही नहीं लेकिन हेतु, दृष्टांत, युक्ति से कुमतवालों की कल्पीत बातों का विनाश करने के लिए समर्थ है । ऐसे पंच मंगल महा श्रुतस्कंधवाले पाँच अध्ययन और एक चुलिकावाले, श्रेष्ठ, प्रवचन देवता से अधिष्ठित, तीन पद युक्त, एक आलापक और साँत अक्षर के प्रमाणवाले अनन्त गम-पर्याय अर्थ को बतानेवाले सर्व महामंत्र और श्रेष्ठ विद्या के परम बीज समान ऐसे 'नमो अरिहंताणं' इस तरह का पहला अध्ययन वांचनापूर्वक पढ़ना चाहिए । उस दिन यानि पाँच उपवास करने के बाद पहले अध्ययन की वांचना लेने के बाद दुसरे दिन आयंबिल तप से पारणा करना चाहिए ।

उसी प्रकार दुसरे दिन यानि साँतवे दिन कईं अतिशय गुण संपदायुक्त आगे बताए गए अर्थ को साधनेवाले आगे कहे क्रम के मुताबिक दो पदयुक्त एक आलापक, पाँच शब्द के प्रमाणवाले ऐसे 'नमो सिद्धाणं' ऐसे दुसरे अध्ययन को पढ़ना चाहिए । उस दिन भी आयंबिल से पच्चक्खाण करना चाहिए ।

उसी प्रकार पहले बताए हुए क्रम अनुसार पहले कहे अर्थ की साधना करनेवाले तीन पद युक्त एक आलापक, सात शब्द के प्रमाणवाले 'नमो आर्यारयाणं' ऐसे तीसरे अध्ययन का पठन करना और आयंबिल करना ।

आगे बताए अर्थ साधनेवाले तीन पद युक्त एक आलापक और साँत शब्द के प्रमाणवाला नमो उवज्झायाणं ऐसे चौथे अध्ययन का पठन करना । आयंबिल करना ।

उसी प्रकार चार पद युक्त एक आलापक और नौ अक्षर प्रमाणवाला ''नमो लोए सव्वसाहूणं'' ऐसे पाँचवे अध्ययन की वाचना लेकर पढ़ना और वो पाँचवे दिन यानि कुल दँशवे दिन आयंबिल करना ।

उसी प्रकार उसके अर्थ को अनुसरण करनेवाले ग्यारह पद युक्त तीन आलापक और तैंतीस अक्षर प्रमाणवाली ऐसी चुलिका समान ऐसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं तीन दिन एक एक पद की वाचना ग्रहण करके, छट्ठे, साँतवे, आँठवे दिन उसी क्रम से और विभाग से आयंबिल तप करके पठन करना । उसी प्रकार यह पाँच मंगल महा श्रुतस्कंध स्वर वर्ण, पद सहित, पद अक्षर बिन्दु मात्रा से विशुद्ध बड़े गुणवाले, गुरु ने उपदेश दिए हुए, वाचना दिए हुए ऐसे उसे समग्र ओर से इस तरह पढ़कर तैयार करो कि जिससे पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी वो जँबान के अग्र हिस्से पर अच्छी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह से याद रह जाए ।

उसके बाद आगे बताए अनुसार तिथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र, योग, लग्न, चन्द्रबल के शुभ समय जन्तुरहित ऐसे चैत्यालय-जिनालय के स्थान में क्रमसर आए हुए, अट्ठम तप सहित समुद्देश अनुज्ञा विधि करवाके हे गौतम ! बड़े प्रबन्ध आड़म्बर सहित अति स्पष्ट वाचना सुनकर उसे अच्छी तरह से अवधारण करना चाहिए । यह विधि से पंचमंगल के विनय उपधान करने चाहिए ।

[४९४] हे भगवंत ! क्या यह चिन्तामणी कल्पवृक्ष समान पंच मंगल महाश्रुतस्कंध के सूत्र और अर्थ को प्ररुपे है ?

हे गौतम ! यह अचिंत्य चिंतामणी कल्पवृक्ष समान मनोवांछित पूर्ण करनेवाला पंचमंगल महा श्रुतस्कंध के सूत्र और अर्थ प्ररुपेल है । वो इस प्रकार :–

जिस कारण के लिए तल में तैल, कमल में मकरन्द, सर्वलोक में पंचास्तिकाय फैले रहे है । उसी तरह यह पंच मंगल महाश्रुतस्कंध के लिए समग्र आगम के भीतर यथार्थ क्रिया व्यापी है । सर्वभूत के गुण स्वभाव का कथन किया है । तो परम स्तुति किसकी करे ? इस जगत में जो भूतकाल में हो उसकी ।

इस सर्व जगत में जो कुछ भूतकाल में या भावि में उत्तम हुए हो वो सब स्तुति करने लायक है वैसे सर्वोत्तम और गुणवाले हो वे केवल अरिहंतादिक पाँच ही है, उसके अलावा दुसरे कोई सर्वोत्तम नहीं है, वो पाँच प्रकार के है–अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु । यह पाँच परमेष्ठि के गर्भार्थ-यथार्थ गुण सद्भाव हो तो वो इस प्रकार बताए है ।

मनुष्य, देव और असुरवाले इस सर्व जगत को आँठ महाप्रातिहार्य आदि के पूजातिशय से पहचाननेवाले, असाधारण, अचिन्त्य प्रभाववाले, केवलज्ञान पानेवाले, श्रेष्ठ उत्तमता को वरे हुए, होने से 'अरहंत', समग्र कर्मक्षय पाए हुए होने से जिसका भवांकुर समग्र तरीके से जल गया है, जिससे अब वो फिर से इस संसार में उत्पन्न नहीं होते । इसलिए उन्हें अरूहंत भी कहते है । या फिर अति दुःख से करके जिन पर विजय पा शकते है वैसे समग्र आँठ कर्मशत्रुओं को निर्मथन करके वध किया है । निर्दलन टुकड़े कर दिए है, पीगला दिए है । अंत किया है, परीभाव किया है, यानि कर्म समान शत्रु को जिन्होंने हंमेशा के लिए वध किया है । ऐसे 'अरिहंत' कहा है ।

इस प्रकार इस अरिहंत की कई प्रकार से समज दी है, प्रज्ञापना की जाती है, प्ररूपणा की जाती है । कहलाते है । पढाते है, बनाते है, उपदेश दिया जाता है ।

और सिद्ध भगवंत परमानन्द महोत्सव में महालते, महाकल्याण पानेवाले, निरूपम सुख भुगतनेवाले, निष्कंप शुक्लध्यान आदि के अचिंत्य सामर्थ्य से अपने जीववीर्य से योग निरोध करने समान महा कोशीश से जो सिद्ध हुए है । या तो आँठ तरह के कर्म का क्षय होने से जिन्होंने सिद्धपन की साधना का सेवन किया है, इस तरह के सिद्ध भगवंत या शुक्लध्यान समान अग्नि से बंधे कर्म भस्मीभूत करके जो सिद्ध हुए है, वैसे सिद्ध भगवंत सिद्ध किए है, पूर्ण हुए है, रहित हुए है, समग्र प्रयोजन समूह जिनको ऐसे सिद्ध भगवंत ! यह सिद्ध भगवंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्री-पुरुष, नपुंसक, अन्यलिंग गृहस्थलिंग, प्रत्येकबुद्ध, स्वयंबुद्ध यावत् कर्मक्षय करके सिद्ध हुए-ऐसे कई तरह के सिद्ध की प्ररूपणा की है (और) अट्ठारह हजार शीलांग के आश्रय किए देहवाले छत्तीस तरह के ज्ञानादिक आचार प्रमाद किए बिना हंमेशा जो आचरण करते है, इसलिए आचार्य, सर्व सत्य और शिष्य समुदाय का हित आचरण करनेवाले होने से आचार्य, प्राण के परित्याग वक्त में भी जो पृथ्वीकाय आदि जीव का समारम्भ, आचरण नहीं करते । या आरम्भ की अनुमोदना जो नहीं करके, वो आचार्य बड़ा अपराध करने के बावजूद भी जो किसी पर मन से भी पाप आचरण नहीं करते यों आचार्य कहलाते है । इस प्रकार नाम-स्थापना आदि कई भेद से प्ररूपणा की जाती है । (और)

जिन्हों ने अच्छी तरह से आश्रवद्वार बन्ध किए है, मन, वचन, काया के सुंदर योग में उपयोगवाले, विधिवत् स्वर-व्यंजन, मात्रा, बिन्दु, पद, अक्षर सें विशुद्ध बारह अंग, श्रुतज्ञान पढ़नेवाले और पढ़ानेवाले एवं दुसरे और खुद के मोक्ष उपाय जो सोचते है–उसका ध्यान धरते है वो उपाध्याय । स्थिर परिचित किए अनन्तगम पर्याय चीज सहित द्वादशांणी और श्रुतज्ञान जो एकाग्र मन से चिन्तवन करते है, स्मरण करते है । ध्यान करते है, वो उपाध्याय इस प्रकार कई भेद से उसकी व्याख्या करते है ।

अति कष्टवाले उग्र उग्रतर घोर तप और चारित्रवाले, कई व्रत-नियम उपवास विविध अभिग्रह विशेष, संयमपालन, समता रहित परिसह उपसर्ग सहनेवाले, सर्व दुःख रहित मोक्ष की साधना करनेवाले वो साधु भगवन्त कहलाते है । यही बात चुलिका में सोचंगे ।

एसो पंच नमोक्कारो–इन पाँच को किया गया नमस्कार क्या करेगा ? ज्ञानावरणीय आदि सर्व पापकर्म विशेष को हर एक दिशा में नष्ट करे वो सर्व पाप नष्ट करनेवाले । यह पद चूलिका के भीतर प्रथम उद्देशो कहलाए 'एसो पंच नमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो' यह उद्देशक ईस तरहका है ।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं उसमें मंगल शब्द में रहे मंगल शब्द का निर्वाणसुख अर्थ होता है । वैसे मोक्ष सुख को साधने में समर्थ ऐसे सम्यग्दर्शनादि स्वरूपवाला, अहिंसा लक्षणवाला धर्म जो मुजे लाकर दे वो मंगल ।

और मुजे भव से-संसार से पार करे वो मंगल । या बद्ध, स्पृष्ट, निकाचित ऐसे आँठ तरह के मेरे कर्म समूह को जो छाँने, विलय, नष्ट करे वो मंगल ।

यह मंगल और दुसरे सर्व मंगल में क्या विशेषता है ? प्रथम आदि में अरिहंत की स्तुति यही मंगल है । यह संक्षेप से अर्थ बताया । अब विस्तार से नीचे मुताबिक अर्थ जान लो । उस काल उस वक्त हे गौतम ! जिसके शब्द का अर्थ आगे बताया गया है। ऐसा जो कोई धर्म तीर्थंकर अरिहंत होते है, वो परम पूज्य से भी विशेष तरह से पूज्य होते है । क्योंकि वो सब यहाँ बताएंगे वैसे लक्षण युक्त होते है ।

अचिन्त्य, अप्रमेय, निरुपम जिसकी तुलना में दुसरा कोई न आ शके, श्रेष्ठ और श्रेष्ठतर गुण समुह से अधिष्ठित होने की कारण से तीन लोक के अति महान, मन के आनन्द को उत्पन्न करनेवाले है । लम्बे ग्रीष्मकाल के ताप से संतप्त हुए, मयुर गण को जिस तरह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम वर्षा की धारा का समूह शान्ति दे, उसी तरह कई जन्मान्तर में उपार्जन करके इकट्ठे किए महा-पुण्य स्वरूप तीर्थंकर नामकर्म के उदय से अरिहन्त भगवंत उत्तम हितोपदेश देना आदि के द्वारा सज़ड़ राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, दुष्ट-संकिलष्ट ऐसा परीणाम आदि से बँधे अशुभ घोर पाप कर्म से होनेवाले भव्य जीव के संताप को निर्मूल-करते है ।

सबको जानते होने से सर्वज्ञ है । कई जन्म से उपार्जन किए महापुण्य के समूह से जगत में किसी की तुलना में न आए ऐसे अखूट बल, वीर्य, ऐश्वर्य, सत्त्व, पराक्रमयुक्त देहवाले वो होते है । उनके मनोहर देदीप्यमान पाँव के अँगूठे के अग्रहिस्से का रूप इतना रूपातिशयवाला होता है कि जिसके आगे सूर्य जैसे दस दिशा में प्रकाश से (स्फुरायमान) प्रकट प्रतापी किरणों के समूह से सर्व ग्रह, नक्षत्र और चन्द्र की श्रेणी को तेजहीन बनाते है, वैसे तीर्थंकर भगवन्त के शरीर के तेज से सर्व विद्याधर, देवांगना, देवेन्द्र, असुरेन्द्र सहित देव का सौभाग्य, कान्ति, दीप्ति, लावण्य और रूप की समग्र शोभा फिखी-निस्तेज हो जाती है ।

स्वभाविक ऐसे चार, कर्मक्षय होने से ग्यारह और देव के किए उन्नीस ऐसे चौतीस अतिशय ऐसे श्रेष्ठ निरुपम और असामान्य होते है । जिसके दर्शन करने से भवतपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक, अहमिन्द्र, इन्द्रअप्सरा, किन्नर, नर विद्याधर सूर और असुर सहित जगत के जीव को आश्चर्य होता है । आश्चर्य होता है कि अरे ! हम आज तक किसी भी दिन न देखा हुआ आज देखा । एक साथ इकट्ठे हुए । अतुल महान अचिंत्य गुण परम आश्चर्य का समूह एक ही व्यक्ति में आज हमने देखा । ऐसे शुभ परीणाम से उस वक्त अति गहरा सतत उत्पन्न होनेवाले प्रमोदवाले हुए । हर्ष और अनुराग से स्फुरायमान होनेवाले नये परीणाम से आपस में हर्ष के वचन बोलने लगे और विहार करके भगवंत आगे चले तब अपने आत्मा की निंदा करने लगे । आपस में कहने लगे कि वाकई हम नफरत के लायक है, अधन्य है, पुण्यहीन है, भगवंत विहार करके चले गए फिर संक्षोभ पाए हुए हृदयवाले मुर्छित हुए, महा मुसीबत से होंश आया । उनके गात्र खींचने से अति शिथिल हो गए । शरीर सिकुड़ना । हाथ-पाँव फैलाना प्रसन्नता बतानी, आँख में पलकार होना । शरीर की क्रियाए-बन्ध हो गइ, न समज शके वैसे स्खलनवाले मंद शब्द बोलने लगे, मंद लम्बे हुँकार के साथ लम्बे गर्म निसाँसे छोडने लगे । अति बुद्धिशाली पुरुष ही उनके मन का यथार्थ निर्णय कर शके ।

जगत के जीव सोचने लगे कि किस तरह के तप के सेवन से ऐसी श्रेष्ठ ऋद्धि पा शकेंगे ? उनकी ऋद्धिसमृद्धि की सोच से और दर्शन से आश्चर्य पानेवाले अपने वक्षःस्थल पर हस्ततल स्थापन करके मन को चमत्कार देनेवाले बड़ा आश्चर्य उत्पन्न करते थे । इसलिए हे गौतम ! ऐसे ऐसे अनन्त गुण समुह से युक्त शरीरवाले अच्छी तरह से सम्मानपूर्वक ग्रहण किए गए नामवाले धर्मतीर्थ को प्रर्वतानेवाले अरिहंत भगवंत के गुण-गण समूह समान रत्ननिधान का बँयान इन्द्र महाराजा, अन्य किसी चार ज्ञानवाले या महा अतिशयवाले छद्मस्थ जीव भी रात दिन हरएक पल हजारों जँबान से करोड़ो साल तक करे तो भी स्वयंभूरमण समुद्र की तरह अरिहंत के गुण को बँयान नहीं कर शकते ।

क्योंकि हे गौतम ! धर्मतीर्थ प्रवर्तनेवाले अरिहंत भगवंत अपरिमित गुणरत्नवाले होते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । इसलिए यहाँ उनके लिए क्या बताए ? जहाँ तीन लोक के नाथ जगत के गुरु, तीन भुवन के एक बन्धु, तीन लोक के वैसे-वैसे उत्तम गुणके आधार समान श्रेष्ठ धर्म तीर्थंकर के वरण का एक अंगुठे के अग्र हिस्से का केवल एक हिस्सा कईं गुण के समूह से शोभायमान है । उसमें अनन्ता हिस्से का रूप इन्द्रादि वर्णन करने के लिए समर्थ नहीं है । ये बात विशेष बताते हुए कहते है :

देव और इन्द्र या वैसे किसी भक्ति में लीन हुए सर्व पुरुष कईं जन्मान्तर में उपार्जन किए गए अनिष्ट दुष्ट कर्मराशि जनित दुर्गति उद्वेग आदि दुःख दारिद्रय, कलेश, जन्म, जरा, मरण, रोग, संताप, खिन्नता, व्याधि, वेदना आदि के क्षय के लिए उनके अंगुठे के गुण का वर्णन करने लगे तो सूर्य के किरणों के समूह की तरह भगवान के जो कईं गुण का समूह एक साथ उनके जिह्वा के अग्र हिस्से पर स्फूरायमान होता है, उसे इन्द्र सहित देवगण एक साथ बोलने लगे तो भी जिसका वर्णन करने के लिए शक्तिमान नहीं है, तो फिर चर्म चक्षुवाले अकेवली क्या बोलेंगे ?

इसलिए हे गौतम ! इस विषय में यहाँ यह परमार्थ समजे कि तिर्थंकर भगवन्त के गुण सागर को अकेले केवलज्ञानी तिर्थंकर ही कहने के लिए शक्तिवर है । दुसरे किसी कहने के लिए समर्थ नहीं हो शकते । क्योंकि उनकी बोली सातिशय होती है । इसलिए वो कहने के लिए समर्थ है । या हे गौतम ! इस विषय में ज्यादा कहने से क्या ? सारभूत अर्थ बताता हूँ वो इस प्रकार है–

[४९५-४९६] समग्र आँठ तरह के कर्म समान मल के कलंक रहित, देव और इन्द्र से पूजित चरणवाले जीनेश्वर भगवंत का केवल नाम स्मरण करनेवाले मन, वचन, काया समान तीन कारण में एकाग्रतावला, पल-पल में शील और संयम में उद्यम-व्रत नियम में विराधना न करनेवाली आत्मा यकीनन अल्प काल में तुरन्त सिद्धि पाती है ।

[४९७-४९९] जो किसी जीव संसार के दुःख से उद्वेग पाए और मोक्ष सुख पाने की अभिलाषावाला बने तब वो "जैसे कमलवन में भ्रमण मग्न बन जाए उसी तरह" भगवंत को स्तवना, स्तुति मांगलिक जय जयारव शब्द करने में लीन हो जाए और झणझणते गुंजारव करते भक्ति पूर्व हृदय से जिनेश्वर के चरण-युगल के आगे भूमि पर अपना मस्तक स्थापन करके अंजलि जुड़कर शंकादि दुषण सहित सम्यकत्त्ववाला चारित्र का अर्थी अखंड़ित व्रत-नियम धारण करनेवाला मानवी यदि तीर्थंकर के एक ही गुण को हृदय में धारण करे तो वो जरुर सिद्धि पाता है ।

[५००] हे गौतम ! जिनका पवित्र नाम ग्रहण करना ऐसे उत्तम फलवाला है ऐसे तीर्थंकर भगवंत के जगत में प्रकट महान् आश्चर्यभूत, तीन भुवन में विशाल प्रकट और महान ऐसे अतिशय का विस्तार इस प्रकार का है ।

[५०१-५०३] केवलज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और चरम शरीर जिन्होंने प्राप्त नहीं किया ऐसे जीव भी अरिहंत के अतिशय को देखकर आँठ तरह के कर्म का क्षय करनेवाले होते है। ज्यादा दुःख और गर्भावास से मुक्त होते है, महायोगी होते है, विविध दुःख से भरे भवसागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से उद्विग्न बनते है । और पलभर में संसार से विरक्त मनवाला बन जाता है । या हे गौतम ! दुसरा कथन करना एक ओर रखकर, लेकिन इस तरह से धर्मतीर्थंकर ऐसे श्रेष्ठ अक्षरवाला नाम है । वो तीन भुवन के बन्धु, अरिहंत, भगवंत, जीनेश्वर, धर्म तीर्थंकर को ही शोभा देता है। दुसरों को यह नाम देना शोभा नहीं देता । क्योंकि उन्होंने मोह का उपशम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्तिक्य लक्षणयुक्त कईं जन्म में छूनेवाले प्रकट किए गए सम्यग्दर्शन और उल्लास पाए हुए पराक्रम की शक्ति को छिपाए बिना उग्र कष्टदायक घोर दुष्कर तप का हंमेशा सेवन करके उच्च प्रकार के महापुण्य स्कंध समुह को उपार्जित किया है । उत्तम, प्रवर, पवित्र, समग्र विश्व के बन्धु, नाम और श्रेष्ठ स्वामी बने होते है ।

अनन्ता काल से वर्तते भव की पापवाली भावना के योग से बाँधे हुए पापकर्म का छेदन करके अद्वितिय तीर्थंकर नामकर्म जिन्होंने बाँधा है । अति मनोहर, देदिप्यमान, दश दिशा में प्रकाशित, निरुपम ऐसे एक हजार और आँठ लक्षण-से शोभायमान होता है । जगत में जो उत्तम शोभा के निवास का जैसे वासगृह हो वैसी अपूर्व शोभावाले, उनके दर्शन होते ही उनकी शोभा देखकर देव और मानव अंतःकरण में आश्चर्य का अहेसास करते है, एवं नेत्र और मन में महान विस्मय और प्रमोद महसूस करते है । वो तीर्थंकर भगवंत समग्र पाप कर्म समान मैल के कलंक से मुक्त होते है । उत्तम समचतुरस्त्र संस्थान और श्रेष्ठ वजऋषभनाराच संघयण से युक्त परम पवित्र और उत्तम शरीर को धारण करनेवाले होते है ।

इस तरह के तीर्थंकर भगवंत महायशस्वी, महासत्त्वशाली, महाप्रभावी, परमेष्ठी हो वो ही धर्मतीर्थ को प्रवर्तनेवाले होते है । और फिर कहा है कि–

[५०४-५०८] समग्र मानव, देव, इन्द्र और देवांगना के रूप, कान्ति, लावण्य वो सब इकट्ठे करके उसका ढ़ग शायद एक और किया जाए और उसकी दुसरी ओर जिनेश्वर के चरण के अंगुठे के अग्र हिस्से का करोड़ या लाख हिस्से की उसके साथ तुलना की जाए तो वो देव-देवी के रूप का पिंड़ सुर्वण के मेरू पर्वत के पास रखे गए ढ़ग की तरह शोभारहित दिखता है । या इस जगत के सारे पुरुष के सभी गुण इकट्ठे किए जाए तो उस तीर्थंकर के गुण का अनन्तवां हिस्सा भी नहीं आता । समग्र तीन जगत इकट्ठे होकर एक ओर एक दिशा में तीन भुवन हो और दुसरी दिशा में तीर्थंकर भगवन्त अकेले ही हो तो भी वो गुण में अधिक होते है इसलिए वो परम पूजनीय है । वंदनीय, पूजनीय, अर्हन्त है । बुद्धि और मतिवाले है, इसलिए उसी तीर्थंकर को भाव से नमस्कार करो ।

[५०९-५१२] लोक में भी गाँव, पुर, नगर, विषय, देश या समग्र भारत का जो जितने देश का स्वामी होता है, उसकी आज्ञा को उस प्रदेश के लोग मान्य रखते है । लेकिन ग्रामाधिपति अच्छी तरह से अति प्रसन्न हुआ हो तो एक गाँव में से कितना दे ? जिसके पास जितना हो उसमें से कुछ दे । चक्रवर्ती थोड़ा भी दे तो भी उसके कुल परम्परा से चले आते (समग्र बंधु वर्ग का) दारिद्र नष्ट होता है । और फिर वो मंत्रीपन की, मंत्री चक्रवर्तीपन की, चक्रवर्ती सुरपतिपन की अभिलाषा करता है । देवेन्द्र, जगत के यथेच्छित सुखकुल को देनेवाले तीर्थंकरपन की अभिलाषा करते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[५१३-५१४] एकान्त लक्ष रखकर अति अनुराग पूर्वक इन्द्र भी जिस तीर्थंकर पद की इच्छा रखते है, ऐसे तीर्थंकर भगवंत सर्वोत्तम है । उसमें कोई संदेह नहीं । इसलिए समग्र देव, दानव, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्र आदि को भी तीर्थंकर पूज्य है । और वाकई में वो पाप नष्ट करनेवाले है ।

[५१५-५१६] तीन लोक में पूजनीय और जगत के गुरु ऐसे धर्मतीर्थंकर की द्रव्यपूजा और भावपूजा ऐसे दो तरह की पूजा बताई है । चारित्रानुष्ठान और कष्टवाले उग्र घोर तप का आसेवन करना वो भावपूजा और देशविरति श्रावक जो पूजा-सत्कार और दान-शील आदि धर्म सेवन करे वो द्रव्य पूजा । इसलिए हे गौतम ! यहाँ इसका तात्पर्य इस प्रकार समजो–

[५१७] भाव-अर्चन प्रमाद से उत्कृष्ट चारित्र पालन समान है । जब कि द्रव्य अर्चन जिनपूजा समान है । मुनि के लिए भाव अर्चन है और श्रावक के लिए दोनो अर्चन बताए है । उसमें भाव अर्चन प्रशंसनीय है ।

[५१८] हे गौतम ! यहाँ कुछ शास्त्र के परमार्थ को न समजनेवाले अवसन्न शिथिलविहारी, नित्यवासि, परलोक के नुकशान के बारे में न सोचनेवाले, अपनी मति के अनुसार व्यवहार करनेवाले, स्वच्छंद, ऋद्धि, रस, शाता-गारव आदि में आसक्त हुए, राग-द्वेष, मोह-अंधकार-ममत्त्व आदि में अति प्रतिबद्ध रागवाले, समग्र संयम समान सद्धर्म से पराङ्मुख, निर्दय, लज्जाहीन, पाप की धृणा रहित, करुणा रहित, निर्दय, पाप आचरण करने में अभिनिवेश-कदाग्रह बुद्धिवाला, एकान्त में जो अति चंड़, रूद्र और क्रुर अभिग्रह करनेवाली मिथ्यादृष्टि, सर्व संग, आरम्भ, परिग्रह से रहित होकर, त्रिविध-त्रिविध से (मन, वचन, काया से कृत, कारित, अनुमित से) द्रव्य से सामायिक ग्रहण करता है लेकिन भाव से ग्रहण नहीं करता, नाम मात्र ही मस्तक मुंड़न करवाते है । नाम से ही अणगार-घर छोड़ दिया है । नाम का ही महाव्रतधारी है श्रमण होने के बावजुद भी विपरीत मान्यता करके सर्वथा उन्मार्ग का सेवन और प्रवर्तन करते है । वो इस प्रकार–

हम अरिहंत भगवंत की गन्ध, माला, दीपक, संमार्जन, लिंपन, वस्त्र, बलि, धूप आदि की पूजा सत्कार करके हंमेशा तीर्थ की प्रभावना करते है । उसके अनुसार माननेवाले उन्मार्ग प्रवर्तति है । इस प्रकार उनके कर्तव्य साधु धर्म के अनुरूप नहीं है । हे गौतम ! वचन से भी उनके इस कर्तव्य की अनुमोदना नहीं करनी चाहिए ।

हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वचन से भी उनके इस द्रव्यपूजन की अनुमोदना न करे ? हे गौतम ! उनके वचन के अनुसार असंयम की बहुलता और मूल गुण नष्ट हो इससे कर्म का आश्रव हो और फिर अध्यवसाय को लेकर स्थुल और सूक्ष्म शुभाशुभ कर्म प्रकृत्ति का बंध हो, सर्व सावद्य की की गई विरति समान महाव्रत का भंग हो, व्रत भंग होने से आज्ञा उल्लंघन का दोष लगे, उससे उन्मार्गगामीपन पाए, उससे सन्मार्ग का लोप हो, उन्मार्ग प्रवर्तन करना और सन्मार्ग का विप्रलोप करना यति के लिए महाआशातना समान है । क्योंकि वैसी महाआशातना करनेवाले को अनन्ता काल तक चार गति में जन्म-मरण के फेरे करने पड़ते है । इस कारण से वैसे वचन की अनुमोदना नहीं करनी चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[५१९-५२०] द्रव्यस्तव और भावस्तव इन दोनों में भाव-स्तव बहुत गुणवाला है । "द्रव्यस्तव" काफी गुणवाला है ऐसा बोलनेवाले की बुद्धि में समजदारी नहीं है । हे गौतम ! छ काय के जीव का हित-रक्षण हो ऐसा व्यवहार करना । यह द्रव्यस्तव गन्ध पुष्पादिक से प्रभुभक्ति करना उन समग्र पाप का त्याग न किया हो वैसे देश-विरतिवाले श्रावक को युक्त माना जाता है । लेकिन समग्र पाप के पच्चक्खाण करनेवाले संयमी साधु को पुष्पादिक की पूजा समान, द्रव्यस्तव करना कल्पता नहीं ।

[५२१-५२२] हे गौतम ! जिस कारण से यह द्रव्यस्तव और भावस्तव रूप दोनो पूजा बत्तीस इन्द्र ने की है तो करनेलायक है ऐसा शायद तुम समज रहे हो तो उसमें इस प्रकार समजना । यह तो केवल उनका विनियोग पाने की अभिलाषा समान भाव-स्तव माना है। अविरति ऐसे इन्द्र को भावस्तव (छ काय जीव की त्रिविध त्रिविध से दया स्वरूप) नामुमकीन है दशार्णभद्र राजा ने भगवंत का आडंबर से सत्कार किया वो द्रव्यपूजा और इन्द्र के सामने मुकाबले में हार गए तब भावस्तव समान दीक्षा अंगीकार की । तब इन्द्र को भी हराया : वो दृष्टांत का यहाँ लागु करना, इसलिए भाव स्तव ही उत्तम है ।

[५२३-५२६] चक्रवर्ती, सूर्य, चन्द्र, दत्त, दमक आदि ने भगवान को पूछा कि क्या सर्व तरह की ऋद्धि सहित कोई न कर शके उस तरह भक्ति से पूजा-सत्कार किए वो क्या सर्व सावद्य समजे ? या त्रिविध विरतिवाला अनुष्ठान समजे या सर्व तरह के योगवाली विरती के लिए उसे पूजा माने ? हे भगवंत, इन्द्र ने तो उनकी सारी शक्ति से सर्व प्रकार की पूजा की है । हे गौतम ! अविरतिवाले इन्द्र ने उत्तम तरह की भक्ति से पूजा सत्कार किए हो तो भी वो देश विरतिवाले और अविरतिवाले के यह द्रव्य/ और भावस्तव ऐसे दोनों का विनियोग उसकी योग्यतानुसार जुड़ना ।

[५२७] हे गौतम ! सर्व तीर्थंकर भक्त ने समग्र आँठ कर्म का निर्मूलक्षय करनेवाले ऐसे चारित्र अंगीकार करने समान भावस्तव का खुद आचरण किया है ।

[५२८-५३०] भव से भयभीत ऐसे उनको जहाँ-जहाँ आना, जन्तु को स्पर्श आदि प्रपुरुषन-विनाशकारण प्रवर्तता हो, स्व-पर हित से विरमे हुए हो उनका मन वैसे सावद्य कार्य में नहीं प्रवर्तता । इसलिए स्व-पर अहित से विरमे हुए संयत को सर्व तरह से सुविशेष परम सारभूत ज्यादा लाभप्रद ऐसे ऐसे अनुष्ठान का सेवन करना चाहिए । मोक्ष-मार्ग का परम सारभूत विशेषतावाला एकान्त करनेवाला पथ्य सुख देनेवाला प्रकट परमार्थ रूप कोई अनुष्ठान हो तो केवल सर्व विरति समान भावस्तव है । वो इस प्रकार–

[५३१-५३७] लाख योजन प्रमाण मेरु पर्वत जैसे ऊँचे, मणिसमुद्र से शोभायमान, सुवर्णमय, परम मनोहर, नयन और मन को आनन्द देनेवाला, अति विज्ञानपूर्ण, अति मजबूत, दिखाई न दे उस तरह जुड़ दिया हो ऐसा, अति घिसकर मुलायम बनाया हुआ, जिसके हिस्से अच्छी तरह से बाँटे गए है ऐसा कई शिखरयुक्त, कईं घंट और ध्वजा सहित, श्रेष्ठ तोरण युक्त कदम-कदम पर आगे-आगे चलने से जहाँ (पर्वत) या राजमहल समान शोभा दिखाई देती हो। वैसे, अगर, कपुर, चंदन आदि का बनाया हुआ धूप जो अग्नि में ड़ालने से महकता हो, कईं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह के कई वर्णवाले आश्चर्यकारी सुन्दर पुष्प समूह से अच्छी तरह से पूजे गए, जिसमें नृत्य पूर्ण कई नाटिका से आकुल,मधुर, मृदंग के शब्द फैले हुए हो, सेंकड़ों उत्तम आशयवाले लोगो से आकुल, जिसमें जिनेश्वर भगवंत के चारित्र और उपदेश का श्रवण करवाने की कारण से उत्कंठित हुए चित्तयुक्त लोग हो, जहाँ कहने की कथाएँ, व्याख्याता, नृत्य करनेवाले, अप्सरा, गंधर्व, वाजिंत्र के शब्द, सुनाई दे रहे हो । यह बताए गुण समुहयुक्त इस पृथ्वी में सर्वत्र अपनी भुजा से उपार्जन किए गए न्यायोपार्जित अर्थ से सुवर्ण के, मणि के और रत्न के दादरवाला, उसी तरह के हजार स्तंभ जिसमें खड़े किए गए हो, सुवर्ण का बनाया हुआ भूमितल हो, ऐसा जिन्मंदिर जो बनवाए उससे भी तप और संयम कईं गुणवाले बताए है ।

[५३८-५४०] इस प्रकार तपसंयम द्वारा कईं भव के उपार्जन किए पापकर्म के मल समान लेप को साफ करके अल्पकाल में अनन्त सुखवाला मोक्ष पाता है । समग्र पृथ्वी पट्ट को जिनायतन से शोभायमान करनेवाले दानादिक चार तरह का सुन्दर धर्म सेवन करनेवाला श्रावक ज्यादा से ज्यादा अच्छी गति पाए तो भी बारहवें देवलोक से आगे नहीं नीकल शकता। लेकिन अच्युत नाम के बारहवे देवलोक तक ही जा शकते है ।

[५४१-५४२] हे गौतम ! लवसत्तम देव यानि सर्वार्थसिद्ध में रहनेवाले देव भी वहाँ से च्यवकर नीचे आते है फिर बाकी के जीव के बारे में सोचा जाए तो संसार में कोई शाश्वत या स्थिर स्थान नहीं है । लम्बे काल के बाद जिसमें दुःख मिलनेवाला हो वैसे वर्तमान के सुख को सुख कैसे कहा जाए ? जिसमें अन्त में मौत आनेवाली हो और अल्पकाल का श्रेय वैसे सुख को तुच्छ माना है । समग्र नर और देव का सर्व लम्बे काल तक इकट्ठा किया जाए तो भी वो सुख मोक्ष के अनन्त हिस्से जितना भी श्रवण या अनुभव कर शके ऐसा नहीं है ।

[५४३-५४५] हे गौतम ! अति महान ऐसे संसार के सुख की भीतर कईं हजार घोर प्रचंड़ दुःख छिपे है । लेकिन मंद बुद्धिवाले शाता वेदनीय कर्म के उदय में उसे पहचान नहीं शकता । मणि सुवर्ण के पर्वत में भीतर छिपकर रहे लोह रोड़ा की तरह या वणिक पुत्री की तरह [यह किसी अवसर का पात्र है । वहाँ ऐसा अर्थ नीकल शकता है कि जिस तरह कुलवान लज्जावाली और घुँघट नीकालनेवाली वणिक पुत्री का मुँह दुसरे नहीं देख शकते वैसे मोक्ष सुख भी बँयान नहीं किया जाता ।] नगर के अतिथि की तरह रहकर आनेवाला भील राजमहल आदि के नगरसुख को बँयान नहीं कर शकते । वैसे यहाँ देवता, असुर और मनुष्य के जगत में मोक्ष के सुख को समर्थ ज्ञानी पुरुष भी बँयान नहीं कर शकते ।

[५४६] दीर्धकाल के बाद भी जिसका अन्त दिखाई न दे उसे पुण्य किस तरह कह शकते है । और फिर जिसका अन्त दुःख से होनेवाला हो और जो संसार की परम्परा बढ़ानेवाला हो उसे पुण्य या सुख किस तरह कह शकते है ?

[५४७] वो देव विमान का वैभव और फिर देवलोक में से च्यवन हो । इन दोनों के बारे में सोचनेवाला का हृदय वाकईं वैक्रिय शरीर के मजबूती से बनाया है । वरना उसके सो टुकड़े हो जाए ।

[५४८-५४९] नरकगति के भीतर अति दुःसह ऐसे जो दुःख है उसे करोड़ साल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीनेवाला वर्णन शुरू करे तो भी पूर्ण न कर शके । इसलिए हे गौतम ! दस तरह का यति-धर्म घोर तप और संयम का अनुष्ठान आराधन वो रूप भावस्तव से ही अक्षय, मोक्ष, सुख पा शकते है ।

[५५०] नारकी के भव में, तिर्यंच के भव में, देवभव में या इन्द्ररूप में उसे पा नहीं शकते कि जो किसी मानव भव में पा शकते है ।

[५५१] अति महान बहोत चारित्रावरणीय नाम के कर्म दूर हो तब ही है गौतम ! जीव भावस्तव करने की योग्यता पा शकते है ।

[५५२] जन्मान्तर में उपार्जित बड़े पुण्य समूह को और मानव जन्म को प्राप्त किए बिना उत्तम चारित्र धर्म नहीं पा शकते ।

[५५३] अच्छी तरह से आराधन किए हुए, शल्य और दंभरहित होकर जो चारित्र के प्रभाव से तुलना न की हो वैसे अनन्त अक्षय तीन लोक के अग्र हिस्से पर रहे मोक्ष सुख पाते है ।

[५५४-५५६] कईं भव में ईकट्ठे किए गए, ऊँचे पहाड़ समान, आँठ पापकर्म के ढ़ग को जला देनेवाले विवेक आदि गुण-युक्त मानव जन्म प्राप्त किया । ऐसा उत्तम मानव जन्म पाकर जो कोई आत्महित और श्रुतानुसार आश्रव निरोध नहीं करते और फिर अप्रमत्त होकर अट्ठारह हजार शीलांग को जो धारण नहीं करते । वो दीर्धकाल तक लगातार घोर दुःखाग्नि के दावानल में अति उद्वेगपूर्वक शेकते हुए अनन्ती बार जलता रहता है ।

[५५७-५६०] अति बदबूवाले विष्टा, प्रवाही, क्षार-पित्त, उल्टी, बलखा, कफ आदि से परिपूर्ण चरबी ओर, परु, गाढ़ अशुचि, मलमूत्र, रूधिर के कीचड़वाले कढ़कढ़ करते हुए नीकलनेवाला, चलचल करते हुए चलायमान किए जानेवाला, ढ़लढ़ल करते हुए ढ़लनेवाला, रझोड़ते हुए सर्व अंग इकट्ठे करके सिकुड़ा हुआ गर्भावास में कईं योनि में रहता था । नियंत्रित किए अंगवाला, हर एक योनिवाले गर्भावास में पुनः पुनः भ्रमण करता था, अब मुजे संताप-उद्वेग जन्मजरा मरण गर्भावास आदि संसार के दुःख और संसार की विचित्रता से भयभीत होनेवाले ने इस समग्र भय को नष्ट करनेवाले भावस्तव के प्रभाव को जानकर उसके लिए दृढ़ पन से अति उद्यम और प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

[५६१] उस प्रकार विद्याधर, किन्नर, मानव, देव असुरवाले जगत ने तीन भुवन में उत्कृष्ट ऐसे जिनेश्वर की द्रव्यस्तव और भावस्तव ऐसे दो तरह से स्तुति की है ।

[५६२-५६९] हे गौतम ! धर्म तीर्थंकर भगवंत, अरिहंत, जिनेश्वर जो विस्तारवाली ऋद्धि पाए हुए है । ऐसी समृद्धि स्वाधीन फिर भी जगत् बन्धु पलभर उसमें मन से भी लुभाए नहीं । उनका परमैश्वर्य रूप शोभायमय लावण्य, वर्ण, बल, शरीर प्रमाण, सामर्थ्य, यश, कीर्ति जिस तरह देवलोक में से च्यवकर यहाँ अवतरे, जिस तरह दुसरे भव में, उग्र तप करके देवलोक पाया । एक आदि विशस्थानक की आराधना करके जिस तरह तीर्थंकर नामकर्म बाँधा, जिस तरह सम्यक्त्व पाया । बाकी भव में श्रमणपन की आराधना की, सिद्धार्थ राजा की रानी त्रिशला को चौदह महा सपने की जिस तरह प्राप्ति हुई । जिस तरह गर्भावास में से अशुभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशुचि चीज का दूर होना और सुगंधी सुवास स्थापन किया । इन्द्र राजा ने बड़ी भक्ति से अंगूठे के पर्व में अमृताहार का न्यास किया । जन्म हुआ तब तक भगवंत की इन्द्रादिक स्तवना करते थे और फिर...जिस प्रकार दिशिकुमारी ने आकर जन्म सम्बन्धी सूतिकर्म किए । बत्तीस देवेन्द्र गौरववाली भक्ति से महा आनन्द सहित सर्व ऋद्धि से सर्व तरह के अपने कर्तव्य जिस तरह से पूरे किए, मेरु पर्वत के शिखर पर प्रभु का जन्माभिषेक करते थे तब रोमांच रूप कंचुक से पुलकित हुए देहवाले, भक्तिपूर्ण, गात्रवाले ऐसा सोचने लगे कि वाकई हमारा जन्म कृतार्थ हुआ ।

[५७०-५७९] पलभर हाथ हिलाना, सुन्दर स्वर में गाना, गम्भीर दुंदुभि का शब्द करते, क्षीर समुद्र में से जैसे शब्द प्रकट हो वैसे जय जय करनेवाले मंगल शब्द मुख से नीकलते थे और जिस तरह दो हाथ जुड़कर अंजलि करते थे, जिस तरह क्षीर सागर के जल से कई खुशबुदार चीज की खुशबु से सुवासित किए गए सुवर्ण मणि रत्न के बनाए हुए ऊँचे कलश से जन्माभिषेक महोत्सव देव करते थे, जिस तरह जिनेश्वर ने पर्वत को चलायमान किया । जिस तरह भगवंत आँठ साल के थे फिर भी "इन्द्र व्याकरण" बनाया । जिस तरह कुमारपन बिताया, शादी करनी पड़ी । जिस तरह लोकांतिक देव ने प्रतिबोध किया । जिस तरह हर्षित सर्व देव और असुर ने भगवान की दीक्षा का महोत्सव किया, जिस तरह दिव्य मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी घोर परिषह सहन किए । जिस तरह घोर तपस्या ध्यान योग से अग्नि से चार घनघाती कर्म जला दिए । जिस तरह लोकालोक को प्रकाशीत करनेवाला केवलज्ञान उपार्जन किया, फिर से भी जिस तरह देव और असुर ने केवलज्ञान की महिमा करके धर्म, नीति, तप, चारित्र विषयक संशय पूछे । देव के तैयार किए हुए सिंहासन पर बिराजमान होकर जिस तरह श्रेष्ठ समवसरण तैयार किया । जिस तरह देव उनकी ऋद्धि और जगत की ऋद्धि दोनों की तुलना करते थे समग्र भुवन के एक गुरु महाशयवाले अरिहंत भगवंतने जहाँ जहाँ जिस तरह विचरण किया । जिस तरह आँठ महाप्रतिहार्य के सुंदर चिन्ह जिन तीर्थ में होते है । जिस तरह भव्य जीव के अनादिकाल के चिकने मिथ्यात्त्व के समग्र कर्म को निर्दलन करते है, जिस तरह प्रतिबोध करके मार्ग में स्थापन करके गणधर को दीक्षित करते है । और फिर महाबुद्धिवाले वो सूत्र बुनते है । जिस तरह जिनेन्द्र अनन्तगम पर्याय-समग्र अर्थ गणधर को कहते है ।

[५८०-५८५] जिस तरह जगत के नाथ सिद्धि पाते है, जिस तरह सर्व सुरवरेन्द्र उनका निर्वाण महोत्सव करते है और फिर भगवंत की गेरमोजुदगी में शोक पाए हुए वो देव अपने गात्र को बहते अश्रुजल के सरसर शब्द करनेवाले प्रवाह से जिस तरह धो रहे थे । और फिर दुःखी स्वर से विलाप करते थे कि हे स्वामी ! हमे अनाथ बनाया । जिस तरह सुरभी गंध युक्त गोशीर्ष चंदनवृक्ष के काष्ट से सर्व देवेन्द्र ने विधिवत् भगवंत के देह का अग्निसंस्कार किया । संस्कार करने के बाद शोक पानेवाले शून्य दश दिशा के मार्ग को देखते थे । जिस तरह क्षीर-सागर में जिनेश्वर के अस्थि को प्रक्षालन करके देवलोक में ले जाकर श्रेष्ठ चंदन रस से उन अस्थि का विलेपन करके अशोकवृक्ष, पारिजात वृक्ष के पुष्प और शतपत्र सहस्र पत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाति के कमल से उसकी पूजा करके अपने अपने भवन में जिस तरह स्तुति करते थे । (वो सर्व वृतांत्त महा विस्तार से अरिहंत चरित्र नाम) अंतगड़ दशा से जानना ।

[५८६-५८९] यहाँ अभी जो चालु अधिकार है उसे छोड़कर यदि यह कहा जाए तो विषयान्तर असंबद्धता और ग्रंथ का लम्बा विस्तार हो जाए । प्रस्ताव न होने के बावजूद भी इतना भी हमने निरुपण किया उसमें अति बडा कारण उपदेशीत है जो यहाँ बताया है । उन भव्य सत्त्व के उपकार के लिए कहा गया है । अच्छे वसाणा से मिश्रित मोदक का जिस तरह भक्षण किया जाता है, वैसे लोगों में अति बड़ी मानसिक प्रिती उत्पन्न होती है । उस तरह यहाँ अवसर न होने के बावजूद भी भक्ति के बोझ से निर्भर और निजगुण ग्रहण करने में खींचे हुए चित्तवाले भवात्मा को बड़ा हर्ष उत्पन्न होता है ।

[५९०] यह पंचमंगल महाश्रुतस्कंध नवकार का व्याख्यान महा विस्तार से अनन्तगम और पर्याय सहित सूत्र से भिन्न ऐसे निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि से अनन्त ज्ञान-दर्शन धारण करनेवाले तीर्थंकर ने जिस तरह व्याख्या की थी । उसी तरह संक्षेप से व्याख्यान किया जाता था । लेकिन काल की परिहाणी होने के दोष से वो निर्युक्ति भाष्य, चूर्णिका विच्छेद पाकर इस तरह का समय-काल बह गया था, तब महा-ऋद्धि, लब्धि, संपन्न पदानुसारी लब्धिबाले व्रजस्वामी नाम के बारह अंग रूप श्रुत को धारण करनेवाले उत्पन्न हुए...उन्होंने पंचमंगल महा-श्रुतस्कंध का यह उद्धार मूल सूत्र के बीच लिखा । गणधर-भगवंत ने मूलसूत्र को सूत्रपन से, धर्म तीर्थंकर अरहंत भगवंत ने अर्थ से बताया । तीन लोक से पूजित वीर जिनेन्द्र ने इसकी प्ररूपणा की इस प्रकार से वृद्ध आचार्य का सम्प्रदाय है ।

[५९१] यहाँ जहाँ जहाँ पद पद के साथ जुड़े हो और लगातार सूत्रालापक प्राप्त न हो वहाँ श्रुतधर ने लहीयाओं ने झूठ लिखा है । ऐसा दोष मत देना लेकिन जो किसी इस अचिन्त्य चिन्तामणी और कल्पवृक्ष समान महानिशिथ श्रुतस्कंध की पूर्वादर्श पहले की लिखी हुई प्रति थी उसमें ही ऊधई आदि जीवांत से खाकर उस कारण से टुकड़ेवाली प्रत हो गई । काफी पत्ते सड़ गए तो भी अति अतिशयवाला बड़े अर्थ से भरपूर यह महानिशीथ श्रुतस्कंध है । समग्र प्रवचन के परम सारभूत श्रेष्ठ तत्त्वपूर्ण महा, अर्थ, गर्भित है ऐसा जानकर प्रवचन के वात्सल्य से कई भव्यजीव को उपकारमंद होंगे ऐसा मानकर और अपने आत्मा के हित के लिए आचार्य हरिभद्रसूरी ने जो उस आदर्श मे लिखा, वो सर्व अपनी मति से शुद्ध करके लिखा है । दुसरे भी आचार्य-सिद्धसेन दिवाकर, वृद्धवादी, यक्षसेन, देवगुप्त, यशोवर्धन, क्षमाश्रमण के शिष्य रविगुप्त, नेमिचन्द्र, जिनदासगणि, क्षमक, सत्यर्षी आदि युग प्रधान श्रुतधर ने उसे बहुमान्य रखा है ।

[५९२] हे गौतम ! इस प्रकार आगे कहने के अनुसार विनय-उपधान सहित पंचमंगल महा-श्रुतस्कंध नवकार को पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी से स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिन्दु और पदाक्षर से शुद्ध तरह से पढ़कर उसे दिल में स्थिर और परिचित करके महा विस्तार से सूत्र और अर्थ जानने के बाद क्या पढ़ना चाहिए ?

हे गौतम ! उसके बाद इरियावाहिय सूत्र पढ़ना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहलाता है कि पंचमंगल महा श्रुतस्कंध को पढने के बाद ईरियावहिय सूत्र पढ़ना चाहिए ?

हे गौतम ! हमारी यह आत्मा जब-जब आना-जाना आदि क्रिया के परीणाम में परिणत हुआ हो, कई जीव, प्राण, भूत और सत्त्व के अनुपयोग या प्रमाद से संघट्टन, उपद्रव या किलामणा करके फिर उसका आलोचन प्रतिक्रमणन किया जाए और समग्र कर्म के क्षय के लिए चैत्यवंदन, स्वाध्याय, ध्यान आदि किसी अनुष्ठान किया जाए उस वक्त एकाग्र चित्तवाली समाधि हो या न भी हो, क्योंकि गमनागमन आदि कई अन्य व्यापार के परीणाम में आसक्त होनेवाले चित्त से कुछ जीव उसके पूर्व के परीणाम को न छोड़े और दुर्ध्यान के परीणाम में कुछ काल वर्तता है । तब उसके फल में विसंवाद होता है । और जब किसी तरह अज्ञान मोह प्रमाद आदि के दोष से अचानक एकेन्द्रियादिक जीव के संघट्टन या परितापन आदि हो गए हो और उसके बाद अरेरे ! यह हमसे बूरा काम हो गया । हम कैसे सज्जड़ राग, द्वेष मोह, मिथ्यात्व और अज्ञान में अंध बन गए है । परलोक में इस काम के कैसे कटु फल भुगतने पड़ेंगे उसका खयाल भी नहीं आता वाकई हम क्रुर कर्म और निर्दय व्यवहार करनेवाले है । इस प्रकार पछतावा करते हुए और अति संवेग पानेवाली आत्माए अच्छी तरह से प्रकट पन में इरियावहिय सूत्र से दोष की आलोचना करके, बुराई करके, गुरु के सामने गर्हा करके, प्रायश्चित का सेवन करके शल्य रहित होता है । चित्त की स्थिरवाला अशुभकर्म के क्षय के लिए जो कुछ आत्महित के लिए उपयोगवाला हो, जब वो अनुष्ठान में उपयोगवाला बने तब उसे परम एकाग्र चित्तवाली समाधि प्राप्त होती है । उससे सर्व जगत के जीव, प्राणीभूत और सत्त्व को जो ईष्टफल हो वैसी इष्टफल की प्राप्ति होती है ।

उस कारण से हे गौतम ! इरियावहिय पड़िक्कमे बिना चैत्यवंदन स्वाध्यायादिक किसी भी अनुष्ठान न करना चाहिए । यदि यथार्थफल की अभिलाषा रखता हो तो, इस कारण से कि गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि पंचमंगल महाश्रुतस्कंध नवकार सूत्र अर्थ और तदुभय सहित स्थिर-परिचित करके फिर इरियावहिय सूत्र पढ़ना चाहिए ।

[५९३] हे भगवंत ! किस विधि से इरियावहिय सूत्र पढ़ना चाहिए ? हे गौतम ! पंच मंगल महाश्रुतस्कंध की विधि के अनुसार पढ़ना चाहिए ।

[५९४] हे भगवंत ! इरियावहिय सूत्र पढ़कर फिर क्या करना चाहिए ? हे गौतम ! शक्रस्तव आदि चैत्यवंदन पढ़ना चाहिए । लेकिन शक्रस्तव एक अट्ठम और उसके बाद उसके उपर बत्तीस आयंबिल करने चाहिए । अरहंत सत्व यानि अरिहंत चेईआणं एक उपवास और उस पर पाँच आयंबिल करके । चौबीसस्तव-लोगस्स, एक छट्ठ, एक उपवास पर पचीस आयंबिल करके । श्रुतस्तव-पुक्खरवरदीवड्ढे सूत्र, एक उपवास और उपर पाँच आयंबिल करके विधिवत् पढ़ना चाहिए ।

उस प्रकार स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिन्दु, पदच्छेद, पद, अक्षर से विशुद्ध, एक पद के अक्षर दुसरे में न मिल जाए, उसी तरह वैसे दुसरे गुण सहित बताए सूत्र का अध्ययन करना। यह बताई गई तपस्या और विधि से समग्र सूत्र और अर्थ का अध्ययन करना । जहाँ जहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई संदेह हो वहाँ वहाँ उस सूत्र को फिर से सोचना । सोचकर निःशंक अवधारण करके निःसंदेह करना ।

[५९५] इस प्रकार सूत्र, अर्थ और उभय सहित चैत्यवंदन आदि विधान पढ़कर उसके बाद शुभ तिथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र योग, लग्न और चन्द्रबल का योग हुआ हो उस समय यथाशक्ति जगद्गुरु तीर्थंकर भगवन्त को पूजने लायक उपकरण इकट्ठे करके साधु भगवंत को प्रतिलाभी का भक्ति पूर्ण हृदयवाला रोमांचित बनकर पुलकित हुए शरीरवाला, हर्षित हुए मुखारविंदवाला, श्रद्धा, संवेग, विवेक परम वैराग से और फिर जिसने गहरे राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व समान मल कलंक को निर्मूलपन से विनाश किया है वैसी, सुविशुद्ध, अति निर्मल, विमल, शुभ, विशेष शुभ इस तरह के आनन्द पानेवाले, भुवनगुरु जिनेश्वर की प्रतिमा के लिए स्थापना किये हुए दृष्टि और मानसवाला, एकाग्र चित्तवाला वाकई में धन्य हूँ, पुण्यशाली हूँ । जिनेश्वर को वंदन करने से मैंने मेरा जन्म सफल किया है ।

ऐसा मानते हुए ललाट के ऊपर दो हाथ जोड़कर अंजलि की रचना करनेवाले सजीव वनस्पति बीज जन्तु आदि रहित भूमि के लिए दोनों जानुओ स्थापन करके अच्छी तरह से साफ हृदय से सुन्दर रीती से जाने हुए समजे हुए जिसने यथार्थ सूत्र अर्थ और तदुभव निःशंकित किए है ऐसा, पद-पद के अर्थ की भावना भाता हुआ, दृढ़ चारित्र, शास्त्र को जाननेवाला, अप्रमादातिशय आदि कई गुण संपत्तिवाले गुरु के साथ, साधु, साध्वी, साधर्मिक बन्धुवर्ग परिवार सहित प्रथम उसको चैत्य को जुहारना चाहिए । उसके बाद यथाशक्ति साधर्मिक बन्धु को प्रणाम करने पूर्वक अति किंमती कोमल साफ वस्त्र की पहरामणी करके उसका महा आदर करना चाहिए उनका सुन्दर सम्मान करना । इस वक्त शास्त्र के सार जिन्होंने अच्छी तरह से समझा है । ऐसे गुरु महाराज को विस्तार से आक्षेपणी निक्षेपणी धर्मकथा कहकर संसार का निर्वेद उत्पाद श्रद्धा, संवेग वर्धक धर्मोपदेश देना चाहिए ।

[५९६-५९७] उसके बाद परम श्रद्धा संवेग तत्पर बना जानकर जीवन पर्यन्त के कुछ अभिग्रह देना । जैसे कि हे देवानुप्रिय ! तुने वाकई ऐसा सुन्दर मानवभव पाया उसे सफल किया । तुझे आज से लेकर जावज्जीव हंमेशा तीन काल जल्दबाझी किए बिना शान्त और एकाग्र चित्त से चैत्य का दर्शन, वंदन करना, अशुचि अशाश्वत क्षणभंगुर ऐसी मानवता का यही सार है । रोज सुबह चैत्य और साधु को वंदन न करु तब तक मुख में पानी न डालना। दोपहर के वक्त चैत्यालय में दर्शन न करूँ तब तक मध्याहन भोजन न करना । शाम को भी चैत्य के दर्शन किए बिना संध्याकाल का उल्लंघन न करना । इस तरह के अभिग्रह या नियम जीवनभर के करवाना । उसके बाद हे गौतम ! आगे बताएंगे उस (वर्धमान) विद्या से मंत्रीत करके गुरु को उसके मस्तक पर साँत गंधचूर्ण की मुष्ठि ड़ालनी और ऐसे आशीर्वाद के वचन कहना कि–इस संसार समुद्र का निस्तार करके पार पानेवाला बन ।

वर्धमान विद्या-ॐ नमो भगवओ अरहओ सिज्झउ मे भगवती महाविज्जा वीरे महावीरे जयवीर सेणवीरे वद्धमाण वीरे जयंते अपराजिए स्वाहा ।

उपवास करके विधिवत् साधना करनी चाहिए । इस विद्या से हरएक धर्माराधना में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तूं पार पानेवाला बन । बड़ी दीक्षा में, गणीपद की अनुज्ञा में साँत बार इस विद्या का जप करना और निन्थारग पारगा होह...ऐसा कहना । अंतिम साधना अनसन अंगीकार करे तब मंत्रीत करके वासक्षेप किया जाए तो आत्मा आराधक बनता है । इस विद्या के प्रभाव से विघ्न के समूह उपशान्त उत्पन्न होता है । शुरवीर पुरुष संग्राम में प्रवेश करे तो किसी से पराभव नहीं होता । कल्प की समाप्ति में मंगल और क्षेम करनेवाला होता है ।

[५९८] और फिर साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका समग्र नजदीकी साधर्मिक भाई, चार तरह के श्रमण संघ के विघ्न उपशान्त होते है और धर्मकार्य में सफलता पाते है । और फिर उस महानुभाव को ऐसा कहना कि वाकई तुम धन्य हो, पुण्यवंत हो, ऐसा बोलते-बोलते वासक्षेप मंत्र करके ग्रहण करना चाहिए ।

उसके बाद जगद्गुरु जिनेन्द्र की आगे के स्थान में गंधयुक्त, न मुर्झाई हुई श्वेत माला ग्रहण करके गुरु महाराज अपने हस्त से दोनों खंभे पर आरोपण करते हुए निःसंदेह रूप से इस प्रकार कहना–कि–अरे महानुभाव ! जन्मान्तर में उपार्जित किए महापुण्य समूहवाले ! तुने तेरा पाया हुआ, अच्छी तरह से उपार्जित करनेवाला मानव जन्म सफल किया, हे देवानुप्रिय ! तुम्हारे नरकगति और तिर्यंचगति के द्वार बन्द हो गए । अब तुजे अपयश अपकिर्ती हल्के गौत्र कर्म का बँध नहीं होगा । भवान्तर में जाएगा वहां तुम्हे पंच नमस्कार अति दुर्लभ नहीं होगा । भावि जन्मान्तर में पंच नमस्कार के प्रभाव से जहाँ-जहाँ उत्पन्न होगा वहाँ वहाँ उत्तम जाति, उत्तम कुल, उत्तम पुरुष, सेहत, संपत्ति प्राप्त होगी । यह चीजे यकीनन तुम्हें मिलेगी ही ।

और फिर पंच नमस्कार के प्रभाव से तुम्हें दासपन, दारिद्र, बदनसीबी, हीनकुल में जन्म, विकलेन्द्रियपन नहीं मिलेगा । ज्यादा क्या कहना ? हे गौतम ! इस बताई हुए विधि से जो कोई पंच-नमस्कार आदि नित्य अनुष्ठान और अट्ठारह हजार शीलांग के लिए रमणता करनेवाला हो, शायद वो सराग से संयम क्रिया का सेवन करे उस कारण से निर्वाण न पाए तो भी ग्रैवेयक अनुत्तर आदि उत्तम देवलोक में दीर्घकाल आनन्द पाकर यहाँ मानवलोक में उत्तमकुल में जन्म पाकर उत्कृष्ट सुन्दर लावण्य युक्त सर्वांग सुन्दर देह पाकर सर्व कला में पारंगत होकर लोगों के मन को आनन्द देनेवाला होता है, सुरेन्द्र समान ऋद्धि प्राप्त करके एकान्त दया और अनुकंपा करने में तत्पर, कामभोग से व्यथित यथार्थ धर्माचरण करके कर्मरज को छोडकर सिद्धि पाता है ।

[५९९] हे भगवंत ! क्या जिस तरह पंच मंगल उपधान तप करके विधिवत् ग्रहण किया उसी तरह सामायिक आदि समग्र श्रुतज्ञान पढ़ना चाहिए ?

हे गौतम ! हा, उसी प्रकार विनय और उपधान तप करने लायक विधि से अध्ययन करना चाहिए । खास करके वो श्रुतज्ञान पढ़ाते वक्त अभिलाषावाले को सर्व कोशीश से आँठ तरह के कालादिक आचार का रक्षण करना चाहिए । वरना श्रुतज्ञान की महा अशातना होती है । दुसरी बात यह भी ध्यान में रहे कि बारह अंग के श्रुतज्ञान के लिए प्रथम और अंतिम प्रहर पढ़ने के लिए और पढ़ाने के लिए हंमेशा कोशीश करनी और पंचमंगल नवकार पढ़ने के लिए - आँठ पहोर बताए है । दुसरा यह भी ध्यान रखो कि पंच मंगल नवकार सामायिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में हो या सामायिक में न हो तो भी पढ़ शकते है । लेकिन सामायिक आदि सूत्र आरम्भ परिग्रह का त्याग करके और जावज्जीव सामायिक करके ही पढ़ा जाता है । आरम्भ-परिग्रह का त्याग किए बिना या जावज्जीव के सामायिक-सर्व विरति ग्रहण किए विना पढ़े नहीं जा शकते। और पंचमंगल आलावे, आलापके-आलापके और फिर शक्रस्तवादिक और बारह अंग समान श्रुतज्ञान के उद्देशा । अध्ययन का (समुद्देश-अनुज्ञा विधि वक्त) आयंबिल करना ।

[६००] हे भगवंत ! यह पंचमंगल श्रुतस्कंध पढ़ने के लिए विनयोपधान की बड़ी नियंत्रणा-नियम बताए है । बच्चे ऐसी महान नियंत्रणा किस तरह कर शकते है ?

हे गौतम ! जो कोइ इस बताई हुई नियंत्रणा की इच्छा न करे, अविनय और उपधान किए बिना यह पंचमंगल आदि श्रुतज्ञान पढ़े या पढ़ाए या उपधान पूर्वक न पढ़े या पढ़ानेवाले को अच्छा माने उसे नवकार दे या वैसे सामायिक आदि श्रुतज्ञान पढ़ाए तो प्रियधर्मवाला या दृढ़ धर्मवाला नहीं माना जाता । श्रुत की भक्तिवाला नहीं माना जाता ।

उस सूत्र की, अर्थ की, सूत्र, अर्थ, तदुभय की हीलना करनेवाला होता है । गुरु की हीलना करनेवाला होता है । जो सूत्र, अर्थ और उभय एवं गुरु की अवहेलना करनेवाला हो वो अतीत, अनागत और वर्तमान तीर्थंकर की आशातना करनेवाला बने जिसने श्रुतज्ञान, अरिहंत, सिद्ध और साधु की आशातना की उस दीर्घकाल तक अनन्ता संसार सागर में अटका रहता है, उस तरह के गुप्त और प्रकट, शीत उष्ण, मिश्र और कईं ८४ लाख प्रमाणवाली योनि में बार-बार उत्पन्न होता है । और फिर गहरा अंधकार-बदबूवाले विष्ठा, प्रवाही, पिशाब, पित्त, बलखा, अशुचि चीज से परिपूर्ण चरबी, ओर, परु, उल्टी, मल, रुधिर के चीकने कीचड़वाले, देखने में अच्छा न लगे वैसे बिभत्स घोर गर्भवास में अपार दर्द सहना पड़ता है । कढ़-कढ़ करनेवाले, कठित, चलचल शब्द करके चलायमान होनेवाला टल-टल करते हुए टालनेवाला, झझड़ने वाला सर्व अंग इकट्ठे करके जैसे जोरसे गठरी में बाँधी हो वैसे लम्बे अरसे तक नियंत्रणा -वेदना गर्भावास में सहना पड़ता है ।

जो शास्त्र में बताई हुई विधि से इस सूत्रादिक को पढ़ते है जरा सा भी अतिचार नहीं लगाते । यथोक्त विधान से पंचमंगल आदि श्रुतज्ञान का विनयोपधान करते है, वे हे गौतम ! उस सूत्र की हीलना नहीं करते । अर्थ की हीलना-आशातना नहीं करते, सूत्र-अर्थ, उभय की आशातना नहीं करते, तीन काल में होनेवाले तीर्थंकर की आशातना नहीं करता, तीन लोक की चोटी पर वास करनेवाले कर्मरज समान मैल को जिन्होंने दूर किया है। ऐसे सिद्ध की जो आशातना नहीं करते, आचार्य, उपाध्याय और साधु की आशातना नहीं करते । अति प्रियधर्मवाले दृढ़ धर्मवाले और एकान्त भक्तियुक्त होते है । सूत्र अर्थ में अति रंजित मानसवाला वो श्रद्धा और संवेग को पानेवाला होता है इस तरह का पुण्यशाली आत्मा यह भव रूपी कैदखाने में बारबार गर्भवास आदि नियंत्रण का दुःख भुगतनेवाला नहीं होता ।

[६०१] लेकिन हे गौतम ! जिसने अभी पाप-पुण्य का अर्थ न जाना हो, ऐसा बच्चा उस "पंच मंगल" के लिए एकान्ते अनुचित है । उसे पंचमंगल महाश्रुतस्कन्ध का एक भी आलावा मत देना । क्योंकि अनादि भवान्तर में उपार्जन किए कर्मराशि को बच्चे के लिए यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलापक प्राप्त करके बच्चा सम्यक् तरह से आराधन न करे तो उसकी लघुता हो । उस बच्चे को पहले धर्मकथा से भक्ति उत्पन्न करनी चाहिए । उसके बाद प्रियधर्म दृढ़धर्म और भक्तियुक्त बन गया है ऐसा जानने के बाद जितने पच्चकखाण निर्वाह करने के लिए समर्थ हो उतने पच्चक्खाण उसको करवाना । रात्रि भोजन के दुविध, त्रिविध, चऊविह-ऐसे यथाशक्ति पच्चक्खाण करवाना ।

[६०२] हे गौतम ! ४५ नवकारसी करने से, २४ पोरिसी करने से, १२ पुरिमुड्ढ करने से, १० अवड्ढ करने से और चार एकासणा करने से (एक उपवास गिनती में ले शकते है ।) दो आयंबिल और एक शुद्ध, निर्मल,निर्दोष आयंबिल करने से भी एक उपवास गिना जाता है ।) हे गौतम ! व्यापार रहितातासे रौद्रध्यान-आर्तध्यान, विकथा रहित स्वाध्याय करने में एकाग्र चित्तवाला हो तो केवल एक आयंबिल करे तो भी मासक्षमण से आगे नीकल जाता है । इसलिए विसामा सहित जितने प्रमाण में तप-उपधान करे उतने प्रमाण में उसी गिनती में बढौती करके पंच-मंगल पढ़ने के लायक बने, तब उसे पंच-मंगल का आलावा पढ़वाना, वरना मत पढ़ाना ।

[६०३] हे भगवंत ! इस प्रकार करने से, दीर्धकाल बीत जाए और यदि शायद बीच में ही मर जाए तो नवकार रहित वो अंतिम आराधना किस तरह साध शके ? हे गौतम ! जिस वक्त सूत्रोपचार के निमित्त से अशठभाव से यथाशक्ति जो कोई तप की शुरूआत की उसी वक्त उसने उस सूत्र का, अर्थ का और तदुभय का अध्ययन पठन शुरू किया ऐसा समजना। क्योंकि वो आराधक आत्मा उस पंच नमस्कार के सूत्र, अर्थ और तदुभय को अविधि से ग्रहण नहीं करता । लेकिन वो उस तरह विधि से तपस्या करके ग्रहण करता है कि - जिससे भवान्तर में भी नष्ट न हो ऐसे शुभ-अध्यवसाय से वो आराधक होता है ।

[६०४] हे गौतम ! किसी दुसरे के पास पढ़ते हो और श्रुतज्ञाना-वरणीय के क्षयोपशम से कान से सुनकर दिया गया सूत्र ग्रहण करके पंचमंगल सूत्र पढ़कर किसी ने तैयार किया हो - क्या उसे भी तप उपधान करना चाहिए ?

हे गौतम ! हा, उसको भी तप कराके देना चाहिए ।

हे भगवंत ! किस कारण से तप करना चाहिए ? हे गौतम ! सुलभ बोधि के लाभ के लिए । इस प्रकार तप-विधान न करनेवाले को ज्ञान-कुशील समजना ।

[६०५] हे भगवंत ! जिस किसी को अति महान् ज्ञानावरणीय कर्म का उदय हुआ हो, रात-दिन रटने के बाद भी एक साल के बाद केवल अर्धश्लोक ही स्थिर परिचित हो, वो क्या करे ? वैसे आत्मा को जावज्जीव तक अभिग्रह ग्रहण करना या स्वाध्याय करनेवाले का वेयावच्च और प्रतिदिन ढ़ाई हजार प्रमाण पंचमंगल के सूत्र, अर्थ और तदुभय का स्मरण करते हुए एकाग्र मन से रटन करे । हे भगवंत ! किस कारण से ? (ऐसे कहते हो ?) हे गौतम ! जो भिक्षु जावज्जीव तक के अभिग्रह सहित चारों काल यथाशक्ति वाचना आदि समान स्वाध्याय न करे उसे ज्ञानकुशील माना है ।

[६०६] दुसरा - जो किसी यावज्जीव तक के अभिग्रह पूर्वक अपूर्वज्ञान का बोध करे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसकी आशक्ति में पूर्व ग्रहण किए ज्ञान का परावर्तन करे, उसकी भी आशक्ति में ढाई हजार पंचमंगल नवकार का परावर्तन-जप करे, वो भी आत्मा आराधक है । अपने ज्ञानावरणीय कर्म खपाकर तीर्थंकर या गणधर होकर आराधकपन पाकर सिद्धि पाते है ।

[६०७-६१०] हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहलाता है कि चार काल में स्वाध्याय करना चाहिए ? हे गौतम ! मन, वचन और काया से गुप्त होनेवाली आत्मा हर वक्त ज्ञानावरणीय कर्म खपाती है । स्वाध्याय ध्यान में रहता हो वो हर पल वैराग्य पानेवाला बनता है । स्वाध्याय करनेवाले को उर्ध्वलोक, अधोलोक, ज्योतिष लोक, वैमानिक लोक, सिद्धि, सर्वलोक और अलोक प्रत्यक्ष है । अभ्यंतर और बाह्य ऐसे बारह तरह के तप के लिए सम्यग्दृष्टि आत्मा को स्वाध्याय समान तप नहीं हुआ और होगा भी नहीं ।

[६११-६१५] एक, दो, तीन मासक्षमण करे, अरे ! संवत्सर तक खाए बिना रहे या लगातार उपवास करे लेकिन स्वाध्याय-ध्यान रहित हो वो एक उपवास का भी फल नहीं पाता। उद्गम उत्पादन एषणा से शुद्ध ऐसे आहार को हंमेशा करनेवाला यदि मन, वचन, काया के तीन योग में एकाग्र उपयोग रखनेवाला हो और हर वक्त स्वाध्याय करता हो तो उस एकाग्र मानसवाले को साल तक उपवास करनेवाले के साथ बराबरी नहीं कर शकते । क्योंकि एकाग्रता सें स्वाध्याय करनेवाले को अनन्त निर्जरा होती है । पाँच समिति, तीन गुप्ति, सहनशील, इन्द्रिय को दमन करनेवाला, निर्जरा की अपेक्षा रखनेवाला ऐसा मुनि एकाग्र मन से निश्चल होकर स्वाध्याय करता है । जो कोई प्रशस्त ऐसे श्रुतज्ञान को समजाते है, जो किसी शुभभाववाला उसे श्रवण करता है, वो दोनो हे गौतम ! तत्काल आश्रव द्वार बन्ध करते है ।

[६१६-६१९] दुःखी ऐसे एक जीव को जो प्रतिबोध देकर मोक्ष मार्ग में स्थापन करते है, वो देवता और असुर सहित इस जगत में अमारी पड़ह बजानेवाले होते है, जिस तरह दुसरी धातु की प्रधानता युक्त सुवर्ण क्रिया बिना कंचनभाव को नहीं पाता । उस तरह सर्व जीव जिनोपदेश बिना प्रतिबोध नहीं पाते । राग-द्वेष और मोह रहित होकर जो शास्त्र को जाननेवाले धर्मकथा करते है । जो यथार्थ तरह से सूत्र और अर्थ की व्याख्या श्रोता को वक्ता कहे तो कहनेवाले को एकान्ते निर्जरा हो और सुननेवाले का निर्जरा हो या न हो।

[६२०] हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–जावज्जीव अभिग्रह सहित चार काल स्वाध्याय करना । और फिर हे गौतम ! जो भिक्षु विधिवत् सुप्रशस्त ज्ञान पढ़कर फिर ज्ञानमद करे वो ज्ञानकुशील कहलाता है । उस तरह ज्ञान कुशील की कई तरह प्रज्ञापना की जाती है ।

[६२१-६२२] हे भगवंत ! दर्शनकुशील कितने प्रकार के होते है । हे गौतम ! दर्शनकुशील दो प्रकार के है–एक आगम से और दुसरा नोआगम से ।

उसमें आगम से सम्यग्दर्शन में शक करे, अन्य मत की अभिलाषा करे, साधु-साध्वी के मैले वस्त्र और शरीर देखकर दुगंछा करे । घृणा करे, धर्म करने का फल मिलेगा या नहीं, सम्यकत्त्व आदि गुणवंत की तारीफ न करना । धर्म की श्रद्धा चली जाना । साधुपन छोड़ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की अभिलाषावाले को स्थिर न करना । साधर्मीक का वात्सल्य न करना या शक्ति होते हुए शासनप्रभावन भक्ति न करना । इस आठ स्थानक से दर्शनकुशील समजना ।

नोआगम से दर्शनकुशील के कोइ प्रकार के समजे, वो इस प्रकार–चक्षुकुशील, घ्राणकुशील, श्रवणकुशील, जिह्वाकुशील, शरीरकुशील, वे चक्षुकुशील तीन तरह के है । वो इस प्रकार–प्रशस्तचक्षुकुशील, प्रशस्ताप्रशस्त चक्षुकुशील और अप्रशस्त चक्षुकुशील । उसमें जो किसी प्रशस्त ऐसे ऋषभादिक तीर्थंकर भगवंत के बिंब के आगे दृष्टि स्थिर करके रहा हो वो प्रशस्त चक्षुकुशील और प्रशस्ताप्रशस्त चक्षुकुशील उसे कहते है कि हृदय और नेत्र से तीर्थंकर भगवंत की प्रतिमा के दर्शन करते-करते दुसरी किसी भी चीज की ओर नजर करे वो प्रशस्ताप्रशस्त कुशील कहलाता है । और फिर प्रशस्ताप्रशस्त द्रव्य जैसे कि कौआ, बग, ढंक, तित्तर, मोर आदि या मनोहर लावण्य युक्त खूबसूरत स्त्री को देखकर उसकी ओर नेत्र से दृष्टि करे वो भी प्रशस्ताप्रशस्त चक्षुकुशील कहलाता है । और फिर अप्रशस्त चक्षुकुशील-तैसठ तरह से अप्रशस्त सरागवाली चक्षु कहा है ।

हे भगवंत ! वो अप्रशस्त तैसठ चक्षुभेद कौन से है । हे गौतम ! वो इस प्रकार– १. सभ्रुकटाक्षा, २. तारा, ३. मंदा, ४. मदलसा, ५. वंका, ६. विवंका, ७. कुशीला, ८. अर्ध इक्षिता, ९. काण-इक्षिता, १०. भ्रामिता, ११. उद्भ्रामिता, १२. चलिता, १३. वलिता, १४. चलवलिता, १५. अर्धमिलिता, १६. मिलिमिला, १७. मानुष्य, १८. पशवा, १९. यक्षिका, २०. सरीसृपा, २१. अशान्ता, २२. अप्रशान्ता, २३. अस्थिरा, २४. बहुविकाशा, २५. सानुराग, २६. रागउदारणी, २७. रोगजा-रागजा, २८. आमय-उत्पादानी-मद उत्पादनी, २९. मदनी, ३०. मोहणी, ३१. व्यामोहनी, ३२. भय-उदीरणी, ३३. भयजननी, ३४. भयंकरी, ३५. हृदयभेदनी, ३६. संशय-अपहरणी, ३७. चित्त-चमत्कार उत्पादनी, ३८. निबद्धा, ३९. अनिबद्धा, ४०. गता, ४१. आगता, ४२. गता गता, ४३. गतागत-पत्यागता, ४४. निर्धारिनी, ४५. अभिलषणी, ४६. अरतिकरा, ४७. रतिकरा, ४८. दीना, ४९. दयामणी, ५०. शुरा, ५१. धीरा, ५२. हणणी, ५३. मारणी, ५४. तापणी, ५५. संतापणी, ५६. क्रुद्धा-प्रक्रुद्धा, ५७, धीरा महाधीरा, ५८. चंड़ी, ५९. रुद्रा-सुरुद्रा, ६०. हाहाभूतशरणा, ६१. रूक्षा, ६२. स्निग्धा, ६३. रूक्ष स्निग्धा (इस प्रकार कुशील दृष्टि यहाँ बताई है, उस नाम के अनुसार अर्थ-व्याख्या समज लेना ।)

स्त्रीयों के चरण अँगूठे, उसका अग्र हिस्सा, नाखून, हाथ जो अच्छी तरह से आलेखेल हो, लाल रंग या अलता से गात्र और नाखून रंगे हो, मणि की किरणे इकट्ठे होने की कारण से जैसे मेघधनुष न हो वैसे नाखून को, कछुए की तरह उन्नत चरण को अच्छी तरह से गोल रखे गए गूढ़ जानुओ, जंघाओ, विशाल कटी तट के स्थान को, जघन, नितम्ब, नाभि, स्तन, गुप्तस्थान के पास की जगह, कंठ, भुजालष्टि, अधर, होठ, दंतपंक्ति, कान, नासिका, नेत्रयुगल, भ्रमर, मुख, ललाट, मस्तक, केश, सेथी, टेढ़ी केशलट, पीठ, तिलक, कुंड़ल, गाल, अंजन श्याम वर्णवाले तमाल के पत्र समान केश कलाप, कंदोरा, नुपुर, बाहु रक्षक मणि रत्न जड़ित कंगन, कंकण, मुद्रिका आदि मनोहर और झिलमिल रहे आभूषण, रेशमी पतले वस्त्र, सुतराउ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेश आदि से सजावट करके कामाग्नि को प्रदीप्त करनेवाली नारकी और तिर्यंचगति में अनन्त दुःख दिलानेवाली इन स्त्रीं के अंग उपांग आभूषण आदि को अभिलाषा पूर्वक सराग नजर से देखना वो वक्षुकुशील कहलाता है ।

[६२३-६२४] और घ्राणकुशील उसे कहते है कि जो अच्छी सुगंध लेने के लिए जाए और दुर्गंध आती हो तो नाक टेढ़ा करे, दुंगछा करे और श्रवण कुशील दो तरह के समजना। एक प्रशस्त और दुसरा अप्रशस्त । उसमें जो भिक्षु अप्रशस्त ऐसे कामराग को उत्पन्न करनेवाले, उद्दीपन करनेवाले, उज्ज्वल करनेवाले, गंधर्वनाटक, धनुर्वेद, हस्तशिक्षा, कामशास्त्र रतिशास्त्र आदि श्रवण करके उसकी आलोचना न करे यावत् उसका प्रायश्चित् आचरण न करे उसे अप्रशस्त श्रवण कुशील मानना ।

और जीह्वाकुशील कईं तरह के मानना, वो इस प्रकार–कटु, तीखे, स्वादहीन, मधुर, खट्टे, खारा रस का स्वाद करना । न देखे, अनसुने, आलोक, परलोक, उभयलोक, विरुद्धदोषवाले, मकार-जकार मम्मो चच्चो ऐसे अपशब्द उच्चारना । अपयश मिले ऐसे झूठे आरोप लगाना, अछत्ता कलंक चड़ाना, शास्त्र जाने बिना धर्मदेशना करने की प्रवृत्ति करना। उसे जिह्वाकुशील मानना । हे भगवंत ! भाषा बोलने से भी क्या कुशीलपन हो जाता है ? हे गौतम ! हा, ऐसा होता है । हे भगवंत ! तो क्या धर्मदेशना न करे । हे गौतम ! सावद्यनिरवद्य वचन के बीच जो फर्क नहीं जानता, उसे बोलने का भी अधिकार नहीं, तो फिर धर्मदेशना करने का तो अवकाश ही कहाँ है ।

[६२५] और शरीर कुशील दो तरह के जानना, कुशील चेष्टा और विभूषा-कुशील, उसमें जो भिक्षु इस कृमि समूह के आवास समान, पंछी और श्वान के लिए भोजन समान। सड़ना, गिरना, नष्ट होना, ऐसे स्वाभाववाला, अशुचि, अशाश्वत, असार ऐसे शरीर को हंमेशा आहारादिक से पोषे और वैसी शरीर की चेष्टा करे, लेकिन सेंकड़ों भव में दुर्लभ ऐसे ज्ञान-दर्शन आदि सहित ऐसे शरीर से अति घोर वीर उग्र कष्टदायक घोर तप संयम के अनुष्ठान न आचरे उसे चेष्टा कुशील कहते है ।

और फिर जो विभूषा कुशील है वो भी कईं तरह के-वो इस प्रकार-तेल से शरीर को अभ्यंगन करना, मालिश करना, लेप लगाना, अंग पुरुषन करवाना, स्नान-विलेपन करना, मैल घिसकर दूर करना, तंबोक खाना, धूप देना, खुशबुदार चीज से शरीर को वस्त्र वासित करना, दाँत घिसना, मुलायम करना, चहेरा सुशोभित बनाना, पुष्प या उसकी माला पहनना, बाल बनाना, जूते-पावड़ी इस्तेमाल करना, अभिमान से गति करना, बोलना, हँसना, बैठना, उठना, गिरना, खींचना, शरीर की विभूषा दिखे उस प्रकार वस्त्रो को पहनना, दंड ग्रहण करना, ये सब को शरीर विभूषा कुशील साधु समजना । यह कुशील साधु प्रवचन की उड़ाहणा-उपघात करवानेवाले, जिसका भावि परिणाम दुष्ट है वैसे अशुभ लक्षणवाला, न देखने लायक महा पाप कर्म करनेवाला विभूषा-कुशील साधु होता है । इस प्रकार दर्शनकुशील प्रकरण पूरा हुआ ।

[६२६] अब मूलगुण और उत्तरगुण में चारित्रकुशील अनेक प्रकार के जानना । उसमें पाँच महाव्रत और रात्रि भोजन छट्ठा-ऐसे मूलगुण बताए है । वो छ के लिए जो प्रमाद करे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसमें प्राणातिपात यानि पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति रूप एकेन्द्रियजीव, दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रियवाले जीव का संघट्टा करना, परिताप उत्पन्न करना, किलामणा करनी, उपद्रव करना ।

मृषवाद दो तरह का–सूक्ष्म और बादर उसमें "पयलाउल्लामरुए"

किसी साधु दिन में सोते हुए-झोके खा रहा था, दुसरे साधु ने उसे कहा कि–दिन में क्यों सो रहे हो ? उसने उत्तर दिया कि मैं सो नहीं रहा । फिर से नींद आने लगी । झोका खाने लगा तब साधु ने कहा कि मत सो । तब प्रत्युत्तर मिला कि मैं सो नहीं रहा । ता यह सूक्ष्म मृषावाद ।

किसी साधु बारिस होने के बावजूद भी बाहर नीकले । दुसरे साधु ने कहा कि बारिस में क्यों जा रहे हो ? उसने कहा कि नहीं, मैं बारिस में नहीं जा रहा । ऐसा कहकर जाने लगा । यहाँ वासुधातु शब्द करना हो इसलिए शब्द होता हो तब मैं नहीं जाता । ऐसे छल के शब्द इस्तेमाल करे वो सूक्ष्म मृषावाद ।

किसी साधु ने भोजन के वक्त कहा कि–भोजन कर लो । उसने उत्तर दिया कि मुजे पच्चक्खाण है–ऐसा कहकर तुरन्त खाने लगा, दुसरे साधु ने पूछा कि अभी-अभी पच्चक्खाण किया है, ऐसा कहता था और फिर भोजन करता है । तब उसने कहा कि क्या मैंने प्राणातिपात आदि पाँच महाव्रत की विरति का प्रत्याख्यान नहीं किया ? इस तरह से यह छलने के प्रयोग से सूक्ष्ममृषावाद लगे । सूक्ष्ममृषावाद और कन्यालीक आदि बादर मृषावाद कहलाता है ।

दिए बिना ग्रहण करना उसके दो भेद सूक्ष्म और बादर उसके तृण, पथ्थर, रक्षाकुंड़ी आदि ग्रहण करना वो सूक्ष्म अदत्तादान । घड़े बिना और घड़ा हुआ सुवर्ण आदि ग्रहण करने समान बादर अदत्तादान समजना ।

और मैथुन दीव्य और औदारिक वो भी मन, वचन, काया, करण, करावण अनुमोदन ऐसे भेद करते हुए अठ्ठारह भेदवाला जानना । और फिर हस्त कर्म सचित्त अचित्त भेदवाला या ब्रह्मचर्य की नवगुप्ति की विराधना करने द्वारा करके, शरीर वस्त्रादिक की विभूषा करने समान।

मांड़ली में परिग्रह दो तरह से । सूक्ष्म और बादर । वस्त्रपात्र का ममत्वभाव से रक्षा करना । दुसरों को इस्तेमाल करने के लिए न देना वो सूक्ष्म परिग्रह, हिरण्यादिक ग्रहण करना या धारण कर रखना । मालिकी रखनी, वो बादर परिग्रह । रात्रि-भोजन दिन में ग्रहण करना और रात को खना, दिन में ग्रहण करके दुसरे दिन भोजन करना । रात को लेकर दिन में खाना। रात को लेकर रात में खाना । इत्यादि भेदयुक्त ।

[६२७-६३२] उत्तर गुण के लिए पिंड़ की जो विशुद्धि, समिति, भावना, दो तरह के तप, प्रतिमा धारण करना, अभिग्रह ग्रहण करना आदि उत्तर गुण जानना । उसमें पिंड़ विशुद्धि-सोलह उद्गम दोष, सोलह उत्पादना दोष, दस एषणा के दोष और संयोजनादिक पाँच दोष, उसमें उद्गम दोष इस प्रकार जानना । १. आधाकर्म, २. औदेशिक, ३. पूतिकर्म, ४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रजात, ५. स्थापना, ६. प्राभृतिका, ७. प्रादुष्करण, ८. क्रीत, ९. प्रामित्यक, १०. परावर्तित, ११. अभ्याहत, १२. उद्भिन्न, १३. मालोपहत, १४. आछिद्य, १५. अतिसृष्ट, १६. अध्यव पूरक-ऐसे पिंड़ तैयार करने में सोलह दोष लगते है ।

[६३३-६३५] उत्पादन के सोलह दोष इस प्रकार बताए है । १. धात्रीदोष, २. दुतिदोष, ३. निमित्तदोष, ४. आजीवकदोष, ५. वनीपकदोष, ६. चिकित्सादोष, ७. क्रोधदोष, ८. मानदोष, ९. मायादोष, १०. लोभ दोष, यह इस दोष और ११. पहले या बाद में होनेवाले परिचय का दोष, १२. विद्यादोष, १३. मंत्रदोष, १४. चूर्णदोष, १५. योगदोष और १६. मूलकर्मदोष–ऐसे उत्पादन के सोलह दोष लगते है ।

[६३६-६३७] एषणा के दस दोष इस प्रकार जानना–१. शक्ति, २. म्रक्षित, ३. निक्षिप्त, ४. पिहित, ५. संहृत, ६. दायक, ७. उन्मिश्र, ८. अपरिणत, ९. लिप्त, १०. छर्दित।

[६३८] उसमें उद्गमदोष गृहस्थ से उत्पन्न होते है । उत्पादन के दोष साधु से उत्पन्न होनेवाले और एषणा दोष गृहस्थ और साधु दोनों से उत्पन्न होनेवाले है ।

मांड़ली के पाँच दोष इस प्रकार जानना–१. संयोजना, २. प्रमाण से अधिक खाना, ३. अंगार, ४. घुम, ५. कारण अभाव-ऐसे ग्रासेसणा के पाँच दोष होते है । उसमें संयोजना दोष दो तरह के–१. उपकरण सम्बन्धी और २. भोजन पानी सम्बन्धी । और फिर उन दोनों के भी अभ्यन्तर और बाह्य । ऐसे दो भेद है–

[६३९] प्रमाण-बत्तीस कवल प्रमाण । आहार कुक्षिपूरक माना जाता है । खाने में अच्छे लगनेवाले भोजनादिक राग से खाए तो उसमें ईंगाल दोष और अनचाहे में द्वेष हो तो धूम्र दोष लगता है ।

[६४०-६४३] कारणाभाव दोष में समजो कि–क्षुधा वेदना सह न शके, कमजोर शरीर से वैयावच्च न हो शके, आँख की रोशनी कम हो जाए और इरियासमिति में क्षति हो । संयम पालन के लिए और जीव बचाने के लिए, धर्मध्यान करने के लिए, इस कारण के लिए भोजन करना कल्पे । भूख समान कोई दर्द नहीं इसलिए उसकी शान्ति के लिए भोजन करना । भूख से कमजोर देहवाला वैयावच्च करने में समर्थ नहीं हो शकता । इसलिए भोजन करना । इरियासमिति अच्छी तरह से न खोजे, प्रेक्षादिक संयम न सँभाल शके, स्वाध्यायादिक करने की शक्ति कम हो जाए, बल कम होने लगे, धर्मध्यान न कर शके इसलिए साधु को इस कारण से भोजन करना चाहिए । इस प्रकार पिंड़ विशुद्धि जानना ।

[६४४] अब पाँच समिति इस प्रकार बताई है–ईयासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभंड़-मत्तनिक्षेपणा समिति और उच्चार-पासवण खेल सिंधाणजल्लपारिष्ठापनिका समिति और तीन गुप्ति, मन गुप्ति, वचन गुप्ति और कायगुप्ति और बारह भावना वो इस प्रकार–१. अनित्यभावना, २. अशरण भावना, ३. एकत्त्वभावना, ४. अन्यत्वभावना, ५. अशुचिभावना, ६. विचित्र संसारभावना, ७. कर्म के आश्रव की भावना, ८. संवर भावना, ९. निर्जराभावना, १०. लोक विस्तार भावना, ११. तीर्थंकर ने अच्छी तरह से बताया हुआ और अच्छी तरह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से प्ररूपा हुआ उत्तम धर्म उसके धर्म की सोच समान भावना, १२. करोड़ जन्मान्तर में दुर्लभ ऐसी बोधि दुर्लभ भावना ।

यह आदि स्थानान्तर में जो प्रमाद करे उसे चारित्र कुशील जानना ।

[६४५] तप कुशील दो तरह के एक बाह्य तप कुशील और दुसरा अभ्यन्तर तप कुशील । उसमें जो कोई मुनि विचित्र इस तरह का दीर्धकाल का उपवासादिक तप, उणोदरिका, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, काय-क्लेश, अंगोपांग सिकुड़े रखने समान संलीनता । इस छ तरह के बाह्य तप में शक्ति होने के बाद भी जो उद्यम नहीं करते, वो बाह्य तप कुशील कहलाते है ।

[६४६-६४७] बार तरह की भिक्षु प्रतिमा वो इस प्रकार–एक मासिकी, दो मासिकी, तीन मासिकी, चार मासिकी, पाँच मासिकी, छ मासिकी, साँत मासिकी ऐसे साँत प्रतिमा । आँठवी साँत अहोरात्र की, नौवीं साँत अहोरात्र की, दशवीं साँत अहोरात्र की, ग्यारहवीं एक अहोरात्र की, बारहवीं एक रात्रि की ऐसी बारह भिक्षु प्रतिमा है ।

[६४८] अभिग्रह-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । उसमें द्रव्य अभिग्रह में ऊँबाले ऊँड़द आदि द्रव्य ग्रहण करना, क्षेत्र से गाँव में या गाँव के बाहर ग्रहण करना, काल से प्रथम आदि पोरिसि में ग्रहण करना, भाव से क्रोधादिक कषायवाला जो मुजे दे वो ग्रहण करूँगा इस प्रकार उत्तरगुण संक्षेप से समास किए । ऐसा करने से चारित्राचार भी संक्षेप से पूर्ण हुआ । तपाचार भी संक्षेप से उसमें आ गया । और फिर वीर्याचार उसे कहते है कि जो इस पाँच आचार में न्युन आचार का सेवन न करे ।

इन पाँच आचार में जो किसी अतिचार में जान-बूझकर अजयणा से, दर्प से, प्रमाद से, कल्प से, अजयणा से या जयणा से जिस मुताबिक पाप का सेवन किया हो उस मुताबिक गुरु के पास आलोचना करके मार्ग जाननेवाले गीतार्थ गुरु जो प्रायश्चित् दे उसे अच्छी तरह आचरण करे । इस तरह अट्ठारह हजार शील के अंग में जिस पद में प्रमाद सेवन किया हो, उसे उस प्रमाद दोष से कुशील समजना चाहिए ।

[६४९] उस प्रकार ओसन्ना के लिए जानना । वो यहाँ हम नहीं लिखते । ज्ञानादिक विषयक पासत्था, स्वच्छंद, उत्सूत्रमार्गगामी, शबल को यहाँ ग्रंथ विस्तार के भय से नहीं लिखते । यहाँ कहीं कहीं जो-जो दुसरी वाचना हो वो अच्छी तरह से शास्त्र का सार जिसने जाना है, वैसे गीतार्थवर्य को रिश्ता जोड़ना चाहिए । क्योंकि पहले आदर्श प्रत में काफी ग्रन्थ विप्रनष्ट हुआ है । वहाँ जो-जो सम्बन्ध होने के योग्य जुड़ने की जुरुर हुई वहाँ कई श्रुतधर ने इकट्ठे होकर अंग-उपांग सहित बारह अंग रूप श्रुत समुद्र में से बाकी अंग, उपांग, श्रुतस्कंध, अध्ययन, उद्देशा में से उचित सम्बन्ध इकट्ठे करके जो किसी सम्बन्ध रखते थे, वो यहाँ लिखे है, लेकिन खुद कहा हुआ कुछ भी रखा नहीं है ।

[६५०-६५२] अति विशाल ऐसे यह पाँच पाप जिसे वर्जन नहीं किया, वो हे गौतम ! जिस तरह सुमति नाम के श्रावक ने कुशील आदि के साथ संलाप आदि पाप करके भव में भ्रमण क्रिया वैसे वो भी भ्रमण करेंगे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवस्थिति कायस्थितिवाले संसार में घोर दुःख में पड़े बोधि, अहिंसा आदि लक्षणयुक्त दश तरह का धर्म नहीं पा शकता । ऋषि के आश्रम में और भिल्ल के घर में रहे तोते की तरह संसर्ग के गुणदोष से एक मीठा बोलना शीख गया और दुसरा संसर्ग दोष से अपशब्द बोलना शीख गया हे गौतम ! जिस तरह दोनों तोते को संसर्ग दोष का नतीजा मिला उसी तरह आत्महित की इच्छावाले को इस पंछी की हकीकत जानकर सर्व उपाय से कुशील का संसर्ग सर्वथा त्याग करना चाहिए ।

अध्ययन-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

—३९/१-महानिशीथ-छेदसूत्र-६/१/हिन्दी अनुवाद पूर्ण

महानिशीथ सूत्र के अध्ययन पांच से आठ के लिए - भाग-११-देखना

भाग-१०-का हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमसूत्र-हिन्दी अनुवाद भाग-१- से-१२	
भाग-१	आचार, सूत्रकृत
भाग-२	स्थान, समवाय
भाग-३	भगवती-(शतक-१-से-१०)
भाग-४	भगवती-(शतक-११-से-२९)
भाग-५	भगवती (शतक-३०-से-४१) ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा
भाग-६	अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत, औपपातिक, राजप्रश्नीय
भाग-७	जीवाजीवाभिगम, प्रज्ञापना (पद-१ से ५)
भाग-८	प्रज्ञापना (पद-६ से ३६) सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति
भाग-९	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिता, पुष्पचूलिका, वण्हिदशा, चतुःशरण, आतुरप्रत्याख्यान महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक
भाग-१०	संस्तारक, गच्छाचार (चन्द्रवेध्यक), गणिविद्या, देवेन्द्रस्तव, वीरस्तव, निशीथ, बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कन्ध, जीतकल्प, महानिशीथ (अध्ययन-१ से ३)
भाग-११	महानिशीथ (अध्ययन-४ से ८), आवश्यक, ओधनिर्युक्ति, पिंडनिर्युक्ति
भाग-१२	दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी, अनुयोगद्वार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे आगम संबंधि साहित्य

१.४५ – आगम – मूल [अर्धमागधी]

२.४५ – आगम – गुजराती अनुवाद

३.४५ – आगम – सटीकं

४.४५ – आगम – विषयानुक्रम

५.४५ – आगम – महापूजनविधी

६.४५ – आगम – शब्दकोश

७.४५ – आगमसूत्र - [हिन्दीअनुवाद]

10

श्री श्रुत प्रकाशन निधि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org